

की प्रथा नहीं थी । हम समझते हैं, यह दोष जैनमाहित्यपर सर्वथा नहीं लगाया जावेगा, गद्यके मैकड़ों ग्रन्थ जैनियोंके पुस्तकालयोंमें अब भी प्राप्य हैं । पद्यग्रन्थोंकी भी वृष्टि नहीं है, परन्तु उनमें नायकाओंका आमोद प्रमोद नहीं है । कथन नञ्विचार और आध्यात्मिकरस की पूर्णताका उज्ज्वलप्रवाह है । ममत्र है कि, इस कारण आधुनिक कविगण उन्हें नीरस कहकर समालोचना कर डालें परन्तु जानना चाहिये कि, शृङ्गाररस का ही रसमंत्रा नहीं है ।

जिस समय भाषाग्रन्थोंकी रचनाका प्रारंभ हुआ है, उस समय जैनियोंके विप्लवके दिन नहीं थे । वे बड़ी २ आपदायें झेलकर बड़ी कठिणतासे अपने धर्मको जर्जरित अवस्थामें रक्षित रख सके थे । कहीं हमारे अलौकिक-तत्त्वज्ञानका ममत्रमें अभाव न हो जाये, यह चिन्ता उन्हें अहोरात्र लगी रहनी थी, अतएव उनके विद्वानोंका चित्त विप्लव-पूर्ण-ग्रन्थोंके रचनेका नहीं हुआ और वे नायकाओंके विभ्रमविप्लवोंको छोड़कर धर्मतत्त्वोंको भाषामें लिखनेकेलिये तत्पर हो गये । धर्मतत्त्वोंको देशभाषामें लिखने की आवश्यकता पढ़नेका कारण यह है कि, उस समय अविद्याका अंधकार बढ़ रहा था और गीर्वाणवाणी नितान्त सरल न होनेसे लोग उसे भूलने लगे थे, अथवा उसके पढ़नेका कोई परिश्रम नहीं करता था । ऐसी दशामें यदि धर्मतत्त्वोंका निरूपण देशभाषामें न होता, तो लोग धर्मशून्य हो जाते । एक और भी कारण है यह यह, हमारे आचार्योंका निरन्तर यह सिद्धान्त रहा है कि, देश काल अनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिये, इसलिये देशमें जिस समय भाषाका प्राधान्य तथा प्राक्व्य रहा है, उस समय उन्होंने भाषामें ग्रन्थोंकी रचना करके समयसूचकता व्यक्त की है ।

ताब्दीमें भाषाके चार पांच ग्रन्थ निर्मित हुए, परन्तु भाषाकाव्यकी यथार्थ उन्नति सोलहवीं शताब्दीमें कही जाती है । इस शताब्दीमें अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी रचना हुई है । अन्वेषण करनेसे जाना जाता है कि, जैनियोंके भाषासाहित्यने भी इसी शताब्दीमें अच्छी उन्नति की है । पंडित रूपचन्दजी, पांडे हेमराजजी, बनारसीदासजी, भैया भगवतीदासजी, भूपरदासजी, दानतरायजी आदि श्रेष्ठ कवि भी इसी सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें हुए हैं । इन दो शताब्दियोंके पश्चात् बहुतसे कवि हुए हैं और ग्रन्थोंकी रचना भी बहुत हुई है, परन्तु उक्त कवियोंके तुल्य न तो कोई कवि हुए और न कोई ग्रन्थ निर्मापित हुए । सब पूर्वकवियोंके अनुकरण करनेवाले हुए ऐसा इतिहासकारोंका मत है ।

हम इस विषयमें अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं कि, जैनियोंमें भाषासाहित्यकी नींव कबसे पड़ी और कबसे प्रथम कौन कवि हुआ । और न ऐसा कोई माधन ही दिखता है कि, जिसमें आगे निश्चयकर सकेंगे । क्योंकि जैनियोंमें तो इस विषयके शोधने-वाले और आवश्यकता समझनेवाले बहुत कम निकलेंगे और अन्य-भाषासाहित्यके विद्वान् वैदिकसाहित्यपर साहित्यकी साहित्य ही नहीं समझने । परन्तु यह निश्चय है कि, शोध होने पर जैनभाषासाहित्य किसी प्रकार निम्नश्रेणीका और पश्चात्तद न गिना जायेगा ।

जैनधर्मके पाठनेवाले विद्वान् रामभूताना, मुक्तप्रान्त, मध्य-प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रान्तमें रहते हैं । हिन्दी, गुजराती, मराठी, और कानडी ये चार भाषाये इन प्रान्तोंकी मुख्य भाषाये हैं । परन्तु इन चार भाषाओंमेंसे प्रायः हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें जैनधर्मके संस्कृत प्राकृतग्रन्थोंका अर्थ

सरल और बोधप्रद प्रिया गया है, अथवा उनके आधारसे नवीन सरल-बोधप्रद ग्रन्थ लिखे गये हैं। कर्णाटकी भाषामें अनेक जैन-ग्रन्थ सुने जाते हैं, परन्तु वे सबको सुन्दर नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक ग्रन्थके जैनोंको अपने धर्मतत्त्वोंको जाननेकेलिये हिन्दीका ही आश्रय लेना पड़ता है। जैनियोंके आवश्यक पदकर्मोंमें शास्त्रवाच्य एक मुख्य कर्म है, इसलिये प्रत्येक जैनीको प्रतिदिन थोड़ा बहुत शास्त्रवाच्य करना ही पड़ता है, जो हिन्दीमें ही होता है। इसप्रकार जैनसाहित्य और जैनियोंके द्वारा हिन्दी भाषाकी एक विद्युत्प्रतीतिसे उन्नति होगी। जो जैनी धर्मतत्त्वोंका थोड़ा भी मर्मज्ञ होगा, चाहे वह किसी भी ग्रन्थका हो, हिन्दीका जाननेवाला अवश्य होगा। हिन्दी प्रचारकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि, जैनियोंके एक जैनमित्र नामक हिन्दी मासिकपत्रके एक हजार प्रादक हैं, जिनमें ५०० उत्तर भारतके और दोष ५०० गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटकके हैं। नागरीप्रचारिणी सभाओं और हिन्दी दितैरियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। जिस जैनसाहित्यसे हिन्दीकी इस प्रकार उन्नति होती है, उसको अप्रकट रखने की चेष्टा करना, और उसके प्रचारमें बधोचित उत्साह और सहायता नहीं देना हिन्दी दितैरियोंको शोभा नहीं देता।

जैन-भाषा-साहित्य-मंदारको अनुगम रखोसे मुमुक्षुजन करनेवाले विद्वान् प्रायः आगरा और जयपुर इन दो स्थानोंमें हुए हैं। आगरा की भाषा वृजभाषा कहलाती है, और जयपुर की खूंढारी। वृजभाषाका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हिन्दीकी पुरानी कविता प्रायः इसी भाषामें है, जो सबके पठन पाठनमें आती है। यह बनारसीविद्यास ग्रन्थ जो पाठकोंके हाथमें उपरिष्ठ है, इसी

भाषामें है । वृजभाषाके पद्यसे लोग जितने परिचित हैं उतने गद्यसे नहीं हैं । वृजभाषाका गद्य जाननेकेलिये इस ग्रन्थकी आध्यात्मवचनिका और उपादाननिमित्तकी चिट्ठी पढ़नी चाहिये । दूंदारी भाषा जयपुर और उसके आसपास दूंदार देशकी भाषा है । इसमें और वृजभाषामें इतना ही अन्तर है कि, दूंदारीमें प्राकृतशब्दोंका जितना सादृश्य रहता है, उतना वृजभाषामें नहीं रहता । और वृजभाषामें पञ्जरसी शब्दोंके अपभ्रंश अधिक व्यव-
हृत होते हैं । दूंदारी भाषाके गद्य ग्रन्थ बहुत सरल हैं, प्रत्येक प्रान्तका थोड़ी सी भी हिंदी जाननेवाला उन्हें सहज ही समझ सकता है ।

जैनग्रन्थरत्नाकरमें जो स्वामिकार्विकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ निकला है, उसकी टीका इसी भाषामें है, पाठरूपण उसे मंगाके दूंदारी भाषामें परिचित हो सके हैं ।

भाषागद्य लिखनेवाले जैनविद्वानोंमें १० टोडरमल्लजी, १० जय-
चन्द्रगयजी, १० हेमराजजी, १० पंडित रूपचन्द्रजी, १० भागचन्द्रजी और
पद्यलिखनेवालोंमें १० बनामदीदामजी, १० धानतरायजी, १० मृधर-
दामजी, १० मगवतीदामजी, १० वृन्दावनजी, १० देवीदासजी,
१० दौलतरायजी, १० मिहारीदासजी और मेवाराजजी आदि
कविरत्न उत्कृष्ट मिले जाते हैं । इनके बनाये हुए ग्रन्थोंके
पढ़नेमें इनकी विद्वत्ता अच्छी तरह व्यक्त होती है । आश्चर्य है कि,
इनमेंमें किसी भी कविने गुणात्मकता ग्रन्थ नहीं बनाया । सभीमें
आध्यात्म और तात्विक निरूपण करके अपना कार्यभार किया है ।

० मृधरदामजीने कहा है,—

१० मृधरदामजीने कहा है,—

अनन्यधरमाके

राग उर्द जग अंध भयो, गदज सब लोगन लाज गमाई
स्त्रीपतिना सब स्त्रीगत है, विषयानके लेषनकी लुपताई
तापर और रचे रसकाव्य, कटा कटिपे तिनकी निडुराई
अंध भगवानकी भेलियानमें, मेलत है रज राम दुहाई ॥

(धूपरातक)

नव है ! किन कहावामोके ऐसे विचार थे, उन्हें आध्यात्मिक
रचनाके अनिरुक्त केवल शृंगारकी रचना कुछ विशेष शोभा नहीं
देनी । परमार्थदर्शित शास्त्रकी समता शृंगाररम नहीं कर
सका । क्योंकि शास्त्रकी ऊर्ध्व गति है, शृंगारकी अधो । परन्तु
देता कहनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि, इनकी करिता नव-
रम-रहित और वाक्यके किसी अंगमें हीन होवेगी, नहीं ! एक
आध्यात्ममें ही नवरागपटित करके इन्होंने अपने ग्रन्थोंको नवरम-
रम बनाये है । कविता बनारसीदासजीने अपनी आत्मामें ही नव-
रम पटित रिये है ! देनिवे—

गुणविचार शृंगार, धीर उदम उदार रग ।

करुणा सम स्तराति, हास दिरद उजाद सुख ॥

भट्टकरम दलमलन, कट परत तिदि धानक ।

तन विलेष्ट धीभन्स, दग्ध दुगदशा भयानक ॥

अद्भुत अनंतपल चितवन, शांत सहज धैरग भुव ।

नवरस विलास परकाश तव, जव मुखोप घट प्रगट हुआ

परम आत्माका यह नवरसपुष्प अर्प चितवन निदानोंको अभूत-
पूर्व आनन्दमय कर देता है । पाठकगण इसे एकबार अवश्य ही
पाठ करें ।

भाषासाहित्यके विषयमें इतना ही कह कर अब यह उत्थानिका पूर्ण की जाती है । आशा है कि, यह जिस इच्छासे लिखी गयी है, पाठकोंके द्वारा वह किसी न किसी रूपमें कल्याणी होगी । पाठकोंके एक पार ध्यानमें पढ़नेमें ही हम अपनी इच्छाको कल्पती समझ सकते हैं । इत्यन्तम् विद्वद्वेषु—

जीवाञ्चैनमिदं मतं शमयितुं कूरानपीयं रुपा ।

भारत्या सह शीलपत्यविरतं धीः सादन्यमतम् ॥

मात्सर्यं गुणिषु लज्जन्तु पिशुनाः संतोषलीलाजुगः ।

सन्तः सन्तु भयन्तु च भ्रमविदः सर्वे कर्षणां जनाः ॥

चन्द्रावाही—कम्बु,)
१४ -४—१९०५.)

विदुषां चरणगरोरुहमेदी—
नाथूरामप्रेमी,
देवरी (गागर) निवासी ।

कविवर बनारसीदासजी ।

मातृस्यामिस्थजनजनरुभ्रातृभार्याजनाद्या
दातुं शक्तास्तदिह न फलं सञ्जना यदस्ते ॥
काचिसेषां पद्यनरचना येन सा ध्यस्तदोषा
यां शृण्वन्तः क्षमितकटुषा निर्णृतिं यान्ति सत्याः ॥ ४६५
(सुभाषितरत्नमन्दोहे ।)

हम संसारमें सञ्जनजन जो फट देते हैं, यह माता, म्यामी, स्वजन, पिता, भ्राता, स्त्रीजनदि कोई भी देनेको समर्थ नहीं है । दोषोंको विष्वंग करनेवाली उनकी वचनरचनाको सुनकर जीवधारी क्षमित कटुष (पापरदित) होकर निर्णृतिको प्राप्त करते हैं ।

पाठकगण ! कविवर बनारसीदासजीकी शुभकर्मको देनेवाली संगी । हमलोगोंको प्राप्त नहीं है । क्योंकि ये अब इस लोकमें नहीं हैं । किन्तु हमारे शुभकर्मके उदयमें उनकी निर्मल-वचन-रचना (कविता) अब भी अक्षरवती होकर विद्यमान है, जिसमें सम्पूर्ण मांग्यारिक कटुष (पाप) धुस हो सके हैं । उन अधोसे कविवरजी कीर्तिकीमुदी कैसी प्रस्फुरित हो रही है । यह उज्जरत धौदनी आरमाका अनुभवन करनेवाड़े पुरुषोंके हृदयमें एक अशौचिक क्षीनलताका प्रवेश करती है, जिसमें उन्हें संसारकी मोहन्शरा उपासित नहीं करती ।

जिम महाभाग्यकी वचनरचना होगी निर्मल और सुखकर है, उसकी जीवनकथा जाननेकी जिसको इच्छा न होगी । और यह जीवनकथा गितनी सुंदर और रचिकर न होगी । और उसके सं-
ग्रह करनेकी कितनी आवश्यकता नहीं है । ऐसा सोच कर हमने

बनारसीदासजीकी जीवनकथाका शोध करना प्रारंभ किया । जिस समय बनारसीविश्रामके मुद्रित करनेका विचार हुआ है, उससे बहुत पहिले हम इस विषयके प्रयत्नमें थे । हर्षका विषय है कि हमारा थोडासा परिश्रम एक बड़े फलरूपमें फलित हो गया है । अर्थात् स्वयं कविवर बनारसीदासजीके हाथका लिखा हुआ ५५ वर्षका जीवनचरित्र प्राप्त हुआ है । इस जीवनचरित्रका नाम उन्होंने अर्द्धकथानक रक्खा है, और ५५ वर्षके पश्चात् शेषजीवन-कथानक लिखनेकी प्रतिज्ञा की है । परन्तु बहुत शोध करने पर भी उनके शेषजीवनके वृत्तमें हम अनभिज्ञ रहें । अर्द्धकथानक में जो कुछ लिखा है, उसको हम गद्यप्रेमी पाठकोंकी प्रमत्तताकेलिये अपनी आलोचनामहित यहाँ प्रकाश दिये देने हैं । अर्द्धकथानक पद्य-बन्ध है । इस चरित्रमें उनके अनेक सुन्दर पद्य भी यथावत दिये जायेंगे ।

वाध्याय्य पद्धतिोंका यह एक बड़ा भारी आश्रय है कि, भारतके विद्वान् जीवनचरित्र मध्या इतिहास लिखना नहीं जानते थे । परन्तु आजमें ३०० वर्ष पहिले जब वाध्याय्यमध्यायनाका नाम निशान नहीं था, भारतका एक शिरोमणि कवि अपने जीवनके ५५ वर्षका वृत्तान्त लिखकरके रक्खया है, इतिहासमें यह एक भाग्यवन्तरी घटना है । इस निर्भय होकर कह सके हैं कि, कविशिरोमणि बनारसीदासजी एक ही कवि थे, जिन्होंने अपने जीवनकी सभी घटनाएँ लिखकर अच्छे भट्ट शब्दोंमें गुणदोषोंकी आलोचना की है । दोषोंकी आलोचना करना मत्स्यायन पुरुषोंका कार्य नहीं है ।

मत्स्यायनद्विजने अनेक संस्कृत तथा भाषा कवियोंके जीवनचरित्र लिखे गये हैं, परन्तु उनमें तथ्य बहुत थोड़ा है । क्योंकि द्विज-

नित्योके आधारमें उनमें अनेक असंभव घटनाओंका समावेश किया गया है, जिनपर एकाएक विश्वास नहीं किया जा सका । ऐसी दशामें चरित्रसे जो लोकोपकार होना चाहिये, वह नहीं होता । क्योंकि चरित्रका अर्थ चारित्र्य अथवा आचरण है, और आचरणोंमें अन्तर्वास दोनोंका समावेश होना चाहिये । जिनचरित्रोंमें यह बात नहीं है, वे पूर्ण चरित्र नहीं हैं । कविवर बनारसीदासजीके जीवनचरित्रसे भाषासाहित्यकी इस एक बड़ी भारी छुटकी पूर्ति होगी । क्योंकि अन्तर्वास चरित्रोंका इसमें अच्छा विष खींचा गया है ।

प्रारंभ :

पानि-जुगलपुट शील धरि, मान भपनपो दास ।
आनि भगत चित जानि प्रभु, बन्दों पांस सुपांस ॥ १ ॥

यह मंगलाचरण अर्धकथानकका है । कविवर पार्थनाथ और सुपार्थनाथके विशेष भक्त थे, इसलिये कवितामें यत्र तत्र उक्त जिनैन्द्रद्वय की ही स्तुति की है । आपका जन्मनाम विक्रमाजीन था, परन्तु आपके पिता जब पार्थनाथसुपार्थनाथकी जन्मभूमि बनारस (काशी) की यात्राको गये थे, तब भक्तिवश बनारसी-दास नाम रखदिया था, इसका विशेष विवरण आगे दिया गया है । बनारसीदासजी को भी अपने नामके कारण बनारस और उक्त जिनैन्द्रद्वयके चरणोंमें विशेषानुराग हो गया था । बनारसी-नगरी की व्युत्पत्ति देखिये आरने कैसी सुन्दर की है—

१ पार्थ । २ सुपार्थ ।

कविवरणनारसीदासः ।

पूर्व संशोधनों की कथा ।

मध्यभागमें रोहतकपुर नामक एक नगर है । उसके निचले चिहोली नामका एक ग्राम है । चिहोलीमें राजपूतोंकी बनी है । यहाँ कारणवश एक समय किसी जैनमुनिका शुभागमन हुआ । मुनिराजके विद्वत्तापूर्ण उपदेशों और लोकोत्तर आचरणोंसे सुननेवाले ग्रामवासी सम्पूर्ण राजपूत जनी हो गये, और—

परिचय। माला मंत्रिणी, पापों कुल श्रीमाल ।

याच्यो गोंत पिहोसिआ, पीटोली-रमपाल ।

[illegible]

ਸ੍ਰੀਮਦਾਸ ਤਿਲਕਾਸਕ ਨਾਮਾ ਪੁਤ੍ਰ ਰਾਮਾਇਨ ।

पञ्चाङ्ग विभाग, काशी, भागदान बाणेश्वर

महाराष्ट्र के राजा शिवाजी महाराज ने मराठा साम्राज्य की नींव रखी। उन्होंने मुगल साम्राज्य के खिलाफ लड़ाई लड़ी और महाराष्ट्र के स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

शाह हुमायूँको घरबार ॥ १५ ॥

मूडदामाजी उक्त नरवर नगरमें साहीमोदी बनकर गये और अपना कार्य प्रतिष्ठापूर्वक करने लगे । कुछ दिनोंके पश्चात् अपना सावन मुदी ५ रशिशर संवत् १६०२ को आपकी एक पुत्रव्रत् प्राप्त हुआ । जिसका नाम खरगसेन रक्ता । दो वर्षके पश्चात् घनमल्ल नामके दूसरे पुत्रने अन्नार दिया । परन्तु तीन वर्ष जीवित रहके,—

घनमल घनरु उडि गये, काल्पयनसंज्ञोग ।

मातृगिनातदयः तये, हृदि मातृ सुतगोम ॥ १९ ॥

धनमण्डे सोह के मृतदामजी सेव नही महे और संवत् १८१३ में पुनः पुज्डिन कींटे पुनकी मनि को प्राप्त हो गये ।

मन्दारमकी मन्त्रोंके प्रभाव उमड़ी थी और बाजक दोनों अनाथ हो गए, अन्धविनीहो पणिके पिता अन्धक स्मशान ला दिगने लगा परन्तु उमनेम ही कुछ देना न हुए मुन-उमन्दार मन्दारमका बाज अन्धक माया, और उमने हनहा कर माउमा करके सब मन्दार

सावित्रीप्रिया और नरसिंहायें भगवद्भागवत हाथमें था ।
भगवद् नरसिंहायें की-व था, भा बड़ी छोड़ मुगलहाथमें रहता होगा,
हिसाब नहीं । बसावलीदास के बचत मुगलदास से । वस्तु
सब १६७८ में नरसिंहायें हाथमें मुगल मनी पड़ान था, मर १६९१
में मुगल हाथ, वर १६९२ में हिंदू मुगलदास हाथमें से हो-
गया था ।

१ अङ्क २० नवरी को उनी हप्ते वन है, उनमें खसिया बसा
‘कुमाल’ नाम की कवि है।

३. कर्मचारी अपने अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार करना है ।

पंचम भूपति शाह निजाम ।

छहमशाह यिराहिम नाम ॥ ३३ ॥

सप्तम साहिब शाह हुसेन ।

अष्टम गाजी सञ्चितसेन ॥

नवमशाह बक्यासुलतान ।

धरती जातु भवंदित मान ॥ ३४ ॥

१ बनारसीदासजीने जोनपुरके बादशाहोंके ये ९ नाम लिखे हैं—

- | | | |
|--------------|------------|-------------------------|
| १ जोनासाह | २ बजरकर | ३ सुरहर |
| ४ शेनमुहम्मद | ५ साहनिजाम | ६ साहयिराहीम (इम्राहीम) |
| ७ साहहुसेन | ८ गाजी | ९ बक्यासुलतान |

इन बादशाहोंका जगन्नाथनेकलिखे बानगीनसहीनामें जोनपुरका हक १५५६ ई.स.के लगभग मिल गया तो, दूध और ही पाया, और नाम भी चुन भो. ही पाये । नाम इन नवाबीगों के ये हैं—

१ मारिनप्रकवर २ मारिन निजामी ३ मारिन कलि
शाह ४ मारिन गीरीप्रशाही ५ देवदासुलतानी ६ सुमरा
लिखे ७ मारिनजोनपुर बंगाल —

इनमें सबसे पहली बंगाली बंगाली है । इन नवाबीगों में जो निजाम
जोनपुरके मालिकाना लिखा है, उसका नामय यह है कि—

निजामिप्रयोग का प्रयोग मुगलकालीन लिखितें उरद
ह.स. ११८१ ई.स. के बादका इन बंगाली मालिकाना गीरीप्र
साह, गीरीप्रसाद १ साकन मन १३११ मारिपुरी ३ मारि ११८८ में
म.स. ११८८ ई.स. के लिखितें निजामनगर के लिखितें और दक्षिणप्र
म.स. ११८८ ई.स. के लिखितें और दक्षिणप्रम.स. ११८८ ई.स. के लिखितें

इनका बंगाली नाम कलकत्तानिजामि मालिकाना

उलदीन मुहम्मदशाहने नामने लागपर बैठा । इलीको मुहम्मद मुगलक भी करते है । वह ११ मुराब सन् ७५१ (बीसवी ८ सैन् १४०५) को गिषमें मर गया ।

मुहम्मदमुगलकके बैठा नही था, इनडिसे उसके बरका लागार बरकाषा बैठा बीरोजशाहवारसुक बादशाह हुआ । इनने सन् ७७४ (सैन् १४११) में बगातेसे मरेते हुए, बीमरीनदीके तीरपर १ अगली समर्वाण जमीन देवावर बाई सहर बनावा, और उगका नाम अपने बपेभाई मुहम्मदमुगलकके अगली नाम मलिकजोनाके नामसे जोनपुर रखा, क्योंकि उसने स्वयंमें मलिकजोनाको दर करते हुए देवा था कि, इन सहरका नाम मेरे नामपर रखना ।

बीरोजशाह ११ रमजान सन् ७९० (भाई सुदी १५ सैन् १४४५) को ९० वर्षका होकर मरा । उसका बीता सगर ग्यासुद्दीन मुगलक बादशाह हुआ । वह ११ सफर सन् ७९१ (फागुन वदी ८ सैन् १४४५) को मारा गया । उसका बपेभाई अलूषक उसकी अगद बैठा । वह भी २० अितहिस सन् ७९१ (पौष वदी ७ सैन् १४१७) को मर गया । तब उसका बका नासिरउलदीन मुहम्मदशाह बादशाह हुआ । वह १७ रबीउलअव्वल सन् ७९६ (फागुन वदी ४ सैन् १४५०) को मर गया । उसका बैठा हुमायूँगा १९ को तरु पर बैठा और ११ मईने पीडे हो मर गया । तब उसके भाई नासिर-उलदीन महमूदशाहको रवाजाजहाँ बजोरने उसकी अगद बैठाया । इनने पूर्वके हिन्दुओंका स्वयं हो जाना मुनकर रवाजाजहाँको उनके ऊपर भेजा । वही पहिला बादशाह जोनपुरका हुआ । इनका नाम मलिक सरावर था और बीरोजके समयमें बीरोजका दारोगा था । नासिरउदीन-मुहम्मदशाहने इनको बजीर बनाकर रवाजाजहाँका रिताब दिया था और अब नासिरउदीन महमूदशाहने इसे पूर्वमें भेजा, तो मुलतानु-ल्लाहका पिता भी उसके दे दिया था, जिसका अर्थ होता है पूर्वका बादशाह ।

जोनपुरके शाह ।

१ मुल्तानउलशके ख्वाजाजहाँने हिन्दुओंपर जीत पाकर जोनपुरमें अपनी राजधानी स्थापित की। उसका राज्य परगने कोल तिरहुत तक था। वह सन् ८०२ (संवत् १४५६/५७) में मरा। उसके संतान नहीं थी, करनफल नाम १ लड़केको बेटा बनाया मा। वहीं उसके पीछे जोनपुरका बादशाह हुआ और मुयारिकशाह नाम रखा।

२ मुयारिकशाह—गुलशकोषी बादशाही दिन २ गिरती देखकर पूरा शासन होगया। २ वर्ष पीछे सन् ८०४ (संवत् १४५८/५९) में मरा। संतान इसके भी नहीं थी, भाई तन्हापर बैठा।

३ इब्राहीमशाह (मुयारिकशाहका भाई)—इसके समयमें दिनी गुलशकोषी सेयदोंने ले ली। पहिले सेयद विजयपुरी और फिर सेयद मुहम्मदशाह वहाँका बादशाह हुआ। इब्राहीम वनोंमें ही मरता मरता सन् ८०८ (संवत् १४६२ में) मर गया।

४ महमूदशाह (गुलशान इब्राहीमका बेटा)—इसके समयमें दिनीका बादशाह मुहम्मदशाह मर गया और बल्लाउद्दीनशाह बैठा। अमीरोंने उसमें नाराज होकर महमूदशाह को बुलाया, तब बल्लाउद्दीन पलायनके हाजिर बहलोललोदीको दिनी छोड़कर बदाऊँ चला गया। बहलोलने और महमूदने लड़ाई होनी रही, निदान महमूद सन् ८६२ (संवत् १५१४/१५ में) मर गया। बेटा न था, भाई तन्हापर बैठा।

५ मुहम्मदशाह (महमूदका भाई)—इसने बहलोलने गुलशकोषी, बल्लु और लड़ाई होने लगी और मुहम्मदशाह अपने भाइयों के हाथमें मरा। ५ महीने राज्य किया। उसका भाई हुसैनशाह बादशाह हुआ।

६ हुसैनशाह—इसने और बहलोलने भी बड़े २ गुद गुद निदान बदाऊँमें जोनपुर छोड़कर अपने बड़े बेटे वारनूकको दे दिया। हुसैनशाह दिनामें चला गया।

७ वारनूकका छोटी—सन् ८९८ (संवत् १५४५/४६) में बहलोल

मरा और छोड़ देया निजामशाही दिल्लीमें बादशाह हुआ और मुलतान सिकंदर बहलाया । बाबर उससे लड़ने गया और हारा । सिकंदरने जोनपुर तो उसे फेर दिया, परन्तु मुल्कमें अपने हाकिम बैठा दिये, जिन के कुलशेखर जोनपुर राज्यके आश्रित राज्योंमें लग होकर मुलतान हुसैन-को गुलाया । यह सन् ८९५ (संवत् १५४६) में आबर सिकंदरसे लड़ा, परन्तु हारकर बंगालेमें चला गया । सिकंदर अपने बेटे जलाल-शाही जोनपुरमें बैठाकर चला गया ।

८ जलालशाह छोदी—७ जोरबाद सन् ९१३ (मंगर मुदी ८ संवत् १५४१) को सिकंदर मरा और जलालशाहका भाई हुमायूँमशाह दिल्लीके सन् ११९९ बैठा, उसने जलालशाहको निकालकर जोनपुर दरियावाली-लोहानीको दे दिया ।

९ दरियावालीलोहानीके समयमें बाबर बादशाहने मुलतान हुमायूँमको मारकर दिल्ली लेनी । उसी समय दरियावाली भी मर गया ।

१० बहादुरशाह (दरियावाली बेटा)—बाबरके पीछे बादशाह हो गया । क्योंकि पठानोंकी बाइशाही दिल्लीमें जानी रही थी । बाबर बादशाहने शाहजादे हुमायूँको भेजा, उसने बहादुरशाहको निकालकर दिल्लीमें लगे जोनपुरमें रत दिया । उसके पीछे बाबापेग उसका बेटा जोनपुरमें हाकिम हुआ ।

११ बाबापेगको, दोरगांमूरे, हुमायूँ बादशाहने बादशाही लेनेके पीछे जोनपुरसे निकाल दिया और अपने बेटे आदिलशाहको जोनपुरका हाकिम बनाया ।

१२ आदिलशाह—१२ रबीउल आम्बल सन् ९५९ (जेठ मुदी १४ संवत् १६०६) को दोरगाहके मरनेपर रानीमशाह सन् ११९९ बैठा, उसने आदिलशाहको कुलावर बखानेवा मिल दे दिया और जोनपुर राज्यसे कर दिया । फिर जोनपुर राज्य नहीं हुआ, पठानोंके पीछे मुगलोंके राज्यमें भी वहाँ हाकिम रहने रहे ।

यह जोनपुरका संक्षिप्त इतिहास है । जिनमेंने इतिहास नहीं देना है,

वे यही जानते हैं कि, जोनपुर जोनाशाह (मुहम्मद मुगल) ने बनाया था, और यही मुनमुनाकर बनारसीदासजीने भी पहिलाबादशाह जोनाशाह लिखा है। यह बात कविवरके १०० वर्ष पहिले की थी, और तो भी किसी इतिहासके आधारमें नहीं लिखी थी, पुराने लोगोंमें कुछ पाठके लिखो थो, उसमें इनकी भूक होना संभव है। उन्होंने हम विषयमें श्रमः गहरानि नित होकर लिखा है।

“दुने पूरे पुण्या परधान । तिनके बचन मुनि हम जान ।

बानी क्या बचाभुन जेम । मुखादोह नहि लागे हम” १७८ ॥

(अर्थरूपानक)

हम प्रचार प्रथम बादशाह जोनाशाह नहीं, किन्तु बीरोजशाहको सम-
झना चाहिये। दूसरा जो बचनरसाह लिखा है, वह बीरोजशाह बाद-
शुह है। बावबुद्धा भगवत बचनरसाह हो गया है।

मीनगा — सा मुगलर मुनमान लिखा है, वह क्याजाजहाँ है, तिन-
का नाम सादक सादक था, १५९९ की मन्गीमें मुरहर लिखा गया है।

बीथा — तिनका दोस्तमोहम्मद लिखा है, वह सुबारिदशाह है,
तिनका नाम कज्जकज्जद था। सायद जोनपुरवाके उसे दोस्तमुह-
म्मद कहते थे।

गोथियाँ — तिनको सादरिनाम लिखा है, उनका पता सुबारिदशाह
में। इज्जतीमें के बीचमें कुछ नहीं मगना।

छद्दा — तो सादरिनाम लिखा है, वह इम्राहीमशाह ही है।

मानियाँ — तिनको शाहदुमेन लिखा है, वह इम्राहीमशाहके बेटे
महम्मद और सादमुहम्मदशाह के बेटे हुआ था। बीचके इन दो कारणोंको
बनारसीदासजीने नहीं लिखा है।

घाटियाँ — तो सादरिनाम लिखा है, वह मेहमद बहादुरशाह ही है।

शाहदुमेनके बीच बीच जोनपुरवा सादरिनाम हुआ था।

मनमो — तो बचनरसाह लिखा है, वह बहादुरशाह बेटे बावबु-
द्धा हो गया है। तिनके बचन जोनपुरवा सादरिनाम था।

बालक परमसेन अपने नानाके घर मुगमे रहने लगा । आठ वर्षकी उमर होने पर उसने पढ़ना प्रारम्भ किया और थोड़े ही दिनोंमें हिमाचलित्ताव जिटीपत्रीके कार्यमें व्युत्पन्न हो गया । योग्य वय होनेपर नानाके साथ मोना चांदी और जैषादिपाठका व्यापार भी करने लगा और व्यापार कुशल होनेपर मामान्तरोंमें भी जाने जाने लगा । एक दिन परमसेनने अपनी मातासे मन्त्र लेकर नानाकी सम्मतिसे बिना ही एक थोड़ेपर मवार होकर बंगालकी ओर कूच कर दिया, और वह कई मंजिरे तय करके इन्डियन स्थानपर जा पहुँचा । उक्त समय

एक तरह बनारसीदासजीके लेखकी विधि मिल गयी है ।

१ जोनपुरमें जो बनारसीदासजीने जहादिसानका व्यापार होता दिग्ग है, सो भी गही है क्योंकि जोनपुर आगरे और पटनाके बीचमें बसा भारी सहर था, और जब बदायूँ कादसाही थी, उस बन्ग सो बगरी रिही ही बग हुमा था, ४ कोसमें बसता था ।

इलाहाबाद बखसेके पीछे जोनपुर उसके नीचे कर दिया गया था ।

आरने अकबरीमें जोनपुरके १९ मुहान लिखे हैं, परन्तु अब आगरेकी अमलदारीमें जोनपुर ५ ही तहसीलोका जिला रह गया है ।

जोनपुरकी बस्ती अकबरके समयमें मिली थी, इलाहाबाद जुगसा निचे (भूगोल) जोनपुरमें मिलता है । उसमें जिला है कि, अकबर कादसा दने गरीबोंकी आंगोवा इलाज करनेके लिये एक इमीनको भेजा था, वह गरीबोंका सुख इलाज करता था, और अमीनको दोस लेबर दक देना था । नौ भी हजार पहरागी साथे रोमकी उमरको आमदनी हो गयी थी । एक दिन उसके पुमारोंने जब उमसे कहा कि, आज सो ५००० का ही गुजरा विषा है, तब उसने एक बगी आह मरी और कहा हाय ! जोनपुर बीगन (अजब) हो गया । फिर वह उकी दिन आगरेको बसा गया ।

बंगालमें सुलेमान मुलतान राज्य करता था। सुलेमान अपने साने लोदीखानपर बहुत प्यार करता था, और उसे अपने पुत्रके स्थानापन्न मानता था। सुलेमानके कोई पुत्र नहीं था। लुक्त लोदीखानके दीवानका नाम घन्नाराय श्रीमान्ड था। दीवान बड़ा उदार-शील और कृपानु था। उसका आययनाकर ५०० श्रीमान्ड वहां निवास करते थे। खरगसेनजी इन्हींकी सेशामें जाकर उपस्थित हुए। खरगसेनकी आयु अब भी छोटी थी। परन्तु वाक्पटुता और विचारशीलता देखके थोड़े दिन अपने आश्रित रज्जके दीवान साहिबने इन्हें चार परगनोंका पोतदार बना दिया। खरगसेन परगनोंमें जाके अमलदारी करने लगे। छह सात महीनेके पीछे दीवान साहिबने शिखरजीकी याचाका मंथ चन्नाया, और कुछ दिनोंमें वे यात्रासे लौटके घर आ गये। उस दिन मामाधिक करते २ उदरशूल उत्पन्न हुआ, और तत्काल ही उनका प्राण पन्हेरु टूट गया। कविवर कहते हैं—
पुण्यसंजोग जुरे रथपायक, माते मर्तग मुरंग तयले ।
मानि यिमाँ अगयो सिरमार, कियो विसतार परिग्रह लेले॥
बंध बद्धाय करी धिति पूरन, अस्त चले उडि बाप अकेले ।
हारि हमालकी पोटसी हारिकै, भीर दियालकी भीट भई सेले

१ सुलेमान किरानी जतिवा पद्यक था। वह हिमरीमन् १५९ (संवत् १६०९ से मन् १८१) (संवत् १९१०) तक बंगालका मन्त्र हाकिम रहा था। उसकी राजधानी गौड़में थी, जो बंगालका एक पुराना शहर था और त्रिपुरसे बंगालको अब तक गौड़बंगाल कहते हैं, और पहिले गौड़देव भी कहते थे। कविवरने संवत् १९२५ में बंगालका राजा साह-सुलेमानको लिखा है, जो बहुत दीव है। पीछे मन् १८१ (संवत् १९१२) में अकबरकी फौजने सुलेमानके बेटे दाऊदगंभी बंगाला और उड़ीसा छीन लिया।

सरगसेन अपनी मातामे नरपत्नी निरुत्तिका हात मुन चुके थे, मादबके हरीराम होनेपर उन्हें बही बात स्मरण हो आई, जिसे जो कुछ जमा पूँजी माथमें थी, उसे लेकर एक दुग्गी छोटीका बेप बनारस वहाँमे निकल पड़े। कई दिनमें मार्ग चलके मुगुमें आये। माताके चरणोंकी पूजा की। जो कुछ द्रव्य था, उन्हें नौर दिया और निरुत्तिका वारण बतलाया। इस समय सरगसेनकी वय केवट १४ वर्षकी थी, मातामे जांभू मरके रो दिया।

चार वर्ष जौनपुरमें रहके मंसूर १६२६ में सरगसेन आगरे में व्यापार निमित्त आये। सुन्दरदास वीरिया नामक किसी व्यापारीके सतिमें व्यापार किया। उक्त गांधीदारसे ऐसी निग्रता हुई कि, दोनोंकी प्रीति देखकर लोग दोनोंको पितापुत्र समझने लगे। चार वर्षके सतिमें बहुतसा द्रव्य एकत्र किया, और पाँचवें वर्ष माता और सुदजनोके प्रयत्नसे मेरठनगरके सुन्दरदासजी, धीमाठकी कन्याके साथ सरगसेनका विवाह हो गया। विवाह होनेके पश्चात् तिर अमरगढ़पुर (आगरा) आकर व्यापार में दक्षिण हो गये।

इसी समय अर्थात् संवत् १६२९ में निग्रपय सुन्दरदासजी अपनी मार्याके सहित परलोकयात्रा कर गये, और अपने पीछे मात्र एक पुत्री छोड़ गये। सरगसेनजी उदारचरित्र पुरुष थे, उन्होंने अपनी ओरसे बड़े साजसज्जसे निग्रकी पुत्रीका विवाह कर दिया, और पंचोके सम्पुत्र सुन्दरदासजीकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पुत्रीको सौंप दी।

संवत् १६३१ में सरगसेनने आगरा छोड़ दिया और वे विपुल सम्पत्तिके अधिकांश होकर जौनपुरमें रहने लगे। पीछे जौनपुरके प्रसिद्ध

घनिक लाता रामदासजी अग्रवाटके साथ संक्षिप्त जराहिमन का धंदा करने लगे ।

मंसूर १६३५ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु आठ दस दिन जीवित रहके अपनी काट लग गया । पुत्रके मरनेका समागमनको बहुत शोक हुआ । थोड़े दिनोंके पीछे पुत्रजामकी इच्छासे वे रोहतासपुरकी सती की यात्रा करनेको मजबूर हुए । परन्तु मार्गके तेरह मार्गमें चोगेने मंसूर नूट लिया, एक हूटी हौरी भी पाग में नहीं रही । दम्पती बड़ी कठिनायमें अपने शरीरको लेकर घर छोड़के भागे । कश्मिर कहते हैं—

गये हुते मांगनको पून । यह पाल दीनों सती भऊन ।

माट रूप देखें गव गोग । मऊ म समुझें मूलमलोग ॥

नामगोनके नामा मदनमिषत्री बहुत बूढ़ हो गये थे, इसलिये उन्होंने सब कार्य समागमनको सोप दिया था, और अन्त शान्तिमायके काटवागन करने थे । मंसूर १६४१ में शान्तिमायके साथ उनका शरीर छूट गया । नामाकी श्रावण हो बरिंदे पञ्चाग अर्थात् मंसूर १६४३ में समागमनकी पुत्रजामकी इच्छासे फिर मनेही यात्राको गये । सबकी बात सुनते हुये पि, भावपूर्णसे सोच म'ग । और थोड़े दिनोंके पीछे उनकी सब कामना भी पूर्ण हो गई । माट बरिंदे पञ्चाग पुत्रदा मुद देख, इस शिवे मतिशेष म'न-द मनाया गया । दम्पती मुनमसुरमें सोने लगाने लगे । पुत्रदा २-म'न-द म'न नाम नीचेके पदमें प्रकट होता,—

मंसूर कोन्दर भी मेनार । मायमान गिनतार मनाद ।

नकाहनी बाग बनिमद । जलज गोदिली नूनको चन्द ॥

रोदिनि विनिय धारनभनुमार । गरगसेन घर सुम भवतार ।
दीनों नाम विजमाजीत । गायटि कामिनि मंगलगीत ॥

पुत्र जब यह गान गद्दीनेका हुआ, तब सारगमेन सफुटुम्भ पा-
र्शनाथकी यादकी काशी गये । भगवन्की यात्रापूर्वक पूजन
बाहे उनके परजोहे गम्भीर पुत्रको दास दिया और प्रार्थना की,—
विरंजीयि बीजे यह बाल । मुम सारणागतके रत्नपाल ।

एस बालकपर बीजे दया । जब यह क्षम सुम्हार भया ८८

प्रार्थना करने समय मन्दिरका पुजारी वहाँ गया था । उसने
थोड़ी देर कपटरूप ध्यानसाधने और मौनधारण करनेके पश्चात्
कहा कि, पार्शनाथ भगवानका बस मेरे ध्यानमें प्रत्यक्ष हुआ है,
उसने मुझसे कहा है कि, इस बालककी ओरसे कोई विन्ता न
करनी चाहिये । परन्तु एक कठिनता है, जो उसके लिये कहा है
कि,—

जो प्रभु पार्श्वजन्मको गांव । सो दीजे बालकको नांव ॥९१॥

तो बालक विरंजीय होय । यह कहि लोप भयो सुर लोय ॥

सुरगमेनने पुजारीके हुता याचाकाटको सत्य समझ लिया और
प्रत्यक्ष होकर पुत्रका नाम बनारसीदाम रख दिया । यही
बनारसीदास हमारे इस धरिषके नायक हैं ।

काव्यकाव्य ।

हरपित कई कुटुम्भ साथ, स्वामी पास सुपास ।

हुहुको जन्म बनारसी, यह बनारसीदास ॥९३॥

बालक बड़े हास्य चापके साथ बढेने लगा । मातापिताका पुत्र
पर निःसीम प्रेम था । एक पुत्रपर जिस सान्निताका प्रेम नहीं होता ।

संवत् १९४८ में पुनः संमहणीरोगसे ग्रसित हुआ। मातापिताके शोकका ठिकाना न रहा। ज्यों त्यों मंत्र मंत्र संज्ञाओंके प्रयोगोंसे समहणी उपशान्ति हुई कि, शीतलाने आ घेरा। इस प्रकार १ वर्षके लगभग बालक अतीव कष्टमें रहा। शीतला शान्त होनेपर उक्त बाउककी पीठपर एक बालिकाका जन्म हुआ।

संवत् १९५० में बाउकने षट्शालाओं जाकर पाँचे रूपचन्दजीके पास गया पढ़ना प्रारंभ दिया। पाँचे रूपचन्दजी अप्यारमके गिहान् और प्रसिद्ध कवि थे। उनका बनाया हुआ पंचमंगलपाठ एक हरषमाही भेठ काव्य है। सारे जैनमन्त्रमें इनका प्रचार है। जैनी मात्रको यह कठम्य रहता है। बाउककी बुद्धि बहुत तीव्र थी, वह दो तीन वर्षमें ही अच्छा धुल्लभ हो गया।

जिन समयका यह इतिहास है, उस समय मुगलमानोंका प्रतापपूर्ण मर्यादमें था, उनके अत्याचारोंके मयमें देशमें बाउपियाहका प्रचार विशेषतामें हो रहा था। अतएव ९ वर्षकी वयमें अर्धाङ्ग मयत् १९५२ में भोगवाहुंके सेठ कल्याणमठकी ही कन्याके साथ बाउककी गगाई कर दी गई। मयत् १९५३ में एक बड़ा भारी दुष्काळ पड़ा, लोग अन्नकटिवे बेहाल किरते दिखाई दिये। मय. इस वर्ष विवाह नहीं हुआ। जब दुष्काळ कम २ में शांति हो गया, तब मयत् १९५४ में साथ सुरी १२ को बनारसीदास की बगल भोगवाहुंको गई। विवाह शुभमुहूर्तमें जानन्दके साथ हो गया। बगल लीटके घर आ गई। जिन दिन बगल घर आई उसदिन मातंगेनकीके एक पुनीदा और भी बन्ध हुआ, मोठकी दिन पुत्रा नार्नीन कृष कर दिया। कवि कहते हैं,—

नार्नीमरन सुभात्रतम, पुत्रवर भागीन ।

नार्नी कात्र एक दिन, मंग एक ही भोजन १०७॥

एह संतामविहम्पना, देण प्रगट हुन गेह ।

चमुरविन त्यागी भये, मूढ़ न जानहि भेह ॥ १०८ ॥

उम ममय विवाह होनेपर बरानके नाच ही हुनदिन ११गुण लदये आगी थी, उमी दवाके अनुसार हो महीने बपू जौनपुरमे रही, १३मा १ अरने बाबाके साथ विवाह हुई, विवाहबन्धो बन्दी गई।

एह बरी भागी विवति आई । जौनपुरके हारिम कुलीचने

१ कुलीच मुर्खी मन्तव्य राख दे, इनका अर्थ मान्य नही है । विग मन्त्र कुलीचका दुग्ग जौनपुरीर बनारसीरावजीने किया है, उम कुलीचगंगा अक्षरनाममे और जहागीरनामके ऐकजो बने उमठ पुनः बरनेये इनका पत्र भवा दे नि, कुलीचगंगा हनुमानरा रनेकसा जानोनुबखानी आरीच एह मुर्ख बा । हनुमान मूरान देराच एक राहा है । जो भव रावद कस्त बा अमीरकापुलदे बरनेये है ।

कुलीचगंगाके बपू दादा मुमन बादशाहोदे मोहर ये । कुलीचगंगाको अक्षरबादशाहने सन् १० जहूरी (संवत् १६१९) में सूरतकी विलेशी, और सन् १३ (संवत् १६३५) में गुजरातकी गुरेसरी दी थी । सन् १५ (संवत् १६३०) में उधे पत्रीर बनाया । सन् २८ (संवत् १६४०) में फिर गुजरातको भेजा और सन् १९० (संवत् १६४६) में राजा मोहरमलदे मनेर बह दीवान बनाया गया, तो सन् १००२ (संवत् १६५०) मकरहा । इमी बीबने सन् १००० (संवत् १६४८) में जौनपुरभी उधकी आगी में दे दिया गया । सन् १००५ (संवत् १६५३) में बादशाहने शाहजोह दानियालको हजाराकाबके गुरेये भेजा, तो कुलीचगंगाको उधका अगरीह (शिपूक) करके साथ किया । उधकी बेटी शाहजोहको बारी थी ।

फिर सन् ४४ (१६५६) में आगरेकी, और सन् ४६ (१६५८) में लाहौर तथा कापुलकी गुरेसरी उधको दी गई ।

सम्पूर्ण जौहरियोंको पकड़वाके बुलवाया, और एक बड़ा मनी नग मांगा, परन्तु उस समय जौहरियोंके पास उनका बड़ा जिनना हाकिम चाहता था, कोई नग नहीं था। इसलिये बेचारे नहीं दे सके। इसपर हाकिमका क्रोध और भी डबड उठा। उसने सबको एक कोठरीमें बँद कर दिये। और जब कुछ कल नहीं हुआ तब सबके सबको कोठोंमें (हुगोंमें) पीट २ के छोड़ दिया। इस अत्याचारमें अतिशय व्यथित होकर सम्पूर्ण जौहरियोंने मम्मतिपूर्वक नगर छोड़ दिया और सब यत्र तत्र चले गये। मरगमेनजीने भी अपने परिवारसहित पश्चिमकी ओर गमन किया। हाय! उस राज्यमें कैसा अन्याय था!!

गंगाधर कट्टामाणिकपुरके निकट शाहजादपुर नगर है। वहाँ तक आते २ मूसलाधार पानी बरसने लगा, घोर अंधकार छा गया। मार्ग कीचड़से पूर्ण हो गये, एक पैदल चलना भी कठिन हो गया। लाचार शाहजादपुरकी सरायमें डेर खानना पड़ा। उस

सन् १०१४ (संवत् १६६२)में जहाँगीर बादशाहने उसको गुजरातमें बंदल दिया, और सन् १०१६ (संवत् १६६४) में वह फिर लाहौर भेजा गया।

सन् ६ जहाँगीरी (संवत् १६६९) में काबुल और अफगानिस्थानके बंदोबस्तपर मुकर्रर होकर गया, जहाँ सन् १०२३ (संवत् १६७१) में मर गया।

बनारसीदामजने जो संवत् १६५५ में कुलीचखांका जोनपुरमें होना लिखा है, सो सही है। क्योंकि प्रथम जो जोनपुर कुलीचखांकी जागीरमें ही था। दूसरे संवत् १६५३ में उमदी तईनाली भी हज्जहाबादके सूबेमें हो गई थी, जिसके नीचे जोनपुर भी था।

नमयके कारणे वातर होकर नरगमेन दीन अनाथोंकी माई रोदन करने लगे । उन्हें यही पुत्र कन्या और रिपुलसम्पत्तिकी रक्षा अर्चमय प्रतीति होने लगी । परन्तु उदय अन्टा था । उस नगरमें करमचन्द नामक मादुरत्ययिक था । यह एक परममज्जनपुरुष था, और नरगमेनकी दक्षिणका था । यह इनकी निमित्तकी रोह वाकर दीडा हुआ आया, और कार्यवा करके नरगमेनको सपरिवार आने गृह ले गया । करमचन्दने बड़े आमहसे अपना धनधान्यपूर्णगृह नरगमेनको सोव दिया और माय दूसरे गृहमें रहने लगा । नरगमेनने गृहकी धान्यवादि प्रचुरभावकी न स्नेहके लिये बहुत प्रयत्न दिये, परन्तु सचे निषके प्रेमके आगे उनके आगृहका कुछ कठ नहीं हुआ । कविरा कहते हैं—

घन परस पायस समै, जिन दीनों निजमीन ।

ताकी मदिमाकी कथा, सुनसो परन कौन ? ॥१२८॥

शाहजादपुरमें नरगमेन सपरिवार सुमते रहने लगे, और निषके अगाध प्रेमका उन्मोग करने लगे । पूर्व की निमित्त सर्वथा भुन गये । इस भूतनेनर अन्वामके पक्षिया कविराते कहा है,—

यह दुख दियो नवाय कुलीच ।

यह सुख शाहजादपुर धीय ॥

यकटहि बहु भन्तर होय ।

यकटहि सुख दुख सम होय ॥

जो दुख देग सो सुख लई ।

सुख भुंजि सोर दुख लई ॥

सुखमें मारन मैं सुगी, दुखमें दुगमय होय ।

मूढपुरुषकी दृष्टिमें, दीसै सुख दुख होय ॥

शानी संपत्ति विपत्तिमें, रहै एकसी भांति ।

ज्यों रवि ऊगत आयचत, तजे न राती कांति॥१३०॥

शरगसेनजी शाहजादपुरमें १० महीने रहकर प्रयागको जिमें उस समय इलाहाबास भी कहते थे और जो शिवेजीके तटपर बसा है, व्यापारके लिये गये । परन्तु कुटुम्बको शाहजादपुरमें ही छोड़ गये । उस समय अकबरका शाहजादा (जहांगीर) प्रयागमें ही रहता था ।

पिताके चले जानेपर इधर बनारसीदासने कौड़ियाँ बट्टे से खरीदकर बेचनेका व्यापार सीखना प्रारंभ किया । प्रतिदिन टके दो टके कमाना और चाण छह दिन पीछे अपनी दादीके सम्मुख लाकर रखना, ऐसा नियम किया । कौड़ियोंकी कमाईको मोली दादी अपने पौत्रकी प्रथम कमाई समझकर उसकी सींगनी और निकुती लाकर सतीके नामसे बाँट देती थी । दादीके मोडेपनके विषयमें कविवरने बहुत कुछ लिखा है । उसका सारांश यह है कि "हमारी दादीके मोह और मिथ्यात्वका ठिकाना नहीं था, वे समझती थी, कि यह बाटक (बनारसी) सती जी की कृपासे ही हुआ है । और इसी विचारमें रात्रि दिवस मग्न रहती थी । रात्रिको नित्य नये २ म्वत्र देखती थी, और उन्हें यथार्थ ममत्तके तदनुसार आचरण भी करती थी ।"

तीन महीनेके पीछे शरगसेनजीका पय आया कि, सबको लेकर फतहपुर चले जाओ । ऐसा ही हुआ, दो छोटी दिगंबसें करके और सब सामान लेके बनारसी पिताकी आज्ञानुसार फतहपुर आ गये । फतहपुरमें दिगम्बरी ओमनाल जैन-

यौका बड़ा समूह था, उनमें वासुमाहजी मुख्य थे। वासुमाह
अध्यात्मके अच्छे विद्वान् थे। इनके पुत्र भगवन्तीदासजीने
भगवन्तीदासजीका सत्कार किया, और एक उत्तम स्थान रहनेको
दिया। खरगसेनजीका कुटुम्ब फतहपुरमें आनन्दमें रहने लगा
परन्तु कुछ दिन पीछे ही उन्होंने पत्र लिखके भगवन्तीदासजीके इलाहा-
बाद बुला दिया। इलाहाबादमें उस समय अवाधिराजका प्यापार
अच्छ चल रहा था। दानार्थाह सरकारकी अवाधिराजी करमायशकी
खरगसेन ही पूरी करते थे। वित्तपुत्र चार महीने इलाहाबाद रहे,
पश्चात् फतहपुर आके कुटुम्बमें मिले। इसी समय गहर लगी
थी, नयापगुलीय आगरेको चला गया है, जैनपुरमें सब

१ ये भगवन्तीदासजी कविता भी करते थे, परन्तु ब्रह्मविल्लास
के निर्माता वे नहीं हैं। क्योंकि ब्रह्मविल्लासके कर्ताके पिताका नाम
लालजी था, और इनके पिताका नाम वासुमाह । ब्रह्मविल्लासके
कर्ता आगराके रहतेकहे थे, और वे जैनपुरके थे। इनके अतिरिक्त
ब्रह्मविल्लासग्रन्थकी रचना संवत् १०५० में हुई है और यह समय
११५० का है। सुलका इनका बड़ा जीवन होना अगम्य है। नाटक
लमयताके अन्तमें भी एक भगवन्तीदासका नाम आया है, जो आग
रेमें रहते थे, और उक्त कविकहे पाँच मित्रोंमें अन्यतम थे।

रूपचन्द्र प्रतिम प्रथम, दुर्गिष चतुर्भुजनाम ।

दुर्गिष भगवन्तीदास वर, कैथरपाल शुभभाष ॥ ११ ॥

धर्मदास ये पाँचजन, x x x x x

अथवा जैनपुरके भगवन्तीदासजी ही बराबर ये हों, और आगरेके
आ रहे हों।

२ दानादाह जैन। बड़ी दारदृक्कानियाल तो नहीं जो अजब बड़-
दार्दक होय दादजादा था और इलाहाबादमें कुछ दिनों तक रहा था।
कुलीबखी उसका अनामीक (पाकिस्तान) था।

प्रकार शांति है । खरगसेनजी मकुटुम्ब जौनपुर चले आये । अन्ना जौहरी आदि जो माग गये थे, वे भी सब आ गये थे, और जौनपुर फिर ज्यों का त्यों आबाद हो गया था । सब लोग अपने-अपने कृत्यमें लग गये, और प्रायः एक वर्षतक जौनपुरमें शान्ति रही । इस समय संवत् १९५६ का था । इसके थोड़े दिन पीछे ही एक नरीनरिगति आई !

अकबरका शाहजादा सलीमशाह जो पीछे जहांगीरके नामसे विख्यात हुआ, कोन्हूवनकी आभेटको निकला था । कोन्हूवन जौनपुरके पास है । जौनपुरके नूरमसुल्लवानके पास इसी समय शाहीकरमान आया कि, शाहजादा तुम्हारे तरफ आ रहा है, कोन्हूवेना उठाव करो, जिसमें उसका कोन्हूवनका जाना बन्द हो जाये । नूरमसुल्लवानने शाहीकरमान निरादर बडाया, और एक निरिय उठाव बनाया । यहो तहाके गण मार्ग रोक दिये । शहरमें आरागमनके दरवाने बन्द करा दिये । गौमरीमें नौकायें बडान बन्द कर दी, और आग गडुमें आँके बेट गया । बुजोग तोँ बडव दी । कन्दुक गो-ग्रीवाकदोडा भेजार मोड़ दिया । इस प्रकार निग्रहका टाठ देनके प्रयत्न मानना प्रारंभ किया । कुछ समयतरान गनःका संगीने निग्रह सुडमानगे प्रार्थना की, परन्तु उसका कुछ बल नहीं हुआ, इसलिये वे लोग भी जागे । और थोड़े ही समयमें बड़ महानगर ऊबड़ हो गया । खरगसेनजी भी मकुटुम्ब

१ मुहम्मद गज़नीसमे जाने ६ मुररैमसन १००६ (मार्च ११७५) के राजा अलमरगिहके ऊपर आयेका हुनव दिग था, मगर बड़ बाली होकर हुनवकाग बल मल और दल वाली ही रहा ।

२ नूरमसुल्लवान गज़नीके पीछे जेतपुरका दरिद्र हुआ था ।

भागनेवालोंके भाषी हुए, और लछमनपुर नामक ग्राममें चौधरी लछमनदासजीके आभयमें जा टहरे और विसाहिके दिन गिनने लगे ।

सलीम शाहजादा औनपुरके पास आ पहुँचा, परन्तु अब गौ-मती उतरने लगा, और यह विमर्श देखा, तो कुछ चिंतित हुआ और अपने वकील लालबेगको नूरमसुलतानके पास भेजा । वकीलने मुल्तानके पास आकर इस बात बर्णन गर्म गर्म की और शाहजादेके पास उसे ले आया । नूरमसुलतान शाहजादेके पैरोंपर पड़ गया, तब शाहजादेने गुनह माफ़ करके अभयदान दिया । गगरमें फिर शान्ति हो गई, भाग हुए लोग पुनः आ गये । खरग-भेनजी भी ६-७ दिन लछमनपुरमें रहकर सीट आये, और अपने व्यवसायमें निरत हो गये ।

१ यह विमर्श क्यों किया गया ! इसका फल क्या हुआ ! और शाहजादा कैसे मान गया ! मुजफ्फरदांगीरी की भूमिकाके जो हाल जहाँगीर बाद-शाहकी कुबराबागस्थाफा लिखा है, उससे इन प्रश्नोंका समाधान हो सक्ता है । उसमें लिखा है कि, तारीख ६ महर सन् १००७ (आसोमरवी १४ संवत् १६५५) को अकबर बादशाह को दरखान फतह करनेके लिये गये और अजमेरका सुब शाहसलीमको जामीनमें देकर रानाको सर करनेका हुक्म दे गये । शाहसलीमका महरम और राजा मानसिंहकी मोदरी इनके दाउ बोली गई । बगलेका सुबा जो राजाको भेजा हुआ था, राजा अपने बड़े बेटे जगतसिंहको खोंबर शाहकी बिरमलमें रहने लगा ।

शाहसलीमने अजमेर आकर अपनी चीज राजाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों कीछे आप भी सिवार सेलते हुए, उदयपुरधे गये, विसको राना छोड़ गया था, और सिपाहियोंको बहालमें भेजकर राजाके पकड़नेकी बौधाय करने लगे ।

यह सुशामदी और स्वामी लोग जो भीचे नहीं बैठ करते हैं, इनके कान भरा करते थे कि, बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे हैं और वह मुन्क एकाएकी हाथ आनेवाला नहीं है; और वे भी बगैर लिये पीछे आनेवाले नहीं हैं। इसलिये इब्रत जो बदायि लौटकर आगरेसे परेके आबाद और उपजाऊ परगनोंको ले लें, सो बड़े फायदेकी बात हो। बगालेका किमाद भी कि जिसकी खबरें आ रही हैं और जो बगैर जाने राजा मानसिंहके मिटनेवाला नहीं है, जल्द दूर हो जायगा। यह बात राजामानसिंहके भी मतलबकी थी, क्योंकि उसने बगालेकी रतनालीका जिम्मा ले रखा था, इस वास्ते उसने भी हमें हां मिलाकर लौट चलनेकी सलाह दी।

शाहसलीम इन बातोंमें सनाधी मुहिम अधूरी छोड़कर इलाहाबाद की लौट गये। जब आगरेमें पहुँचे तो वहाँका किलेदार कुलीचम्पा पेशवाईको आया, उस वक्त लोगोंने बहुत कहा कि, इनको पकड़लेनेसे आगरेका किला जो नजानांमे भरा हुआ है, सहजमें ही हाथ आता है, मगर इन्होंने कुबूल न करके उसको दखल कर दिया और यमुनामे उतरकर इलाहाबादका रम्ना लिया। इनकी दादी हीदेमें बैठकर इनको हम इरादेसे मना करनेके लिये किलेमे उतरी थी कि, ये नारमें बैठकर जलदीसे चल दिये और ये नाराज होकर लौट आईं।

१ सफर सन् १००९ (हि० सावन सुदी ३ संवत् ११५०) को शाहसलीम इलाहाबादके किलेमें पहुँचे और आगरेसे इपरके बहुतसे परगने लेकर आने नौदरोंको जागीरमें दे दिये। बिहारका सूबा कुल-बुद्दीनगंगाको दिया। ग्रीनपुरकी सरकार लालाबेगको, और फाल-पाँधी सरकार नसीमबहादुरको दी। घनगूर शिवानने तीन लाख रुपयेका खजाना बिहारके साहिबमेंमे तहजीब करके जमा किया था, वह भी उसने ले लिया।

इसने जाना जाता है कि शाहसलीमने जो लालाबेगको जो-नुर दिया था, नूरमसुलतान लालाबेगको देने नहीं देना होगा;

बनारसीदासजीकी वय इस समय १४ वर्ष की हो
थी, काल्यकाण्ड निबन्ध गया था, और पुत्रावरणाका प्रारंभ था
समय १० देवदत्तजीके पास पढ़ना ही उनका एक मात्र कार्य
धर्मश्रयनाममात्यादि कई ग्रन्थ वे पढ़ चुके थे। यथा—
पदी नाममाळा दातक्षोप । और मनेकारण भयलोप ।
उद्योतिष भलंकार लघुकोक । संहस्फुट शत चार स्तोत्र
श्रीवन्दनाल ।

पुत्रावरणाका प्रारंभ बहुत बुरा होता है, अनेक लोग इस अवस्था
शरीरसे मदसे उन्मत्त होकर कुलकी प्रतिष्ठा मंजरी सतति आदि सब
का चौका लगा देने हैं। इस अवस्थामें गुरुजनोका प्रयत्न मात्र
रक्षाकर सक्ता है, अन्यथा बुराई नहीं होती। हमारे चरित्र-
नायक अपने माता पितासे इच्छाते लड़के थे, इसलिये माता, पिता
और दादीका उनपर अनिश्चय प्रेम होना स्वाभाविक है। सो अना-
पारण प्रेमके कारण गुरुजनोका पुत्रपर प्रितना भय होना चाहिये,
उतना बनारसीदासजीको नहीं था। फिर क्या था।
तजि कुलपान लोककी लाज ।
भयो बनारसि मासिरंयात्र ॥ १७० ॥

और—
करै मासिछी धरित न धीर ।
दरदयन्द ज्यों दोष फट्ठीर
इकटक देस प्यानसों धरै ।
पिता भापुनेछो धन हरे ॥ १७१ ॥

जिगर दाहसलीम शिषारका बहाना धरके क्या था, फिर नूरम-
वेगके हाजिरहोनेपर लालावेगछे वहाँ रत आया होगा।
१ छंद नाम इतकाज है।

चोरै चूनी माणिक मनी ।

आने पान मिठाई घनी ॥

भेजे पेशकशी हित पास ।

आप गरीब कहावै दास ॥ १७२ ॥

हमारे चरित्रनायक जिस समय इस अनगरंगमें सरायोर हो रहे थे, उसी समय जौनपुरमें सङ्तरगच्छीय यनि मानुचन्द्रजीका आगमन हुआ । यति महाशय सदाचारी और विद्वान् थे, उनके पास सैकड़ों श्रावक आते जाते थे । एक दिन बनारसीदासजी अपने पिताके साथ, यतिजीके पास गये । यतिजीने इन्हें सुबोध देखकर अह मगट किया । बनारसीदास प्रतिदिन आने जाने लगे । पीछे इतना अह बढ गया कि, दिनभर यतिके पास ही पाठशालामें रहने लगे । केवल रात्रिको घर आते थे । यतिके पास पंचसंधिकी रचना, अष्टौन, सामायिक, पडिद्योग (प्रतिक्रमण), छन्दशास्त्र, भुतबोध, कोष और अनेक स्फुटसोक आदि विषय कंठस्थ पड़े । आठ मूलगुण भी धारण कर लिये, परन्तु इस्क नहीं छटा—यथा—

कयहं मार शब्द उर धरै ।

कयहं जार भासिर्षा करै ।

१ यति मानुचन्द्रजी भेताम्बर थे, ऐसा जान पड़ता है । क्योंकि सङ्तरगच्छ भेताम्बरगम्प्रदायक ही है, और अष्टौन आदि विषय भी मुख्यतः भेताम्बरीय हैं, जो कविवर ने उनके पास से पड़े थे । परन्तु जान पड़ता है कि, उस समय रिगम्बर भेताम्बरीमें मात्र चलेक समान शत्रुभाव नहीं था ।

पौष्ठी एक बनार् नई ।

मित हजार दोहा घोषई ॥ १७८ ॥

तामें नवरस रचना लिखी ।

सै विनोय धरनन भासिणी ॥

ऐसे कुपयि बनारसि भये ।

मिथ्या ग्रन्थ बनाये नये ॥ १७९ ॥

कै पदना कै भासिणी, मगन दुष्टरसमादि ।

रानपानकी सुधि नही, रोजगार कसु नाहि ॥ १८० ॥

मिथा और अविद्यारूपइहक इनदोनोंकी संयोगरूप विविध भंवरमें भ्रमते हुए बनारसीकी आशुके दो वर्ष इस प्रकार शीघ्र ही बीत गये । १५ वर्ष १० माह की वयमें पाउसा (गौना, मुकलाया) करनेके लिये उन्हें स्वेरायाद जाना पडा । बड़े ठाठबाटसे समु-रानमें पहुँचे । समुद्रके प्रेमपुत्र आदर सरकारमें एक मास बीत गया । रतनेहीमें पूर्व कर्मके अशुभ उदयसे बीषमायके शूद्रपद्ममें अमुरमहाराजी बनारसीके चन्दविनिन्दित शरीरको कुछ राहुने आ-कर घेर लिया, सुधारम्बाका मनोहरशरीर ग्लानिपूर्व हो गया । लोग देख २ के नाक भौंह लिकोइने लगे । विवादिता कर्मा और आशुके अतिरिक्त सबने साथ छोड़ दिया । क्या—

भयो बनारसिदास तन, कुष्टरूप सरयंग
दाइ दाइ उपजी पृथा, केस रोम ध्रुवभंग ॥ १२५ ॥
विस्फोटक भगनित भये, दस्त धरण धौरंग ।
कोऊ नर साले समुद्र, भोजन करहि न संग ॥ १२६ ॥

पेसी अश्रुम दशा मरे, निकट न आवे कोइ ।

सामु और बियादिना, करहिं सेव तिय दोइ ॥ १२७ ॥

गैराबारमे एक नाई कुहरोगका पन्वन्तरि था । वह बनारसीकी टहल चाकरी और साथ ही औषधि करता था । उसने दो महीने जी लोह परिश्रम करके हमारे चरित्रनायकके राशुममित शरीरको मंगारके गगनमेद्वार पुनः निर्मल प्रकाशित कर दिया । नाईको यथोचित दान देकर सारस्वनाम करके बनारसदागजी घरको लौटे । परन्तु मानगसुरने अपनी लड़कीही रिश्वई नहीं की । घर आये—

भाव पिताके पद गढ़े, मा रोई उर होकि ।

जैगी जिरी कुरीजकी, ल्यों सुन्दरता विलोकि ॥

नरनामोन ललित मये, कुचजन कहे मनेक ।

रोये बहुत बनारसी, रहे स्थित छिन एक ॥ १२८ ॥

दस पाँच दिनके पश्चात्, फिर पाटणागामे पड़नेको जाने लगे और—

“ के पटना के आगिनी, वहिं प्री पछी जाइ । ”

नरनामोनकी इसी समय ध्यानांत निमित्त पड़नेको चले गये । बार महीने की । जनेऊ बनारसीदागजी फिर मगुगदको गये, और मयाँवा लेहर गए आ गये । सब बात सुनाय हो गये, इन बातों सुनकर शत्रुज देने लगे ...

सुन्दरन लोग देहि उपदेश ।

मानिलपात्र लुने दूषेश ॥

बहुत गढ़े सामन भद भाइ ।

चनिच गुन लो बडे हाइ ॥

बहुत पढ़ें सो मांनं भीय ।

मानहु पूत ! बड़ोंकी सीख ॥ २०० ॥

परन्तु गुरुजनोके वचनवृन्दरूप ओसके कनूके बनारसीके हृदय-
कमलपर उन्मत्तताकी प्रवृत्त बाहुके कारण कब ठहरनेवाले थे !
बढ़ते हुए सौरभ-प्रबोधिके प्रसाहको क्या कोई रोक सका है !
मरका कदा मुना इस कानसे मुना और उस कानसे निकाल दिया,
फिर हलचलेके हलके हो गये । गुरुजीने विद्या पढ़ना और इरकवाजी
हरना ये दो कार्य ही उन्हें मुक्तके कारण प्रतीत होते थे । मतिके
नुसार गति हुआ करती है । कुछ दिनके पीछे विद्या पढ़ना भी
कुछ जैचने लगा । टीक ही है, विद्या और अविद्याकी एकता
कैसी ! संवत् १६६० में पढ़ना छोड़ दिया । इस संवत् में आपकी
बहिनका विवाह हुआ और एक पुत्रीने जन्म दिया । पुत्री ६-७
दिन रहके बड़ बसी । विद्वानोंने पिताको बीमार करती गई । बना-
रसीदासजीको बड़ी भारी बीमारी लगी । बीम लघने करनी पड़ी ।
११ वे दिन वैद्यने और भी १०-५ लघने करानेकी बात कही,
और वहाँ छुपाके मारे जान जाते थे, तब एक विचित्र रंग खेना,
पवित्रो पर सुना वाकर आप आधसेर पूरी चुराके उठा गये ॥
माश्चर्य है कि, वे पूरी आपको पच्यका काम कर गई, और आप
भी ही निरोग हो गये । इसी संवत् में सरगसेनजीने एक बड़ा
री ब्यापार किया, जिसमें कि सौगुना लाभ हुआ ! सम्प्रतिवे पर
गया ।
संवत् १६६१ में एक संन्यासी देवता आये । उन्होंने बड़े
भीका लकड़ा समस्तके बनारसीको कैसानेके लिये आठ वि-
१६ पुत्रीका नाम दिव्यलीमें बीरपार्वी रिया है ।

छाना । जाऊ काम कर गया । बनारसी काम छिपे गये । मन्वा-
मीने रंग जमाया कि, मेरे पास एक ऐसा मंत्र है कि, यदि कोई
उमे एक वर्षावक नियमपूर्वक जी, तथा छिमीपर प्रगट न करे, तो
मन्व कीनेपर गृहशास्त्र प्रतिदिन एक सुर्यमुखी पड़ी हुई पारै ।
इसकाजोको इन्धकी बहुत आवश्यकता रहती है । इस कल्प-
हुम मंत्रकी बातसे उनकी लाउ टपक पड़ी । मन्वा मन्वामीकी ऐसा
मुश्रूपा करने, उपर मन्वामी लगा पैमे ठगनेकी बातें बनावें ।
निरान मागूर इन्ध मंत्र करके मन्वामीमे मंत्र भीम छिया, और
तन्हाउ ही मंत्र करना प्रारंभ कर दिया । इपर मन्वामीभी
भीटा पाकर भी हो गयाह हो गये । मंत्र करने २ एक वर्ष बड़ी
कठिनायि पूर्ण हुआ । वनःकाउ ही खान ध्यान करके बनारसी
महाभाग बड़ी शक्त्यामे प्रगट होने हुए गृहशास्त्र आये । मन्वा
मन्वीन भूषन, वस्तु बड़ा क्या साक पड़ी बी । भगता बुनी होती
है, गोपा छि बड़ी दिन गिननेमें मेरी भूउ न हो गई हो, अस्तु
एक दो दिन और मड़ी । और भी मागूर छि दिन गिर पड़का
वस्तु मुदा तो क्या बूनी बौदी भी नहीं मिली । मन्वामीकी
तात्पर्यसे मन्वा भूउ २ भागें मूनी । भगने एक दिन वह भान
बी बी मन्वा मन्वामीकी कह मुनाई । मन्वामीने मन्वामीके छउ
करके हो गिरा प्रगट कर कहा, मन्वा मन्वा मन्वा हुए ।

कोडे दिन केडे एक मोगीने मागूर भगता एक दमरा ही
मेव जमाया । एक बन्वा शिष्टा का मुँह ने, वस्तु कोडे बनारसी-
का छि बी मेव जमाये देन न मली । मोगीने एक दिन तथा
बुउ दूरनेके डाकमन्व छिमे मन्वा कहा कि, यह महाशिवकी मूर्ति
है । इसकी पूजासे महाशिवी की छिप ही छिप (मोच) मन्वा करन

है। मोले बनारसीने जोगीकी बात सिर जामोंमे मान ली और जोगीकी सेवा सुधूषा करना शुरू कर दी। यथायोग्य भेटादि देके उसे एवं सतुष्ट किया। दूसरे दिनसे ही सदाशिवकी पूजन होने लगी। पूजनके पश्चात् सिर सिर-बहकर एकसौआठ बार जप भी होने लगा। पूजन और जपमें इतनी थकावट कि, पूजन जप किये बिना भोजन नहीं होते थे। यदि किसी कारणवत् किसी दिन पूजन नहीं की जा सके, तो उसके पापश्रित मरुत लूषा भोजन करनेकी प्रतिज्ञा थी। परन्तु प्यास रहे, यह पूजन गुरुरूपसे होती थी, कोई गृहपुण्ड्रिणी जानता भी नहीं था। अनेक दिनों यह पूजन होती रही। मध्य १८८१ में मुकीम हीरानंदजी ओसवालने शिखरजीको सपन-छाया, गांध २ मगर २ में संपत्ती पत्रिकाओं भेज दी। हीरानंदजी सलीम शाहजादेके जाहरी थे, अतः लग समय इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। दरगासेनजीके पास हीरानंदजीका विशेष पत्र आया, इसप्रिये ये गंगाके किनारे हीरानंदजीमें मिलें और हीरानंदजीके आमहसे बहीके बही बाधाको चले गये। जब यह समाचार बनारसीको लगे, तब उन्होंने घर सूना पाकर जैनकी गुड़ी उड़ाना शुरू किया। नि- ताके जानेपर पून निरुत्त हो गये, और नित्य परमें कलह मचाने लगे। एक दिन बंटे २ एक मुकुदि सुखी कि, पार्श्वनाथकी बाधाको बतना चाहिये। मातासे आज्ञा मांगी, परन्तु जब उसने सुनी तब मुनी कर दी, तब आपने दही, दूध, घी, चाय, चना, तैल, मूत्र और पुण्यादि पदार्थोंको छोट दिया, और प्रतिज्ञा की कि, तब तक बाधा नहीं करूंगा, तब तक ये पदार्थ मोगमें नहीं लाऊंगा। प्रतिज्ञाको २ बहीनें भीत गये। कार्तिकी पूर्णिमा आ गई। लोग गंगाधामको और जैनी पार्श्वनाथकी बाधाको चले,

छात्र । जाऊ काम कर गया । बनारसी कांभु त्रिये गये । सन्या-
मीने रंग जमाया कि, मेरे पास एक ऐसा मंत्र है कि, यदि कोई
उमे एक वर्ष तक नियमपूर्वक जौ, तथा किमीस प्रगट न करे, तो
मात्र बीननेर गृहद्वारा प्रतिदिन एक सुवर्णमुद्रा पड़ी हुई पड़े।
इच्छाओंको द्रव्यकी बहुत आवश्यकता रहती है । इस कला-
द्रुम मरही कालमे उनको मात्र दख पड़ी । जौ सन्यामीकी सेवा
सुपूजा करने, उपर सन्यामी लगा ऐसे टगनेकी बातें बनाने ।
मिरान सगूर द्रव्य गन्ध करके सन्यामीमें संघ मीन दिया, और
तत्काल ही जा करना फारम कर दिया । इधर सन्यामीकी
बीरा पाकर बी दो श्वाह हो गये । मंत्र जान २ एक वर्ष बरी
कठिनतासे पूर्ण हुआ । फल-काउ ही ध्यान ध्यान करके बनारसी
मदालय पड़ी । द्वादशमे प्रमथ होने हुए गृहद्वारा आये । जौ
समीन गूचन, सगू पड़ी क्या माक पड़ी थी । माता बुनी होती
है, मोचा कि बड़ी दिन गिननेमें मेरी बूट न हो गई हो, अगु
एक दो दिन और मही । और भी काउ छह दिन मिर पट्टा
पगगु मुद्रा मो क्या पड़ी बौंदी भी मही मिरी । सन्यामीकी
नाचने भर बूट २ जौने मुद्रा । मगने एक दिन यह जान
की की मुद्रा मनुबदलीको बह मुकई । मुकजीने सन्यामीके तज
करके दो विशेष प्रगट कर कहा, तब मग मनेन हुए ।

कौंके दिन की है एक भोगीने मगूर जाना एक दूगा ही
उन प्रगट । एक बार लिखा था मुँह जे, पगगु भोगे बनारसी-
का दि । की रंग बनने देन न मगी । भोगीने एक दोन तथा
बूट मुद्राके द्वादश दिने और कहा कि, यह माकुशिवकी मुद्रा
है । इसकी द्वादशमे बदलाती की जौन ही लिख (बोच) मग करन

है। मोठे बनारसीने ओगीकी बात गिर आंगोने मान ली और ओगीकी सेवा सुधूरा करना शुरू कर दी। यथायोग्य भेटादि देके उगे रूख संभुट दिया। हमरे दिनसे ही खदादिशकी पूजन होने लगी। पूज-मके पध्यान् तिथ तिथ-कदकर एकमाँआठ बार अर भी होने लगा। पूजन और शायें इतनी बढ़ा हुई कि, पूजन अब बिदे बिना भोजन नहीं होते थे। यदि किसी कारणवश किसी दिन पूजन नहीं की जा सके, तो उसके बादधित्त मरूप मृन्मा भोजन करनेकी प्रतिज्ञा थी। परन्तु ध्यान रहे, यह पूजन गुरूपसे होती थी, कोई गृहकुटुम्बी जानता भी नहीं था। अनेक दिनों यह पूजन होनी रही। सन् १८८१ में मुस्लीम हीरानंदजी ओसवालने शिमरजीको सप च-छाया, मर २ नगर २ में संधरी परिकारये भेज दी। हीरानंदजी मुस्लीम शाहजादेके जाहरी थे, अतः उस समय इनकी बड़ी प्रतीक्षा थी। दरगमेनजीके पास हीरानंदजीका विशेष वष आया, इसलिये वे संगके हिमारे हीरानंदजीने मिले और हीरानंदजीके आमहमे बहीके बही याशको चले गये। जब यह समाचार बनारसीको लगे, तब उन्होंने घर सूना पाकर चैनही मुह्री उड़ाना शुरू दिया। रि-हाके जानेपर पून निरकुश हो गये, और नित्य वरये कदह मधाने लगे। एक दिन बैठे २ एक मुकुटि मूषी कि, पार्थनाथकी याशको चलना चाहिये। मानासे आशा मांगी, परन्तु जब उसने सुनी अनसुनी कर दी, तब जानने दही, दुध, घी, चावल, चना, तेल, ताम्बूल और पुष्पादि वदार्थोंको छोट दिया, और प्रतिज्ञा की कि, जब तक याश नहीं करेगा, तब तक ये वदार्थ भोगमें नहीं लाऊंगा। इस प्रतिज्ञाको ९ महीने चीन गये। कर्तिरही पूर्णिमा आ गई। होव लोग मंगलमानको और चैनी पार्थनाथकी याशको चले,

तब बनारसी भी अवसर पाकर किसीसे बिना पूछेताछे उनके साथ हो लिये । बनारसमें पहुँच कर गंगास्नान पूर्वक मगवान् पार्श्वमु-
पार्श्वकी पूजन दशदिन तक बड़े हावभावसे की । स्मरण रहे कि,
सदाशिवकी पूजन वहाँ भी छोड़ नहीं दी थी, वह नियमसे
होती थी । यात्रा करके संखोली लिये हुए बड़े हर्षके साथ घर
आ गये । कविवरने अपने जीवनचरित्रमें सदाशिवपूजनको
उल्लेख और आधेपालंकारमें इस प्रकार कहा है....

शंकररूप शिष्य देव, महार्शच्च बनारसी ।

दोऊ मिले अयेय, साहिब सेयक एकसे ॥ २३७ ॥

रेलतारके कारण जैमी आजकलकी यात्रा सरल हो गई है, ऐसी
उस समय नहीं थी । जो यात्रा आज २० दिनमें पूरी हो जाती है,
उस समय उसमें १ वर्ष बीत जाता था । अतः मुकीम हीरानन्द-
जीका संध बहुत दिनके पीछे लौटके आया । आते २ अनेक लोग
मर गये, अनेक बीमार हो गये, और अनेक लुट गये । खरगसे-
नजीको उदर रोगने घर दबाया । ज्यों त्यों बड़ी कठिनतामें संधके
साथ अपने घर जौनपुर तक आये । जौनपुरमें सचका खरगसेनजीकी
ओरमें यथोचित आतिथ्यसत्कार किया गया, पश्चात् यहीने संध
बिगुर गया, सब लोग अपने २ माम नगरीकी राह लग गये—
करते।

य कूटि चहुँदिशि गयो, आप आपको दोय ।
घोटे

रंग जमाया नाथ संगोग ज्यों, बिगुर मिले नहिं कोय २२३

पर फिर भी रंग-जमते रूँधीरे २ सात्त्व्य लाभ करने लगे । दाट-

बूझ पूजनके उपकरण दिये थे पश्चात् प्रमुच्यतामें रहने लगे । यात्रागे

हे । इसरी पूजामें महात्माजी पुनर्ने जन्म लिया था, पशु वह दो

चा दिनमे अधिक मही टरग । हुनी समय बनारसीदासके ॥३॥
हुआ । दान्तु उसकी भी मही दसा हुई ।

मंसूर १८९२ के कार्तिकमें बादशाह जल्लादुद्दीन अकबरकी
सुनु आगतामे हो गई । यह रात्र दिन समय जौनपुरमें आई,
महाके हृदयमें अमीम आतुङ्गाका उदय हुआ । इस आतुङ्गाके
जनक कारण से । एक तो आकलकी गई उस समय एक
मममादका शरीरपात हो जानेपर दसरा ममाद शान्तिताके साथ
राज्यागमपर मही बैठ गता था । बिना सुनगछी हुए तथा
प्रमत्त माना आवाचार हुए बिना बादशाहत नहीं बरसनी थी ।
दसरे मुगलमानोंमें अकबर सरीभे मशविष बादशाह बहुत बोटे
होने थे । यद्वि अकबरकी राजकीति अतिशय कुट मही जाती
है, दान्तु मश उसके राजाकालमें दुःखी मही रही, यह निमय
है । आज उस मशकलत नरनाथकी दरलोकयात्रासे मश अनाथ
हो गई । चापे और कोलाहल मश मश । छेमेको निपति मुंह
काटे मश दिग्गने छगी । सबने अपनी २ जया पुत्रीकी रक्षामें
विष लगाया—

छर छर दर दर दिवे कपाट ।

दरपानी नहिं बैठे हाट ।

दरपार (१) गादी कहुं और ।

नकद माल निरमरमी ठार ॥

१ अकबरका देहान्त कार्तिक सुदी १४ मंसूर १८९२ मंगलवारकी
रात्रिके हुआ था, और दूसरे दिन कुषमाणे उत्तरदिया हुई थी ।

तब बनारसी भी अवसर पाकर किसीसे बिना पूछेताछे उनके साथ हो लिये । बनारसमें पहुँच कर गंगास्नान पूर्वक भगवान् पार्श्वन्-पार्श्वकी पूजन दसदिन तक बड़े हावभावसे की । स्मरण रहे कि, सदाशिवकी पूजन वहाँ भी छोड़ नहीं दी थी, वह नियमसे होती थी । यात्रा करके संछोड़ी लिये हुए बड़े हर्षके साथ घर आ गये । कविवरने अपने जीवनचरित्रमें सदाशिवपूजनको उत्प्रेक्षा और आश्लेषालंकारमें इस प्रकार कहा है....

शंखरूप शिष्य देय, महाशंख बनारसी ।

दोऊ मिले अयेय, साहिय सेयक एकसे ॥ २३७ ॥

रेलवारके कारण जैमी आजकलकी यात्रा सरल हो गई है, ऐसी उस समय नहीं थी । जो यात्रा आज १० दिनमें पूरी हो जाती है उस समय उसमें १ वर्ष बीत जाता था । जनः मुक्रीम हीरानन्द जीका संघ बहुत दिनके पीछे छोटके आया । आते २ अनेक लोग मर गये, अनेक बीमार हो गये, और अनेक लुट गये । मुरगसे नजीरो उदर रोगने घर दबाया । ज्यो त्यों बड़ी कठिनतासे संपर्क साथ आने घर जीनपुर तक आये । जीनपुरमें संघका मुरगसेनजीबी आरंभ यथोचित आतिथ्यसत्कार दिया गया, पश्चात् यहीसे संप निगुर गया, सब लोग आने २ मास नगरोड़ी राह लग गये—

बोहे हू कटि चहुँदिशि गयो, आप आपको दोय ।

मा बनाया नाच मंजोम ज्यों, विहुर मिले नहि कोय २२१
वा दिग भी मा अपन दन्धीरे २ सारथ्य छाम काने लगे । हाट-
हुट पूजनके उत्कृष्ट दिने और पश्चात् प्रगल्भतासे रहने लगे । वाकाने
है । इसकी पूजासे महात्माजी के पुत्रने जन्म लिया था, पशुपुत्र वह दो

चा। दिनमें अधिक बड़ी टहर। इसी समय बनारसीदागके पुत्र हुआ। पशु उसकी भी बड़ी दया हुई।

संवत् १६६२ के कार्तिकमें बादशाह जटापुरीन अकबरकी मृत्यु आगरामें हो गई। यह नगर जिस समय जीनपुरमें आई, प्रजाके हृदयमें अभीय आकुलताका उदय हुआ। इस व्याकुलताके अनेक कारण थे। एक तो आकलकी माई उस समय एक मम्मादका शरीरपात हो जानेपर दूसरा सम्राट् शान्तिताके साथ राज्यासनपर बड़ी बैठ गया था। बिना खुशखबरी हुए तथा प्रजापर आज्ञा अध्याचार हुए बिना बादशाहत नहीं बदलती थी। दूसरे मुगलमानोंमें अकबर कीर्तिमें प्रभावित बादशाह बहुत बोझ होते थे। यद्यपि अकबरकी राजनीति अतिशय कूट कही जाती है, पशु प्रजा उसके राजत्वकालमें दुःखी नहीं रही, यह निश्चय है। आज उस प्रजावासक नरनाथकी परलोकयात्रासे प्रजा अनाथ हो गई। चाहे और कोशाहत मच गया। लोगोंको विरहि भुंन बाँटके मर दिखाने लगी। सबने अपनी २ जमा पूंजीकी रक्षामें बिच लगाया—

घर घर दर दर दिये कपाट।

हटपानी नहिं बैठे दाट।

हँदवारें(१)गादी कहुं और।

नकद माल तिरमरमी छार ॥

१ अकबरका देहान्त कार्तिक सुदी १४ संवत् १६६२ मंगलवारकी रात्रिमें हुआ था, और दूसरे दिन शुक्रवारको उत्तरदिया ॥ थी।

मले बख्ख अरु भूपन मले ।

ते सब गाढ़े धरती तले ॥

घर घर सबनि विसाहे शख ।

लोगन पहिरे मोटे बख्ख ॥

ठाढो कंबल अथवा खेस ।

नारिन पहिरे मोटे वेस ॥

ऊंच नीच कोड न पहिचान ।

धनी दरिद्री भये समान ॥

चोरि घाड़ दीसै कहुं नाहिं ।

यों ही अपभय लोग उराहिं ॥ २५५ ॥

यह अशान्तिकी हवा दश बारह दिन बड़े जोर शोरमे चळती रही । तेरहवें दिन शान्तिमूचक बादशाही चिट्ठिया आई और पर २ बांट दी गई । चिट्ठिया बांटते ही अशान्तिने बिदा ले ली । सम्राट्ठा खिंच गया । पर २ जयजयकार होने लगा । जो धनी और गरीबोंका भेद उठ गया था, वह अब फिर आ ईटा । धनी-योके दम देष चमचमाने लगे, बेघारे दरिद्री भीख मांगते हुए नजर आने लगे । चिट्ठीमें ममाचार हम प्रकार थे—

प्रथम पातशाही करी, बायनघरप जलाल ।

अथ सौलहसै बासठै, कार्तिक हूओ काल ॥

अकबरको नन्दन बड़ो, सादिय शाह सलेम ।

नगर आगरेमें तखत, पैटो अकबर जेम ॥ २५८ ॥

नाम घटायो नूरदी, जहांगीरसुलतान ।
फिरी दुदार्द मुलकमें, जदें तदें भरती भान ॥ २६

कमिबर बनारसीदासजीका हृदय बहुत कोमल था, वे अक्सर के परमेश्वरि गुण सुनकर बहुत प्रसंगा दिया करते थे । अक्सरकी श्रावणी रात्रि मित समय जौनपुर आई, उस समय परकी सीढ़ीपर बैठे हुए थे, मुनते ही मूर्च्छों आ गई । शरीर सीढ़ीसे नीचे दुटक गया, माया फूट गया, रून बहने लगा और उसमें कपड़े सराबोर हो गये । माता पिता रोते हुए आये, पुत्रको गोदमें उठा लिया । पंगा करके पानीके छौंटे बान्ने मूर्च्छों उरसान्ति की गई; पावमें कपड़ा जलाके भरदिया गया । थोड़े समयमें अच्छे हो गये । महीन बादशाहके तिटककी गुसीमें घर २ उलगव बनाया गया । राज्यभक्त प्रजानेविचारियोंको बहुत सा दान दिया । पाठकोको स्मरण रहे कि, अभी तक सदाशिवकी पूजन निरंतर हुआ करती थी, उसमें बनारसीने कभी भून नहीं की । उस दिन एकान्तमें बैठे २ सोचने लगे ।...

अब मैं गिरफो परफो मुरसाय ।
तब तिय कानु नहि करी सदाय ! ॥

इस निकट संकाश समाधान अब उनके हृदयमें न हुआ, तब उन्होंने सदाशिवजीका आसन बही अन्यत्र लगा दिया, और पूजन करना छोड़ दिया । बनारसीके आनागती हृदयने इस समयमें ही पकटा गाया । उनके शरीरमेंले काष्ठकपन कभीका निकल गया था । दुवावरया विराजमान थी । विचारोंकीने दुवावरयाकी मददकी उम्मातासे बहुत शगला मया रक्ता था, परन्तु दुसंनति और

भले बख अरु भूपन भले ।
 ते सय गाढ़े घरती तले ॥
 घर घर सयनि विसाहे शख ।
 लोगन पहिरे मोटे बख ॥
 हाडो कंवल मयवा खेस ।
 नारिन पहिरे मोटे वेस ॥
 ऊंच नीच कोउ न पहिचान ।
 धनी दरिद्री भये समान ॥
 छोरि घाढ़ दीसै कहुं नाहि ।
 यों ही मयमय लोग उरार्हि ॥ २५५ ॥

यह अशान्तिकी हवा दस बारह दिन बड़े जोर शोरसे चलती रही । तेरहवें दिन शान्तिमूचक बादशाही बिट्टिया आई और घर २ बांट दी गई । बिट्टिया बांटने ही अशान्तिने बिदा ले ली । मघाटा निच गया । घर २ जयजयकार होने लगा । जो धनी और गरीबीका भेद उठ गया था, वह अब छिर आ ईटा । धनियोंके बग येन समबमाने लगे, बेचार दरिद्री भीग मांगने हुए मरर आने लगे । बिट्टीमें गमाचार हम प्रकार थे

प्रथम पातशाही करी, बाधनधर जलाल ।
 मय सालहसे बासटे, कार्निंक हुमो काल ॥
 अकबरको नन्दन बड़ो, ग्राहिय शाह राहमे ।
 नगर भांगरेमें लगत, वैडो अकबर जेम ॥ २५६ ॥

नाम धरायो नूरदी, जहाँगीरसुलतान ।

किरी दुदार् मुलकमें, जटै तटै सरती मान ॥ २६९ ॥

कविर बनारसीदासजीका हृदय बहुत कोमल था, वे अकथ-
नके धर्मगणदि गुण सुनकर बहुत प्रसंगा दिया करते थे । अक-
बराकी मृत्युकी खबर मिल समय जैनपुर आई, उस समय से
धरकी सीढ़ीपर बैठे हुए थे, सुनते ही मूर्च्छा आ गई । शरीर
सीढ़ीसे नीचे टुकक गया, माथा चूट गया, सून बहने लगा और
उसमें कपड़े मराबोर हो गये । माता पिता सोचे हुए आये, पुत्रको
गोदमें उठा लिया । पंखा करके पानीदे छोटे हाथके मूच्छां
उपशान्ति की गई; घावमें कपड़ा जलाके मरदिया गया । थोड़े समयमें
मज्जे हो गये । महीन बादशाहके निकटकी गुसीमें था २ उत्तर
मनाया गया । शन्यमस्त प्रजाने भिचारियोंको बहुत सा दान दिया ।

पाठकोंको स्मरण रहे कि, अभी तक मन्दासिंहकी पूजन निरंतर
हुआ करता थी, उसमें बनारसीने कभी भूठ नहीं की । उस दिन
दक्षान्तमें बैठे २ सोचने लगे ।...

जब मैं गिरयो परयो मुरसाय ।

तब शिव कसु नहि करी सदाय ! ॥

इस बिहट जवाका समाधान जब उनके हृदयमें न हुआ, तब
उन्होंने सदासिंहजीका आसन कहीं अन्यत्रलगा दिया, और पूजन
करना छोड़ दिया । बनारसीके नानासी हृदयने इस समयसे ही
पलटा गया । उनके शरीरमेंसे वाटकपन कभीका निकल गया
था । पुत्रावरण मिटकमान थी । विप्रादेवीने पुत्रावस्थाकी महचरी
उन्मत्ततासे बहुत शयदा मया रमना था, पान्थु कुसंगति और

नले बल्ल अरु भूपन नले ।
 ते सब गाढे धरती तले ॥
 घर घर सगनि बिसाहे शल्ल ।
 लोगन पहिरे मोटे बल्ल ॥
 रात्रो कंषल मयदा सेस ।
 नारिन पहिरे मोटे वेंस ॥
 ऊंच नीच कोउ न पहिचान ।
 घनी दाहिनी मये समान ॥
 कोरि छाड़ दीसै कहुं नाहि ।
 पो ही मानय लोग दयाहि ॥ २५५ ॥

यह भक्तान्त्रिणी हवा दग बग्नू दिन बटे जोर होमे बडो
 गद्दी । नेहवे दिन शल्लिमुख बग्नूही बिहिया मई श्री
 घर २ बंड ही श्री । बिहिया बग्नू ही भक्तान्त्रिणि विहाले श्री ।
 मग्नया निष मया । घर २ बडबडकर होने लगा । जो बग्नू
 भीरु गरीबोका बेद उठ मया य, यह अब फिर भा बंडा । पवि-
 रोंके सम हो । बडबडने छले, बेचने दाहिनी भीम मानने दुर
 बडा भवे छे । बिहिये मयचर इस घर धे-

बडन पानदाही कगी, बडनधर जगल ।
 अब गालदमि बामटे, कारिण हूमो बाल ॥
 बडबडो नन्दर बडो, माहिब दाद मलेम ।
 जगल मालोमे मगन, बडो मयचर जेम ॥ २५६ ॥

सतंत्रताके कारण वह विजयलाम नहीं कर सकी थी । अब सतंत्रता गृहजंजादको देखके रूचकर हो गई थी, बेचारी कुसंगतिको सदा साथ रहनेका अवकाश नहीं था । अतएव विधादेवी अपना काम कर गई । उसने कोमल हृदयमें कोमल शान्तिरसका बीज बो दिया । कविवर बनारसीदासजीके पास अब केवल शृंगाररसका गुजाग नहीं रहा ।

एक दिन संध्याके समय गोमती नदीके पुष्कर बनारसीदास अपनी निशमंडलीके साथ समीरमेवन कर रहे थे, और सरिताही तन्म-तर्गोको वित्तृप्तिही उन्मा दंते हुए कुछ सोच रहे थे । बगडमें एक सुन्दर पोखी दब रही थी । निशमग भी इस सुन्दर पुराण नदीकी गोमा देख रहे थे । कविवर आप ही आप बहबहाने लगे "गोमोमें सुना है कि, जो कोई एक बार भी छूट बोलता है, वह मरकनिगोदके जना दुःखोंका पात्र होता है । पान्थ न जाने मेरी क्या दशा होगी, जिसने छूटका एक पुंज बनाके रक्मा है । मैंने इस पोखीमें शिवोके कपोलकल्पित ममनिय हावभाव निशमनिशानोंकी रचना की है । हाव ! मैंने यह अच्छा नहीं किया- मैं तो पान्थ भागी हो ही चुका, अब परपरा लोग भी इसे पढ़कर पान्थके भागी होंगे" । इस उच्छ्वसिले कविताके हृदयको जगमगा दिया । वे आगे और निशम नहीं कर सके, और न दिगी ही मरकनिगोकी प्रतीक्षा कर सके । तन्मग गोमतीके उस अचह और भीषण-वैगमपुत्रवहने उस मरकनिगोकी जीवन्मया लहलह कर निशम पोखीको कलकल निशिन हो गये । पोखीके पछे अलग २ इंचका बहने लगे, और निश हाव २ काने लगे, पान्थ फिर क्या होगा ? गोमती ही गोमतीमें पोखी छीन लेवेका विभीषेनाहम नहीं

किया । सब लोग मन मारके अपने २ घर चले आये । कविवर भी प्रसन्नतासे अपने घर गये । पाठक ! एक बार विचार कीजिये, अमृत्य-रस-रसको इस प्रकार तुच्छ समझके कैक देना और तत्काल विरक्त हो जाना, क्या रसिकशिरोमणिकी सामान्य उदात्ता हुई ! नहीं ! यह कार्य बड़ी उदारहृदयता और स्यार्थत्यागका हुआ । उस दिनसे कविवरने एक नवीन अवस्था धारण की

तिस दिनसों बनारसी, करी धर्मकी चाह ।

तजी भासिंछी पोंसिछी, पकरी कुलकी राह ॥

छागसेनजी पुत्रका उक्त वृत्तान्त सुनकर बहुत हर्षित हुए । उन्हें आशा हो गई कि, मेरे कुलका नाम जैना आज तक रहा है, वैसा आगे भी रहेगा । पुत्रकी पूर्वावस्थासे साम्प्रत अवस्थाका मिलान कर वे चरित हो गये । निधय किया कि,—

कहँ दोष कोउ न तर्ज, तजै मयस्था पाय ।

जैसे पालककी दशा, तरुण भये मिट जाय ॥२७२॥

और—

उदय दोत शुभकर्मके, भई अनुभवी हानि ।

तारें मुरत बनारसी, गही धर्मकी पानि ॥ २७३ ॥

थोड़े ही समयमें क्या ये क्या हो गया । जो बनारसी में मारके एक जेशजन्मरसके रगिया थे, वे ही अब जिनैन्द्रके शान्तरागके पशमें हो गये । अहीन पक्षीके लोग तथा पुटुम्बीजन जिनको फल गली कूचोंमें मटकते देखते थे, आज उमी बनारसीको जिन मन्दिरको अष्टद्वयपुष्प आते देगते हैं । जिनदर्शन रिये बिना

मोजनके त्यागकी प्रतिज्ञायुक्त देखते हैं। चतुर्दश नियम, व्रत, शान्त-
यिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमणादि नाना आचार-विचार-युक्त देखते हैं।
और देखते हैं, सबेरे हृदयमें सम्पूर्ण कियाओंको करने। ममावका
इस प्रकार पलटना बहुत थोड़ा देखा जाता ॥

तब अपजसी बनारसी,

अब जस भयो विख्यात ॥

खरगसेनजीके दो कन्या थी, जिसमेंमें एक तो जौनपुरमें
विवाही गई थी, दूसरी कुमायी थी। इस वर्ष अर्थात् संवत् १९९४
के फाल्गुणमासमें पाटलीपुत्र (पटना)में किसी धनिकके पुत्रसे
उसका भी विवाह कर दिया गया। कन्याका विवाह मानन्द हो
सुकनेपर इसी वर्ष—

घानारसिके दूसरोः भयो और सुनकीर ।

दिबस कैकुमें उड़ि गयो, तज पिजरा शरीर ॥ २८० ॥

इस पीछेके मरनेमें खरगसेनजीको विशेष दुःख रहा। पल्लु
तीन वर्षतक पुत्रके रंग रंग अच्छे रहे, यह देखकर उन्हें बहुत कुछ
शान्तवन भी मिलता रहा। संवत् १९९७ में एकदिन खरगसेनजीने
पुत्रको एकान्तमें बुलाके कहा “बेटा! अब तुम मराने हो गये।
हमारा बृद्धकाल आया। पुत्रोंका धर्म है कि, योग्य-वय-प्राप्त होनेपर
पिताकी सेवा करें, इस लिये अब तुम यह घरका सब कार्यभार
संभालो और हम दोनोंको रोटी खिलाओ” यह सुनके पुत्र लज्जावनत
हो रहा, उसमें कुछ कहा नहीं गया। पिताका प्रेम देखके आँसुओंमें आसू
भर लाया। उसी समय पिताने अपने हाथमें पुत्रको गोदमें लेके हरि-
द्राका तिलक कर दिया, और घरका सब काम सौंप दिया। पीछे

हृदय इन बेचारे की कथा सुनकर विपट आया । उन्होंने कहा प्रण
आज गनना आर लोग यहाँ आनन्दमें रहो, हम अपने घर
जाके सोयेंगे । परन्तु इतना प्यार समझा कि, मंरे नगरका ह-
किम आवंगा, वह बिना तडासी छिये नहीं जाने देगा, इस छिने
उमे कुछ दे मंके गजी कर लेना । चौकीदार चले गये, इन मं-
गोंने पानी लाके हाथ पैर धोये, गीठे कपड़े मूनेको काल दिये और
प्याल बिछाके सुबके सुब दिखामकी चिन्तामें लगे । लोगोकी आंखें
सबनी ही जानी थी, कि इतनेमें एक जबरदस्त आदमी आया, और
लगा हाट कपट बनलाने । तुम लोग किमके दुस्मसे यहाँ आये?
कीन हो! यहाँसे अब शीघ्र चले जाओ, नहीं तो अच्छा नहीं होगा
इत्यादि । इस नवीन आगतिमें मयभीत होके बेचारे उठ बैठे, और
बिना कुछ कह मुने चलने लगे । परन्तु इन लोगोकी तत्काशीन
दशा देखके पन्ना भी पसीजना था, नवागन्तुक तो आदमी ही था ।
इनके मीथेपनको देखके उसमें न रहा गया, जाने दूर लौट
लिया और अपना एक टाट बिछानेको दे दिया । चौकीमें जगह इतनी
घोड़ी थी कि, सोना तो दूर रहा, चार आदमी सुमीनेमें बैठ भी
नहीं सकते थे । तब टाटपर नीचे तो दुनिया बनारसी तथा
उनके साथी सोये और ऊपर छाट बिछाके नवागन्तुक अपने पांव
कैलाके सोया ! समय पढ़नेपर इतनी ही गनीमत है ! ल्यों लो
रात्रि पूरी हो गई, सबेरे देखा तो, वहाँ बंद हो चुकी थी, आकाश
निखरके निर्मल हो गया था । उठके अपनी २ गाड़ियोंपर आके
और मार्गका सुमीता देखके गाड़ी चला दी । आगरा निकट आ
गया । बनारसीदामजी सोचने लगे, कहां जाना चाहिये ? माउ कहां
उतराना चाहिये ? और मुझे कहां ठहरना चाहिये ? क्योंकि उन्हें

ब्यापारके लिये घरसे बाहिर निकलनेका यह पहिला ही अवसर था । निदान चिसमें कुछ निश्रय करके गादियोंको पीछे छोड़ आप मोतीकटलेमें पहुँचे । आपके छोटे बहनेऊ, बन्दीदासजी चांपसी-के घरके पास रहते थे, उन्हीके यहाँ गये । बहनेऊने सालेका यथोचित सत्कार किया । दो चार दिनमें बहनेऊकी सम्मतिमें एक दूसरा मकान किराये से लिया और उसमें सब माल असबाब रखके बेचना खर्चना आरंभ कर दिया ।

पहिले कपड़ा बेचके उसका हिसाब तयार किया तो, बाजमूल्य देके कुछ घाटा रहा, पश्चात् धीव तैल बेचा, उसका भी यही हाल हुआ, केवल चार रुपया लाभमें रहे । कपड़ा और धी तैलकी बिक्रीका रुपया हुंड़ीसे जौनपुर भेज दिया और सबके पीछे जवाहिरातपर हाथ लगाया । बनारसीदास ब्यापारसे अभी तक एक तो प्रायः अनभिज्ञ थे, दूसरे आगरेका ब्यापार ! । अच्छे २ ठगा जाते हैं, इनकी तो बात ही क्या थी । जिस जिसको साधु असाधुकी जाच किये बिना ही आप जवाहिरात दे देते थे, और उसके साथ जहाँ चाहे तहाँ चले जाते थे । जौहरियोंके लिये यह बर्ताव बड़े धोखेका है । परन्तु अच्छा हुआ कि, किसी लुचे लफंगेकी दृष्टि नहीं पड़ी । तौ भी अशुभ कर्मका उदय था, इजारबन्दके मोरमें कुछ छटा जवाहिरात बाँध लिया था, वह न मालूम कहाँ खिसककर गिर गया । माल बहुत था, इसमें चोट भी गहरी लगी, परन्तु किसीसे कुछ कहा नहीं । आपत्तिपर आपत्तियाँ प्रायः आती हैं । किसी कपड़ेमें कुछ भाणिक बंधे थे, वे डेरेमें रक्खे थे उन्हें पहुँचे कपड़े ममेत ले गये । दो जहाऊ पहुँची किसी सटको बेची थी, दूसरे दिन उसका दिवाला निकल गया । एक जहाऊ मुद्रिका थी, वह

सड़कपर गांठ लगाते हुए नीचे गिर पड़ी, परन्तु जब नीचे देखा तब कुछ भी पता नहीं लगा, न जाने किस उठाईगीरेके हाथमें सफाईसे पड़ गई । इन एकपर एक आई हुई अनेक आपत्तियोंसे बनारसीका कोमलहृदय कम्पित हो गया । और संध्याको खून जोरसे उबर चढ़-आया । चिन्ताके कारण बीमारी बढ़ गई । वैद्यने दस कोरी लंघने कराई, पीछेसे पथ्य दिया । पथ्यके पश्चात् अशक्तताके कारण महीने भर तक बाजारका आना जाना नहीं हुआ । इस बीचमें पिताके अनेक पत्र आये, परन्तु किसीका भी उत्तर नहीं दिया । तौ भी बात छुपी नहीं रही । उत्तमचन्द्र जौहरी जो आपके बड़े बहनेऊ थे, उन्होंने खरगसेनजीको अपने पत्रमें लिख भेजा कि, बनारसीदास जमा पूजी सब रोकके भिमारी हो गये हैं ! । इस व्यवस्था खरगसेनजीके घरमें सेना पीटना होने लगा । उन्होंने अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे बनारसीको घरका मीर बांधा था, इस-लिये स्त्रीमें कछह पूर्वक कहने लगे कि “ मैं तो पहिले ही जानता था कि, पूत पूछ लगावेगा, परन्तु तेरे कहनेसे सिलक दिया था, उसका यह कल हुआ—

कदा दमारा सय थया, भया भिलारी पून ।

पूजी मोई बेहया, गया बनज गय रान ॥ ३३१ ॥

यहां बनारसीदासजी जो कुछ वस्तु पागमें थी, गो सब बेच २ के माने लगे, और इमगद जब पागमें केवल दो चार टके रह गये, तब हाट बाजारका जाना भी छोड़ दिया । दिन व्यतीत

करने के दिने सुगोबनी और मधुमोक्षनी मायक पुत्रकोही होये
बैठे हुए दहा करने थे । सोविदोही मुमनेके दिने दो बार रक्षिक-
पुत्र भी दहा का बैठने थे, और दमल होने थे । भोगामोमें एक
कर्मोहीवाला था, उसके यदने आज त्रिदिन दोनों बक
कर्मोही उषण लेके माया करते थे । अब उषार गाते ९ बहुत
दिन बीत गये, तब एक दिन सोही मुनवर जाने हुए कर्मोहीवालेको
दहान्तमें सुगोबन लज्जित होने हुए आपने कहा दि,—

मुम उषार कीन्टों बहुत, आगे मय जिन रेहु ।

मेरे पात करू मटी, बाय कहाँसों लेहु ? ॥

१ मुगावती यह एक कविता कथा है । इसके वर्णनवाले कविध
माय कुमुबन था । कुमुबन जतिके मुमन्यमान थे और विक्रम संवत्
१५१० के लगभग विद्यमान थे । सोच पुराणके दो पेटे थे, एक
कुमुबन और दूसरा मणिक मुहम्मदजावरी । ये दोनों ही हिन्दीके
अग्र कवि हो गये हैं । मणिक मुहम्मदजावरीका पदमायतकाव्य
हिन्दीमें एक उद्भूत श्रेणीका ग्रन्थ है । यह काव्य मुगावतीने १०
कर पीछे रचया गया है । मुगावतीकी कथा त्रिष प्रचार देव और
परिवोही अगम्यकथासे मिली है, उस प्रचार पद्यानकी कथा नहीं
है । पद्यान ऐतिहासिक कथाके आधारपर विरत गया है, और मुगावती
केवल कल्पनाका प्रकण्ड है । परन्तु मुगावती कविताप्रकण्ड होनेपर भी
सुन्दरता और सरलतासे वृत्त रचर मया है, इससे रक्षिकोका जी उसे बिना
पठे नहीं मानता । विगतिके समय कविकरके विताकी इससे अवश्य विभ्राम
मिलता होगा । कुमुबन जैनपुरके बादशाह दोरशाहगूरके निग हुसे
मदशाहके भागिन थे, ऐन समालोचक माग १ अंक २०-२८-२९ में
प्रकाशित हुआ है, परन्तु दोरशाहकी दुर्गनशाहका बेटा बनानेमें भूल
हुई जान पड़ती है । क्योंकि दोरशाहका जैनपुरके दुर्गनशाहसे कुछ

कचौरीवाला मल्ला आदमी था, वह जानता था कि, बनारसीदास कोई अविश्वस्य पुरुष नहीं है, किन्तु एक विपत्तिका माण हुआ व्यापारी है । उसने कहा कि, कुछ विन्नाकी बात नहीं है । आप उधार लेते जावें, मेरे द्रव्यकी परवाह न करें, और जहां जी चाहे, आवें जावें । समयपर मेरा द्रव्य बसूल हो आवेगा । इस सज्जनकी बातका बनारसीदास और कुछ उत्तर न दे सके, और पूर्वोक्त क्रमसे दिन काटने लगे । छह महीने इसी दशामें बीत गये । एक दिन मृगावतीकी कथा सुननेको राधीताराचन्द्रजी नामके एक पुरुष आवे । यह रिश्तेमें बनारसीदासजीके श्वसुर होते थे । कथाके हो चुकनेपर उन्होंने बनारसीदासजीसे पहिचान निकालके बड़ा झेंड़ प्रगट किया और एकान्तमें ले जाके प्रार्थना की कि, कल प्रभातकाट

सम्बन्ध नहीं था । वह शूर अतिथि पट्टन था और उसका अगली नाम फरीद, बापका इसन और दादाका इमाहीम था । इमाहीम चोगोंका व्यापार करता था, परन्तु उसका बेटा इसन व्यापार छोड़के सिपाही बना और बहुत दिनोंतक रायमल्ल सेखावतकी नौकरी करता रहा । बहासे मुल्तान सिफन्दर लोदीके अमीर नसीरखाने के पास नौकर रहा । फरीद बापसे स्टकर पहिले लोदी पट्टनों और फिर बाबरबादशाहके मुगल अमीरोंके पास रहा । बाबरने इसकी आंखोंमें कसाद देखकर पकड़नेका हुक्म दिया, जिससे वह भागकर सहस्रमके जंगलोंमें छुड़ मार करने लगा । फिर बिहार और बंगालेका मुक्त दवाते २ हुमायूँ बादशाहसे लड़ा और उनको निहामके संवर १६९७ में हिन्दुस्थानका बादशाह बन बैठा ।

२ मधुमालती हमारे देखनेमें नहीं आई, इसके बनानेवाले कवि चतुर्मुञ्जदासनिगम (कायस्थ) हैं । इस ग्रन्थकी रचना भी संवत् १६०० के लगभग हुई जान पड़ती है । मधुमालतीकी श्लोकसंख्या १२०० है । कहते हैं कि, यह एक प्राचीनपद्धति का पद्यग्रन्थ उपन्यास है ।

माया, तब कर्चारीवालेका हिमाव कर उसके रुपया चुका दिये । कुल १४) चौदह रुपयाका जोड़ हुआ । पाठको ' वह कैसा समय था, जब आगे सरीसे शहरमें भी दोनों बककी पूरी कर्चारियोंका खर्च केवल दो रुपया मासिक था ! और आज कैसा समय है, जब उन दो रुपयोंमें एक सप्ताहकी भी गुजर नहीं होनी !! मारनवासियोंको इस अंग्रेजी राज्यमें भी क्या वह समय फिर निर्भगा ? इस मामलेके व्यापारमें दो बर्ष पूरे हो गये, पर विशेष लाभ कुछ नहीं सूझा, इसमें बनारसी विपादयुक्त हुए और आगरा छोड़ देनेका विचार किया । जन्म साहुसे सझिका सब हिसाब किया तो, दो बर्षकी कमाई २००) निकली, और इतना ही खर्च बैठ गया । चलो छुट्टी हुई, हियान बग़र हो गया । कविवर कहते हैं—

निकसी थोथी सागर मया, ।

मरं दीगयालेकी कया ॥

लेखा किया रुखतल पैठि,

पूँजी गरं * * में पैठि ॥ ३६७ ॥

आगरा छोड़के आर खैराबाद (मुरादाबाद) को जानेके विचारमें थे, कि एकदिन बाजारसे लौटते हुए सड़कमें एक गठरी पड़ी हुई मिली, उसमें आठ सुन्दर मोती बंधे थे । बड़ी खुशी हुई । पनार्थी मोही-जीवको प्रसन्नता ओर कब होगी ? बड़े यत्नमें मोती कमरमें लगा-डिये । और दूसरे दिन राम्ना नगरने लगे । रात्रिको शमुराउथमें पहुँचे बड़े आदरसे डिये गये; सबको प्रसन्नता हुई । समयपर मार्गमें एकान्त समागम हुआ । सामान्य संयोगमें, सामान्य प्रेममें, सामान्य आनन्दमें हमारे दम्पतिका यह संयोग, प्रेम, आनन्द कुछ विटलन ही था ।

अहाहा ! यह अन्तका वनितावदन-विनिर्गत-पद कैसा मनोहर है ! ऐसे रुन्द माम्बवान् पुरुषोंके अतिरिक्त अन्यपुरुषोंको सुनना नसीब नहीं होते । उस वन्दनीय स्त्रीकी तृप्ति इतनेहीमें नहीं हुई, उसने एकान्त पाकर अपनी माताकी गोदमें सिर रख दिया और फूट २ के रोने लगी । पतिकी आर्थिक अवस्थाके शोकमें उसका हृदय कितना विद्रु हुआ है, सो माताको खोलके दिखाने लगी । बोली—“जननी ! मेरी लज्जा अब तेरे हाथ है । यदि तू साहाय्य नहीं करेगी, तो प्राणवृत्ति-सर्वस्व न आने क्या करेंगे । वे इतने लज्जालु हैं कि, अपने विषयमें किसीसे वाच्चा तो दूर रहे, एक अक्षर भी नहीं कह सके । मुझसे न जाने उन्होंने कैसे कह दिया है । उनका चित्त बहुत काँवाडोल है । वे न तो घर जाता चाहते हैं और न यहाँ रहना चाहते हैं, परन्तु यदि तू कुछ आर्थिक सहायता करेगी, तो व्यवसाय अवश्य ही करने लगेंगे ।” (धन्य पति-मने !), पुत्रीके हृदयदुःख को जानकर माताने आश्वासन देने हुए आँसू पोछकर कहा, “बेटी ! उदाम-निराश मत हो । मेरे पास ये दोमौ रुपये हैं, सो तुझे देती हूँ, इससे वे आगरेको जाकर व्यापार कर सकेंगे” (धन्य जननी !)

पुनः रात्रि हुई । दम्पति सुषागम हुआ । पति परायणा स्त्री-ध्वनि अपने कोष्ठ-कण्ठ-विनिन्दित-सरमे लागावितनेश्रौद्धारा पति की सुषण्ठि अवलोकन करते हुए कहा “नाथ ! मैं सुमस्तनी हूँ कि आप जीवनपूर जानेके विचारमें नहीं होगे, और यथार्थमें वहाँ जाना इस दशामें अच्छा भी नहीं है । मेरे कहनेमें आप आगरेको एक बार फिर जाइये । एक बार फिर उपोम कीजिये ! अबकी बार अवश्य ही आप सुकृत्यमनोरथ होंगे । मैं दोमौ रुपया और भी आपको

एकप्र रहकर आमोद प्रमोदमें मुग्धसे काटफान करते थे । एक दिन तीनों मित्र एक विचार होकर कोठ (अट्रीगढ़) की यात्रा की गये । वहां संसारकी प्रवृत्त-वृत्त्याकेवशीभूत होकर मगनरत्ने प्रार्थी हुए—

* * * * * । हमको नाथ ! लच्छमी देहु ।
लछमी जय हैदो तुम ठात । तब फिर कराई तुम्हारी जांता
हाथ । यह लक्ष्मी ऐसी ही वस्तु है । यह मगनरत्ने संसारप्रपञ्च की प्रार्थनाके बड़से संसारवृद्धिकी प्रार्थना करती है और किये हुए पुनः फल-प्रदायक-पुण्यकर्मरूप कृष्णको इस दासना और निदानके कुट्टारसे काट काटती है । आज भी न जाने कितने लोग इसके कारण देवी देवताओं को मना रहे होंगे ! वसु, यही प्रार्थनाइसके हमारे तीनों मित्र परको छोट आये, कोठकी यात्रा समाप्त हुई ।

काल्पानमें बाउचन्दका विवाह था । बरातकी तयारी हुई । मित्रने बनारसीदासजीसे साथ चलनेको अनिवार्य आग्रह किया । तब अन्तर्द्रव्य मोती आदि बेचके ३२) ररया पासमें किये और बटवने रानिष्ठ हो गये, नरोत्तमदासको भी साथ जाना पड़ा । बटवने सब ररया खर्च हो गये । लौटके आगे आये और खैरवादी करहेको शारके फरोहत कर दिया, परन्तु हिसाब किया तो मूल और ब्याज देके ४)५० घाटेमें रहे ! अट्टको कौन जानता है ! बनारकाय मित्रों हो चुकनेपर परको जानेका इदुनिश्चय कर लिया । परन्तु मित्रवर्ग नरोत्तमदासजीने कहा—

कहे नरोत्तमदास तब, रही हमारे गेह ।

माईसों क्या मिथता ? कपटीसों क्या नेह ! ४०६

माघ आने घर ले गया । तथा "आप लोग माघ भूज गये हैं, रात्रि का विश्राम कर लें, प्रातः आपको रास्ता बनजा दिया जायेगा" इस प्रकार बघनाभूत कहके संतोषित किया । संशंकितचित्त निष चौधरीके घर ठहर गये । जब चौधरी अपने शयनागारमें बसा गया, तब तीनोंने सूत बटकर अनेक बनाकर धारण किये और मिट्टी भिगड़े मस्तक सिंग्दूनोंमें सुशोभित किये । यथा—

माटी लीन्हीं भूमिसौ, पानी लीन्हीं ताल ।

विशेष तीनों घरघो, टीका कीन्हीं भाल ॥ ४२४ ॥

मानसिकताकी विस्तारोंमें राज सिगई । मूर्ख भिड़नेके वहीरे ही ह्यामद चौधरीने आकर प्रणाम किया । विशेष आशिष दी, और बोधिया बगना बार्के तीनों माघ हो गये । तीन लोग चन्दनार कनहपुरकी रास्ता मिलगई, तब चौधरी तो सिद्धाचारपूर्वक आने का हो लौटा, और ये दो लोग चउने पर कनहपुर मिठा, वहाँ दो मजदूर कामे इटाहावाग गये । मगनमें देग किया । गंगाके तट पर स्मोई बनाके भोजन किये । यथात् बनारसीदासजी भूमरेके किये नगरमें निकडे । एक स्थानमें अचानक बिना मगनमेंनयीके बजने हो गये । पूरा तिलाके घरघोमें लपट मचा, पगलु तिलाकी सिंग्दूनविगारी दहन इस अचानकमस्मिन्मनको सह न मचा, मगन में लपटा न चाल ही बुझी जा गई ।

बनारसीदास जी नगेलमदम बानी एक कोठी में बसे कामे । तब तबमें मगनमें लपट मचाक मौनपुर जाये । फिर मौनपुरमें से बग दिन छहक जगनाक किये बनारस जाये । बनारस में बग लपटमच पगलुकी पूजन की । इन मगन दालिक

किया । न जाने बेचारीके प्राण कैसे दुःखमें छूटे होंगे । सतीमाध्वि
 में तुम्हारी मकिका कुछ भी बदला न दे सका, क्षमा करना । ”
 इस प्रकारके उबल पुबल विचारोंमें मग्न बनारसीको नरोत्तम-
 दासने नाता उपदेशोंमें सचेत किया और चिट्ठी पूरी पढ़नेको कहा ।
 तब धैर्यावलम्बन करके बनारसी आगे पढ़ने लगे, यह लिखा था ।
 “तुम्हारी सारी अर्थात् बहूकी छोटी बहिन कुँआरी है । तुम्हारी
 समुरालसे एक आग्रण उसकी सगाईकी बातचीत लेके आया था,
 मो मैंने तुमसे बिना पूछे ही शुभमुहूर्त शुभदिनमें सगाई पक्की करदी
 है । मरोसा है कि, तुम मेरी इस कृतिमें अप्रसन्न नहीं होओगे”
 इन द्विलपक समाचारोंको पढ़कर कविवरने कहा—

एकवार ये दोऊ कथा । संडासी खुदरकी यथा ।

छिनमें अग्नि छिनक जलपात । ल्यों यह हर्षशोककी बात ॥

अपने गृहभारके इस प्रकार अचानक परिवर्तनसे किमको
 शोक-वैराग्य नहीं होता ? मग्नको होता है और अधिक होता है ।
 परन्तु श्रेष्ठ है कि, मोहमाया-परिवेष्टित-चित्तमें यह स्मशान-वैराग्य
 थिरकाळ तक नहीं रहता । जगन्मूढे मानसकार्य नियमानुसार चलते
 ही रहते हैं, किसीके मरने वा जन्मनेनेमें उनमें अन्तर नहीं आता ।
 बनारसीदामजीकी भी यही दशा हुई । थोरे दिनों तक उनका चित्त
 शोकाकुल रहा, परन्तु पीछे व्यापारदि कार्योंमें लिप्त होके ये सब
 मूल गये । तब ही मूल जाने हैं !

इन दिनों दोनों मित्रोंने उह भान महीने व्यापारमें बड़ी मश-
 खन उठाई । आवश्यकतानुसार कभी जौनपुर और कभी बनारसमें
 गये, परन्तु निरन्तर माधमें रहे । उम समय जौनपुरका नव्याय
 पीनीझिनीबर्मा था, यह बड़ा बुद्धिमान, एगकमो तथा दानी

सुन व्यापार किया, और विपुल द्रव्य सम्पादन किया । फिर काशी और जौनपुरमें रहकर व्यापार किया, इस तरह दो वर्ष बीत गये ।

आगानूर नामके किसी उमरावने बादशाही सिरोपाय पाया था, उसका आगमन अपने नगरोंमें सुनकर लोग घर छोड़कर जहाँ तहाँ भाग रहे थे । क्योंकि आगानूर बड़ा जालिम हाकिम मुना जाता था । हमारे दोनों मित्र भी इसी भयसे अरने गृहको आये, परन्तु जौनपुरमें देखा कि, कुटुम्बीजन पहिलेहीमें भागकर कहीं छिप रहे हैं । तब कहीं ठिकाना नहीं देखकर दोनों यात्राके लिये भयोध्याजीको गये, वहाँ भगवन्की पूजनकरके घन परे, रहना योग्य नहीं समझा, इसलिये रौनाही आ गये । रौनाही धर्मनाथ भगवानका पूज्यतीर्थ है । वहाँ सातदिन रहकर भक्तिभाव-पूर्वक पूजन अभ्ययन किया, और फिर दोनों मित्र धरती ओर लौट पड़े । मार्गमें मुना कि—

आगानूर, बनारसी, और जौनपुर बीच ।

किसो उदंगल बहुत नर, मारे कर अधर्मीच ॥ ४६९ ॥

दफनादक पकरे सकल, जड़िया कोटीयाल ।

हुंईशाल गराफनर, मर जोहरी दलान ॥ ४७० ॥

कारं मारे कोरंरा, कारं बेडी पाँच ।

कारं रागे मावसी, रावको देर सजाय ॥ ४७१ ॥

यह भक्त सुनते धरते अनेकी शिग्मन नहीं पड़ी, और कि दोनों मुगलपुरकी ओर लौट पड़े । वही जगन्में ४० दिन तक

रहे । तब तक सुना कि, आगानूर आगरेकी ओर चला गया है । अतः दीप ही सफर करके जैनपुर आ गये ।

जैनपुरमें सप्तसिंहजी मोठियाका हज आया कि, “दोनों सांसी यहाँ चले आओ, अब पूर्वमें रहनेकी आवश्यकता नहीं है ।” पाठकोंको स्मरण होगा कि, यह सप्तसिंह वही हैं, जिन्होंने इन दोनोंको सांसी करके व्यापारको भेजा था । इस चिट्ठीके साथमें एक मुमचिट्ठी नरोत्तमदासजीके नामकी आई थी, जो उनके पिताने भेजी थी । नरोत्तमदासजीने चिट्ठी मनोनिमेष पूर्वक बांधी और एक दीर्घनिःश्वास लेकर अपने प्राणाधिकमित्र मित्र बनारसीके हाथमें वह चिट्ठी दे दी और पाठ करनेको कहा । बनारसी बांधने लगे, उसमें लिखा था—

सरगसेन बनारसी, दोऊ दुष्ट विशेष ।

कपटरूप मुहसों मिले, करि धूरतका भेष ॥ ४८१

इनके मत जो चलेगा, सो मांगेगा भीष ।

सातें तू दुष्टियार रद, यही हमारी सीख ॥ ४८३

चिट्ठी पढ़ते ही बनारसीके मुखपर कुछ शोककी छाया दिखाई दी । यह देखते ही नरोत्तम हाथ जोड़के गद्गद हो बोला “मेरे अभिसहृदय-मित्र ! संसारमें मुझे तू ही एक सच्चा बापस मिला है । मेरे पिताकी मुक्ति अविवारित-रम्य है । वे किसी दुष्टके बहकानेमें लगे हैं, अतः उनकी भूल छान्तव्य है । मेरा अपन्निश्वास आपमें बाध-चन्द्र-दिवाकर रहेगा । आप मुझपर कृपा रखें ।” मित्रके इस विश-दविवेक-पूर्ण और मिथसमापणसे बनारसी विमुग्ध-अवाक हो रहे । चित्तमें आनन्दकी धारा बहने लगी और उसमेंसे मंद २ शब्द निकलने लगे “यदि संसारमें मित्र हो, तो ऐसा ही हो । अहा !

“विधिना केन सृष्टं मित्रमित्यश्वरद्वयम्” । एक दिन अने
भिरके गुमोका मनन करते हुए बनारसीदासजीने निम्नलिखित
कवित्त बनाया था । इसे वे निरन्तर पढ़ा करते थे—

नयनदृष्ट्यान गुनगान भगवन्तजीको,

करत सुज्ञान दिन मान जगि मानिये ।

होम होम भभिराम धर्मलीन भाई जाय,

रूप-धन-धाम काम मूरति बगानिये ॥

मनकी न अभिमान सात गेन देत दान,

महिमान जाके जगको वितान तानिये ।

महिमानिधान प्राप्त प्रीतम ‘बनारसी’ को,

बहुधा मादि भच्छरन नाम जानिये ॥ ४४८ ॥

महोत्सवदिन मेरु १९०३ के बैशाखमें गाँसका लेना करके
सादुकी बाबूदास आगरे चले गये । बनारसीदास नहीं जा सके,
चले। इस समय उनके पिता बरगमनेनजीको बीमारी लगने
लगी थी । पुत्रने पिताकी जी जानमें सेवा की, नाना औषध
कोरा लेकिन बरगमा, पण्डित कुछ कुछ भी नहीं हुआ । मौका
प्राप्त आ मुका था, मन. निरुत्तर नहीं हो सका । अतएव पण्डित
कीकी व. उ. विने बरगमनेनजीका प्रायश्चित्त करीब पण्डित दानकी
देखा उन मया । पुत्र अविश्व सादुदास हुआ । पुत्र पिता
पुत्र दुःखमय करके दान पिता 'दान पिता' कहनेक पिता
रह जो कुछ न कर सका —

दियो शोक बानारसी, दियो केन मर होय ।

दियो कदित बीमारी गया, दियो म जगके काय व ५५०

मिताके स्वर्गवास होनेपर १ बहाने तक पुत्रने मितुरोक मनाया । शोक विस्मृत करनेके लिये लोगोंने उन्हें अनेक शिष्यायें देकर, क्योँ स्वोँ सेतोपित किया । जीव इष्टजनोके वियोगमें दुःखी होते हैं, परन्तु निदान यह संसार है, मोहमायामें सीध ही उसको भूल जाते हैं । बनारसी फिर जगज्जातमें छीन हुए । थोड़े दिन पीछे सादुजीका पत्र आया कि "तुम्हारे बिना लेखा नहीं चुकेगा, अतः तुम्हें आगरेको आना चाहिये ।" सादुजीकी आज्ञानुसार बनारसीदासजी आगरेको रवाना हुए । इस यात्रामें मुगलईके म्याय और अत्याचारका कबिपरने अपनेपर बीता हुआ वृत्तान्त लिखा है, पाठकोंको वह रुचिकर होगा ।

"मैं अपने साहजीबी आज्ञामें एक शीमगामी अश्वपर सवार होके आगरेको रवाना हुआ । पंद्रहे दिन पेशुआ नामक गाँवमें रात्रि हो जानेसे ठहरना पड़ा । संयोगसे उसी दिन आगरेका एक कोठीवाल महेश्वरी अपने ९ बौद्धोंके साथ इसी नाममें भेरे पास ही ठहर गया । और भी २-३ ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंका संग हो गया । सब १९ मनुष्य हो गये । सब आपसमें यह राय करके कि, आगरे तक बराबर साथ चलेंगे, हमरे दिन पेशुआसे डेर उठाके चल पड़े । कई दिन चलकर इस संघने पाटमपुरके निकट बुरा नामक ग्रामकी सरायमें डेर बाँधा । सब लोग अपने २ शाने दानेकी चिन्तामें लगे, कोई बाजार गया, कोई अन्य कही गया । मयुरावासी ब्राह्मणोंमेंसे एक रूप छेनेके लिये अहीरके घर गया और दूसरा बाजारमें बैठे मुनाकर सापसाममी सेके डेरेपर आगया । थोड़ी देरमें वह सरफ जिसके यहांसे विप्र बैठे लाया था, आ घमका और बोला कि, तुम्हको धोखा देकर

खोटा रुपया दे आया है। विप्रने कहा तू झूठ बोलता है, मैं बोला दंडे आया हूँ। वस! दो चार बार की 'मैं मैं तू तू' मैं बन पड़ी। विप्रजीने सराफको सूत्र मार जमाई। लोगोंने बीच वचाव बहुत करना चाहा, पर चौबेजी कब माननेवाले देवना थे। सराफका एक माई मदद करनेके लिये दौड़ा हुआ आया। पर चौबेजीके आगे लड़नेमें बचाकी हिम्मत नहीं पड़ी; इसलिये एक जालसाजी सोची। ठीक ही है "जो बलसे नहीं जीता जावे उसे अकलसे जीतना चाहिये।" ब्राह्मणके कपड़ोंमें २५) रु० और भी बंधे हुए थे, उन्हें सराफके माईने खोल लिये और "ये भी सब बना-बटी तथा छोटे हैं" ऐसा कहता हुआ कोतवालके पास पहुंचा। मार्गमें चौबेके अमली रुपयोंको कहीं चला दिये और बनाबटी रुपयें कोतवालके सम्मुख पेश किये और बोला "दुहाई सरकार की। नगरमें बहुतसे ठग आये हुए हैं, वे इसी तरह हजारों छोटे रुपया चला रहे हैं। और ऐसे जबर्दस्त हैं कि, लोगोंको मारने पीटनेसे भी बाध नहीं आते। मेरे माईको मार २ के अधमुआ कर डाला है। दुहाई हुआ। बचाइयो!" कोतवालने इस यनिककी रिपोर्टको नगरके हाकिमतक पहुंचवाई। हाकिमने दीवान सा० को तहकीकातके लिये भेज दिया। संंध्याका यक हो गया था, कोतवाल और दीवानकी मवारी सरायमें पहुंची। नगरके सैकड़ों आदमियोंकी मवारी भी सरायमें जा जमी। बड़ा जमघट हुआ। कोतवाल और दीवानके सामने विप्र हाजिर किये गये। इजहार होने लगे। पहिले उनके नाम ग्रामादि पूछे गये, फिर रुपयोंके विषयमें पूछनाछ की गई। लोग नानाप्रकारकी सम्मंत्रिया देने लगे। कोई बोले ठग हैं, कोई पाम्पडी बेगों हैं कोई बोले मालूम तो मंडे आदमीमें होने हैं। कोतवालने मक्की मुन मुना

दीवान कोतवाल बरीकी ओर गये । समुदायवालोंसे मेट हुई । आदर सत्कार होने लगे । समुदायवाले बड़े प्रतिष्ठित पुरुष थे । उनके मेट मिठापमें ही कोतवालकी साड़ी पूरी हो गई, वे सब सँ मराये टौट आये और हमसे कहने लगे “आप मुझे साहु हैं, हम लोगोंसे अग्रण हुआ जो आप लोगोंको इतना कष्ट पहुँचाया, माफ कीजियेगा ।” मैंने कहा आप राजा हम प्रजा हैं । राजा प्रजाक ऐसा ही सम्बन्ध है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है—

जो हम कम पुरातन कियो । सो सब आय उदय रस दियो
भावी अमिट हमारा मता । इसमें क्या गुनाह क्या लता ।

इस प्रकार बातचीत करके दीवानादि लजित होते हुए अपने २ घर आये । मैंने एक दिन और भी मुकाम किया । उह सत्कार सेर फुल्ल लेकर हाकिम, दीवान, कोतवाल सबकी भेटमें दिया । वे बहुत प्रसन्न हुए । अवसर पाकर मैंने उनसे कहा आगरे मगरका सफ ठग था, हम लोग मुफ्तमें कसाये गये थे । यहाँ हम लोग अपने माग्यसे बच निकले, परन्तु उस ठगके विषयमें कुछ भी विचार नहीं किया गया । गरीब जाहंगीरके रुपये दिव देना चाहिये, वे वर्ष ही दूट छिये गये हैं । इसपर हाकिमोंने लजित होते हुए कहा, हमने आपके बिना कहे ही उसको पकड़नेकी व्यवस्थाकी थी, परन्तु खेद है कि, भेद सुननेके पहिने ही ये दोनों यहाँ से लायता हैं । अतः लाचारी है ।

शामको महेश्वरी राह आ गये, आनन्द मंगल होने लगे । शेरके पंखसे छुटकारा पाया, सबरे ही सब लोग चले पडे । नदीके पार होने हुए विप्रयोग मार्गमें आडे पड गये और लगे दाँटे मागकर रोने । हमारे रुपये दूट छिये गये, अब हम कैसे जीवेंगे । अब तो

हम यही प्राण दे देंगे। उनके इन दयायोग्य वचनोंसे हमन्तोग दुःखी हो गये। दया आ गई। ब्राह्मणोंका विन्यास और नहीं सुना गया। हम दोनों (मद्देश्वरी-बनारसी)ने मिलके २५ रु० विप्रोंको देकर संतुष्ट किया। ब्राह्मण आशिष देते हुए बिदा हो गये।

“ब्राह्मण गये भरीप दे,

भये धर्मिक निष्पाप”

इस प्रकार भुगल्लई के एक राजकीय चरियका वर्णन समाप्त हुआ। जिस समय आगरा बहुत निकट रह गया था, किसी पथिक ने बनारसीदासजीको यह बज्र गबर सुनाई, जिसके सुननेके लिये वे आजन्म प्रस्तुत नहीं थे। और जिसके सुननेके लिये उनका कोमल हृदय सर्वथा असमर्थ था, परन्तु आनेवाली आर-दायें बहकर नहीं आती, अचानक आ दबाती हैं। पथिकने कहा “तुम्हारे मित्र मरुत्तमका परलोक हो गया।” इसके अतिरिक्त बनारसी और कुछ न सुन सके। उनका सुन्दर शरीर तत्काळ धराशायी हो गया, विचाररहित बनी गई, वे मूर्च्छामें आभिर्भूत हो गये। उनके माथी इस दशमें बड़े आकुल हुए, अलसेचनादि उपायोंमें उनकी मूर्च्छा निवृत्ति की। मूर्च्छानिवृत्तिके साथ शोककी ज्वाला उनके हृदयमें धधक उठी, जिसके कारण भुंदमेंसे संतप्त उच्छ्वास निकलने लगे, और नेत्रोंमें बाष्पस्वरूप अलपारा निकलने लगी। विषाददुःख-वदन-विनिर्गल हाव मित्र! हाव मित्र! हाव मित्र! कहाँ गये। आदि शब्द सुननेवालोंकी आँखोंमेंसे भी दो थार थर आँसुओंके निकलते थे। बड़ी बुरी अवस्था हो गई। लोगोंने ज्यों त्यों समझा हुआकर उन्हें आगरेमें ठिकानेपर पहुँचाया। वहाँ

वे अनेक दिन तक शोकाकुल रहे, बड़ी कठिनतासे मित्रशोकको विरमृत कर सके ।

एक दिन आगरेमें किस लिये थाये हैं ? इस बातकी चिन्ता हुई, तब साहुजीके हिसाब करनेके लिये गये । परन्तु साहुजीका सही दरबार देखके अवाक् हो रहे । उन्होंने यणिकोंके घर ऐमा अंधाधुंध कभी नहीं देखा था । साहुजी तकियेके सहारे पड़े हैं । बन्दीजन शिरद पड़ रहे हैं । नृत्यकारिणी छमाके भर रही है । नानाप्रकारके मुदर पादिस बज रहे हैं । मांड अपनी रंगविरंगी नकशोंमें मल हैं । और शेरजी तथा उनके सेवक सबहीमें मल हैं । भला ! यहाँ इनका हिमाय कौन मुने ? और यहाँ इतना अवकाश किसको ? कविवर लिखते हैं, कि इस दरबारमें पैर तोड़ते २ भेने चार महिने खो दिये ।

जबहिं कहें देखेकी बात । साहु जवाय देहि परमात ।
मासी घरी छमासी जाम । दिन कैसा ? यह जाने राम ॥
सूरज उदय भल है कहाँ ? विषयी विषय मगन है जहाँ ॥

साहुजीके अंगाशाह नामक बहनेऊ (मगिनीपति) थे, जो बनारसीदामके मित्र थे । इनके द्वारा बनारसीदामने बड़ी कठिनतासे अपना हिमाय माफ किया । साहुजीने कहने सुननेमें ज्यों लोफाकनी लिख दी । इसके बाद ही बनारसीदामके भाग्यका मिताग चलका । उन्होंने माता छोड़के गृधर दुकान कर ली, और उसमें खूब काम उठाया ।

मदम् ११११ के कान्गुयमामके लगभग आगरेमें उस रोगकी उत्पत्ति हुई, जो आज मां मानसर्पमें व्याप्त है, और जो दसरपमें अथावधि प्रजाको मुह फाटने के निमित्त रहा है । जिनके आगे

रहर होंग अगम्य हो जाने हैं, इसीमे लोग जवाब दे दते हैं, और
 बगते जायने हैं। जिमे अमेजीमे ड्रेग, हिन्दीमे मरी, और
 गाली गुजरातीमे मरबी कहते हैं। अनेक लोगोका क्याप है कि,
 यह लोग भारतमे रहिये रहित हुआ है, परन्तु यह उनकी भूल है।
 इसके सैकड़ो प्रमाण मिलते हैं, कि ड्रेग अनेक बार हो चुकी है।
 और उसका यही रूप था जो आज है। कविवरने इस विषयमे जो
 वाक्य लिखे हैं, वे ये हैं—

१ वर्षादे भूपूर्व कमिना 'सर जेम्स केम्पले'ने 'भटमदाबा-
 दुगेजेटियर' मे कुछ दिन रहिके २७ विषय सम्बन्धी अनेक उल्लेख
 किये हैं, जो पढ़ाके जानने योग्य हैं। उन्होंने लिखा है कि, "इसी
 वर्ष १९१० अर्थात् वि० सं० १९०९ के लगभग भटमदाबादमे ड्रेग
 का रवा था, जो कि भागला-दिहीमे भोरमे आया था, और जिसका
 प्रारंभ ई० सं० १९११ में पञ्चावसे निधिन होता है। जिस समय
 ड्रेग भागला और दिहीमे बहर मचा रहा था, वहाँके साप्ताहिक बाद-
 शाह जहाँगीर उसमे बहर भटमदाबादमे कुछ दिनोंके लिये
 आ रहे थे। करते हैं कि उनके आनेके दोहे दो दिन पीछे इस सुभा-
 रणके रोजमे भटमदाबादमे भटना देरा आ जवाब था। तारांछा-
 भटमदाबादमे भागला-दिहीमे और भागला-दिहीमे पञ्चावमे ड्रेगका
 बीज आया था। उस समय ड्रेगका बह यत्र तत्र ८ वर्षके लगभग
 बसा था। वर्तमान ड्रेगकी नाई उस समय भी उसका पुराने पवित्र
 सम्बन्ध पाया जाता था, अर्थात् उस समय जहाँ २ ड्रेगका उपद्रव
 होता था, पुरोही संस्थामें इति होटी थी।" उस समय हिन्दुरायनमें जो
 पुरोपियन रहते थे, उन्हें भी ड्रेगमें डेना पडा था। वह करते
 और मोरोके साथ नीतिज्ञ राजाकी नाई तब भी एक सा बताव करता
 था। इस विषयमे "मि० टेरी" नामक ग्रन्थकारने लिखा है "जो

“इस ही समय इति विस्तरी । परी आगरे पहिली मरी ।
जहां तहां सब मागे लोग । परगट मया गांठका रोग ॥
निकसै गांठि मरै छिनमाहि । काहूकी बसाय कहु नाहि ।
चूहे मरै वैद्य मर जाहि । भयसों लोग थप्र नहि खाहि ॥”

मरीसे मयमीत होकर लोग माग २ के दूर २ के सेहों औ
जंगलोंमें जा रहे । बनारसीदासजी भी एक अजीजपुर नामके ग्राममें
एक ब्राह्मण भाऊगुजारके यहां जाके रहने लगे । मरीकी निवृत्ति
होनेपर वे अपने मित्र ‘निहालचन्द, जीके बियाहको अमृतसर गये,
और वहांसे लौटकर फिर आगरेमें रहने लगे । माताको भी जौन

रिनके अरसेमें सान भंगेजोंकी मृत्यु हो गई, श्रेणमें कंसनेके बाद इन
रोगियोंमेंसे कोई भी २४ घंटेमें अधिक जीता नहीं रहा, बहुते
सो १२ घंटेमें ही रास्ता पट्ट टिया ।” सन् १९८४ में औरंगजेब
बादशाहके सङ्करमें भी श्रेणने कहर मचाया था, ऐसा इतिहासमें पता
लगा है ।

बनारसीदासजीके नाटकसमयमार ग्रन्थमें भी श्रेणका पता लगता
है । उसमें बंधुशरके कथनमें जगबानी जीशेके लिये कहा है—

“परमकी कुली नही उरसे भरम माहि

नाचि नाचि मर जाहि मरी कैसे चूहे हैं ।”

पाठकोंकी जानना चाहिये कि, उस समय श्रेणको मरी कहते थे ।
वर्षा महापारी (दंजा) को भी मरी कहते हैं, परन्तु पुराका मरना
यह श्रेणका ही अनाथाण लक्षण है, दंजाका नहीं ।

१ श्रेणका एक विशेष भेद भी है, जिसमें गांठ नहीं निकलती,
केवल उजर होता है और उसके पथ्यर मृत्यु । वे एक ग्रन्थकारोंने
श्रेणको “ग्रन्थिक सविगल” बतलाया है । यह असाध्य रोग है ।

पुराणे अने एव दुका िदा. और एवही अज्ञानान्न वेगादाद
अज्ञानान्न अज्ञान दमना दिवद व िदा । वेगादादने अज्ञान
दिवदने विद्ये अज्ञान वनेही दुका दुर्. इतिरे के अज्ञानी माया
अज्ञान मदीन कादोकोमाधनेद अद्वितीय धार्धनाय'ही ददनाको
मदे. और ददने दधिनान्नपुत्र अये । वही एव अज्ञान दधिन
नाय. पुत्रपुत्राद, और अज्ञान वनेही धार्धनाय'ही ददनाको । पुत्र
मदे ददनाय'ही वददने वनाय वदा—

धी विद्येनेननेद—, मृदुनेय-नाय सुदेनन ।

तेने-विदि-भादेदि, (!)वरादि जिन देय अज्ञानन ॥

माया मदेन वनाये, उज्ञान नदधिन नदधन ।

धार्धिन-धार्धिन-जीन, धार्ध वनाय उवि व.वन ।

एवमात्र 'वनाय'विदाय' अत्रि, विद्येनन मन अज्ञानन ।

दधिनान्न-मात्रपुत्र-ज्ञानपुत्र, दधिन-पुत्र-अज्ञानन ॥

दधिनान्नपुत्रे दिदी, मेट, कोय दोने दुए वनाय'ज्ञानमी
मृदुदधिन मृदुदधिन अज्ञान आ मदे । मदे १९७९ मे वदिवको
द्वितीयमादने एक पुत्रादही दधिन दुर् । ७७ मे मायाका अज्ञानन हो
गया । ७९ मे पुत्र तथा अज्ञान दोनोने दिदा माग ली । और लोक-
विदि अज्ञानन मदे ८० मे अज्ञानददे वृकदीनोवन्न वेगादाद-
जीवी पुर्वदे नाय विद्ये हो गया । जेने वनाय होदे वृशोमे
पुत्रा मदीन मृदुदधिन उज्ञानोकी मृदि होनी है. उमी वनाय वदिवर

१ विद्येनन । २ मृदुदधिन । ३ मृदुदधिन । ४ वेगादेदी, भीकानादेदी,
मृदिनादेदी । ५ मृदु । ६ मदे । ७ वनाय । ८ पुत्र (मा-
य विदेय) ।

एक बार कुटुम्बहीन होके पुनः गृहस्थ हो गये । इस प्रकार थोड़े-ही दिनोंमें बनारसीदासजीके संसारमें अनेक उल्ट-पेर हुए ।

आगेमें अर्यमहजी नामक एक सज्जन अध्यात्मरसके परम-रसिक थे । कविवरके साथ उनका विशेष समागम रहता था । वे कविवरकी विद्वत्पण काव्यशक्ति देखकर हर्षित होते थे । परन्तु उनकी कविताको अध्यात्मकल्पनके मारमसे हीन देख-कर कभी २ दुःखी भी होते थे, और निगन्तर उन्हें इस ओरको आकर्षित करनेके प्रयत्नमें रहते थे । एक दिन अचानक पाकर उन्होंने ने पं० रायमहजीकृत बाल्यायवोपटीकामहित नाटकसम-यसार ग्रन्थ कविवरको देकर कहा आप इसको एक बार पढ़िये और सत्यकी खोज कीजिये । कविवरने चित्त लगाकर समयसारका पाठ करना आरंभ कर दिया । एक बार पूरा पढ़ गये, पर संतोष न हुआ अतः फिर पढ़ा । इस प्रकार बारंबार पढ़ा और भाषार्थ मनन किया, परन्तु एकाएक आध्यात्मिक पंच समस्त लेना सहज नहीं है । विना गुरुके अध्यात्मका सार्थ मार्ग नहीं सूझ सका । क्योंकि विद्वत्पणदृष्टि पुरुष भी अध्यात्ममें भूलने और चक्कर खाने देखे जाते हैं । कविवरकी बुद्धि इस परम आध्यात्मिक प्रकाशको देख-

१ पण्डित रायमहजी भाषाके बहुत प्राचीन लेखक प्रतीति होते हैं । पं० दुर्लालचन्द्रजीने इन्हें तेरहवीं शताब्दीके लगभगका बताया है । समयसार टीका, प्रवचनसार टीका, पञ्चानिश्चय टीका, पदशास्त्र टीका, इत्यसंग्रह टीका, गिन्दूरप्रकर टीका, एकीभाव टीका, आवकाचार, भक्तामरक्या, भक्तामर टीका, और अध्यात्मकमल मार्गद आदि ग्रन्थोंके प्रभावशाली रचयिता हैं । मेरे हैं कि इनमेंसे किसी भी ग्रन्थको हमने नहीं देखा ।

वर भी वाचस्पत्ये न देम नवी, उन्हें कुछ वा कुछ देवने लगा । वाचस्पितामोमें वे हाथ धो बैठे, और वहां तहां उन्हें विप्रधन्य हो गूहने लगा । "न इधारेके हुए न उधर वे हुए" वाली बहान बनितारहे हुए । वाचस्पत्ये अपनी उस ममदकी दसा एक दो-दोमें हम तरह व्यक्त की है—

कात्नीको रस मिट गयो, भयो न आनसरपाद ।

भारे धनारसिणी दसा, जया ऊंटकी पार ॥ ५९७ ॥

हमी ममद अपने ज्ञानपक्षीमी, ध्यानवक्षीमी, अध्यात्मवक्षीमी, शिष्यमन्दिर, आदि अनेक व्यवहागनीन सुन्दर कविताओंकी रचना की । अध्यात्मकी उत्तमनाके साथ २ आचारारहताकी माया बढने लगी, और जैसा कि उपर कहा है, वे वाचस्पितामोको गर्वधा छोड़ ही बैठे । उन्होमें अब, तर, मामाधिक, शीकमन, आदि कियाओंकी ही बेचन नही छोडा, किन्तु इतनी उधृणनता पारण की, कि धारण का चढा हुआ नैवेद्य (निर्मास्य) भी खाने लगे । इनके चन्द्रभान, उदयकरन, और ध्यानमल्लयी आदि शिष्योंकी भी वही दसा थी । चारों एकत्र बैठकर केवल अध्यात्मकी वाचामें अपना कान्धेन करते थे । इस चरचामे अध्यात्मरसका इतना शिथिलप्रवाह होता था कि, उसमें प्रत्येक, धर्म, वासि, व्यवहारकी, उचित, अनुचित, धर्म्य, अधर्म्य सम्पूर्ण बातें वे रोक रोक प्रकाशित होनी थी । वे जिस बातको कहते तथा सुनते थे, उसीको गुमा तिरुके प्यगपूर्वक अध्यात्ममें घटानेकी चेष्टा किया करते थे । सागरा यह है कि, उम ममद इनके जीवन का अहोरात्रिका एक भाग वही कार्य हो रहा था । हमारे जैनसमाजमें उक्त मतके अनुयायी अब भी बहुतने लोग हैं, जो लोकसासके उत्तंथन करनेको ही

कमर कसे रहते हैं, और अपने अभिप्राय को प्रकट बनाने की इच्छा में आचार्यों के वाक्यों को भी अपमान कहनेमें नहीं गृह्यते । धर्म की ही क्रियाओं को वे हेतु समझते हैं, और निग्रहवृत्ति नामों में अनुरक्त होने की हीम समझ करते हैं । ऐसे महाशयों को हम मान्यते के उततरीय जीवजने विज्ञा लेती चक्षिणे । इन ऊर्ध्व और अध की मन्तरसाक्षात् पूर्ण चरित्र करने को विषयों हमारे कविवर और उनके भिन्न लटक रहे थे, हमारे पास गान नहीं है । इनोंने एक दोहेमें ही उसकी इच्छा की कला कहा है । वाउक इन सुखाभाषियों की अरणाक्ष मनुमान इन्हींमें कर मेंगे -

नगन होति चाने जने, फिरदि कोउरी मारि ।

कददि मने मुनिगन हस, कहूँ परिमह मारि ॥

इन मन्त्रों को देखकर

कददि लोग भावक भव जनी । यानाहति 'नोमरासनी' ।

दुर्मुखि के रोहनेवां बोन गमय हो गत्ता पां परन्तु अब अनुभके उदय वा अन्त हुआ, तब गद्दय ही पद सय गेज सिट गया। और नामका बधाय बहारा ममदा हो गया। इस प्रकार सेवत् १६९९ तक हमारे चरित्रनाटक अनेकान्तमतके उगमक होकर भी एकाग्रते तननेमें लय लये। पद्यां अब उदयने परदा गाथा, तब पंडित रूपचन्द्रजीवा आगरेमें आममन हुआ। यानों आपने भाग्यकी प्रेक्षा ही उन्हें आगरेमें बनीय लाई। पंडितजीने आरको अग्न्यात्मके एकाग्र गेयमें प्रगित देनकर गोमटमारूप औषधोपचार करना प्रार्थ कर दिया। अर्थात् आप कविरको गोमटमार पढ़ाने लगे। गुणस्थानोंके अनुगार ज्ञान और कियाओंका विधान बलीभांति समझाने ही हृदयके पद गुल गये, गम्पूर्ण संशय दूर साग गये और---

तब चनारसी और टि भयो।

रमादपादपरपति परणयो।

गुनि २ रूपचन्द्रके येन।

यानारसी भयो दिद जैन ॥

टिप्पणमें पातु कालिमा, दुती सरदहन पीच।

खोड मिटी समता भई, रही न ऊंच न नीच ॥

इस ७-८ वर्षके बीचमें अनेक बातें निम्नमें योग्य हो चुकी हैं, जो उक्त रत्नमगदनाके निष्कर्षमें पर जानेसे नहीं लिखी जा सकी, अब अब लिख दी जाती हैं। संवत् १९८४ में अहंमीर समाद काल-

१ हंटर साहिबने अहंमीरकी शान्ति के विषयमें केवल इतना लिखा है कि, "सन् १९२७ में (संवत् १९८४) में जब टि उगवा बैठा

वश हो गये, और उनकी मृत्युके चार महीने पश्चात् शाहजहाँ मिहासनारुह हुए । शाहजहाँ जहाँगीरके बेटे थे । जहाँगीरने २२ वर्ष राज्यभोग किया । काश्मीरके भागमें उनकी अचानक मृत्यु हो गई । इसी वर्ष कनाग्मीदामजीकी नीमगी भायामें प्रथमपुत्र अव-

शाहजहाँ और बड़ा मरदार महलाथम्बा के दोनों बर्गों में रह थे, जहाँगीर मर गया, और शाहजहाँ अपने बापके मरनेका खबर सुनने ही भागभाग मुख दर्शनमें उनका आया और सन् १६२८ में आगे आकर उसने नदीपर बैठनेका इज्जत दे दिया । अबदाश ही कविवर लिखित ४ महीने इस बचमें गुजर गये होंगे, और जल्द मारी रहा होगा ।

१ तुलुक जहाँगीरने बादशाहका मृत्युके रिषय इस प्रकार लिखा है—“मच्छी भयन, अजोल नार बेरनागका मर करके बादशाह काश्मीरमें लड़ाईकी ओरको बटे, और खीरमकहेके पहाड़में एक कुतलजनक शिकार करनेमें आप मर गए । चनादार लोग इसे गोंकों हकालके पहाड़की चोटीपर लाते थे । तब बादशाह मानव नीचेमें गोली मारते थे । हरिण गोली खाकर चढ़र जाना हुआ नीचे तक आता था, इसमें आप बड़े प्रसन्न होते थे । पर हाव ! उन बेचारे तृणजीवी जीवोंसे भी क्या प्रसन्नता आता था । एक दिन उस देशका एक प्यादा एक हरिणसे पैरकर पहाड़ पर गया । वह हरिण एक कंधरकी ओटमें इस तरह हो गया कि बादशाह नाचमें उसे नही देख सके थे, इसलिये वह प्यादा इसकी हानतकी फिरसे चला । परन्तु चतनेमें अभागोका पैर फिसल पड़ा । पाग ही एक वृक्ष था, उसकी उसने पकड़ा परन्तु वह उमड़ आया । निदान उस पहाड़की चोटीमें लड़कता हुआ चुगी तरहमें जमान पर आ गया, और गिरते ही प्राणहीन हो गया । एकके पीछे एक जीवका लो लो देगकर बादशाहकी बरा उद्देग हुआ । वे अपने दुःखों में लिपित

सरित हुआ, परंतु थोड़े दिन जीकर ही बन गया। फिर संवत् ८५ में दूसरा पुत्र हुआ, जो दो वर्ष जीकर उसी पथका पथिक बन गया। संवत् ८७ में तीसरा पुत्र और ८९ में एक पुत्री इस प्रकार दो संतान हुए। यह पुत्री भी थोड़े दिनकी होकर मर गई। पुत्र 'दिन देने रात चौगुने, के क्रमसे बढ़ने लगा। वरिष्ठका श्रवणगृह आनन्दकारी कलरवपुष्प हो गया। सूक्तिमुक्तामयी, अम्बारमव-लीली, पैरी, काम, घमास, मिश्रुचतुर्दशी, फुटकर कवित्त, शिव पक्षीसी, भावना, सहस्रनाम, कमंडलीनी, अष्टकभीत, वचनिका आदि कविताओंका निर्माण भी इसी ७—८ वर्षके बीचमें हुआ। यद्यपि कविता निर्माणके समय वे केवल श्रद्धाका आभादन करते थे, और प्राण एकत्र होनेसे विनागमके अनुकूल नहीं था,

सम्हात नहीं रहे, और शिवाय छोटे-से दौलतगानेमें आ गये। थोड़ी देरमें उक्त प्यादेकी अगहाया माया रौली पीटली बादशाहके पास आई। तब उन्होंने बहुत सा मकर रक्का देकर उक्त बुढ़ियाको थोड़ी बहुत तसली दी, परंतु ज्ञान उनके बिलकी लगती नहीं हुई। उनही रात बुढ़ियामें भी विचित्र हो गई। मानो समस्तजने इस बीजुके निशने उन्हें दर्शन दे दिया था।

बादशाह इसी रातमें बीजमचलेमें घेने और घेनेमें राजीरको गये। फिर बदांसे सदाकी आई पहर दिन रहे बूच दिया। मार्गमें प्याला मांग, पर उधो ही मुहसे लगाया, छुटकर उलटा आ पड़ा। दौलतगानेमें पहुंचने तक बड़ी दशा रही। बड़ी कठिनाईसे रात निकली। प्रातःकाल कई रजाय बड़ी सटनीमें आये और प्रहर दिन पड़ेके अनुमान २८ गहर रात १०-१७ (वार्तिक बड़ी १- संवत् १६८४) को ६० वर्षकी उमरमें हिंदुस्थानके एक साक्षिजाती सम्मादय प्राण निकल गया। सब लोग देखावे ही रह गये।

परन्तु उक्त सब कवितायें भी जिनागमके प्रतिकूल होंगी, ऐसी संका न करनी चाहिये । वे सब अनुकूल ही हुई हैं । ऐमा कविवरने अर्द्धकथानकमें स्वयं कहा है—

सोलह सौ वानवे लों, कियो नियनरस पान ।

पै कर्षासुरी सब भरे, स्यादघाद परमान ॥

गोमट्टसारके पद चुकने पर पंडित रूपचन्दजीकी कृपासे जब वनारसीके हृदयके कपाट खुल गये, तब उन्होंने भगवत्कुन्दकुन्दा-चार्यप्रणीत नाटकममयसार ग्रन्थका भाषापर्यानुवाद करना प्रारंभ किया । भाषा साहित्यके अडानमें यह ग्रन्थ कैसा अद्वितीय, और अनुपम है, अध्यात्म मगीसे कठिन विषयको कैसी सरलता और सुन्दरतासे इसमें कहा है, उसे पाठक तब ही जान सकेंगे, जब एकबार उक्त पुस्तकका आचमन पाठ कर जावेंगे । मयू १९१३ की आश्विन शुक्ल त्रयोदशीको यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है, ऐमा ग्रन्थकी अन्त्यप्रशस्तिसे प्रगट होता है ।

मयू १९ का यह दिन कविवरके लिये बहुत जोरप्रद हुआ, जिस दिन उनके प्यारे इकलौते पुत्रने शरीर छोड़ दिया । • वर्षके एक होनहार बालकके इस प्रसार चले जानेसे १८म माना-शिकाको शोक न होना होगा? अगली रात कविवरके हृदयमें गहरी चोट बैठी, उन्हें वह संसार भयानक दिमाई देने लगा । यथोक्ति

नौ बालक हुए मुझे, रहे नाग्निर दोय ।

ज्यों तद्वर धनसार है, रहे टूटमे होय ॥

वे विचार करने लगे कि—

तत्त्वदृष्टि जो देखिये, सत्यारथकी भांति ।

ज्यों जाकी परिग्रह धरै, स्यों ताको उपज्ञांति ॥

परन्तु—

संस्तारी जानें नहीं, सत्यारथकी बात ।

परिग्रहसों माने विमथ, परिग्रहविन उत्तपात ॥

इस प्रकार विचार करनेपर भी दो वर्ष तक कविशंकर मोहका उपशान्त नहीं हुआ । सन् १६९८ में जब कि यह अर्थ कथानक रचा गया है, कुछ मोह उपशान्त हुआ, ऐसा कहकर हमारे चरित्र नायकने कथानकके पूर्वांश को पूर्ण किया है ।

जीवनचरित्रके अन्तमें नायकके गुणदोषोंकी आलोचना करनेकी प्रथा है । बिना आलोचनाके चरित्र एक प्रकार अधुना ही रह जाता है । अतएव कविशंकर गुणदोषोंकी आलोचना करना अभीष्ट है । जीवनचरित्रके लेखकोंको इस विषयमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु तो भी ये बचार्थ जिसनेधे अनमर्थ होते हैं । और अनुमानादिके मरीसे जो थोड़ा बहुत लिखते भी हैं, वह नायकके विशेषकर वाच्यचरित्रोंमें सम्बन्ध रखता है । ऐसी दशामें पाठक प्रायः नायकके अन्तर्चरित्रोंसे अनभिज्ञ ही रहते हैं । परन्तु बड़े हर्षकी बात है कि, हमारे चरित्रनायक स्वयं अपने चरित्रोंको दिग्दर्शन गये हैं, इस लिये हमको इस विषयमें विशेष प्रयास तथा विमता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । उन्हींके अङ्गोंको हम यहाँ मिलकर अर्द्धकथानकके चरित्रको पूर्ण करते हैं ।

अथ घनारस्सीके कहों, वर्तमान गुणदोष ।

विद्यमान पुर आगरे । शुण्णसों रहै सजोष ॥

शेषजीवन ।

पूर्वमें वह चुके हैं कि, कविवर नारसीदासजीकी जीवनी संवत् १९१८ तककी है । इसके पश्चात् वे कब तक संगारमें रहे । क्या २ कार्य किये । प्रतिज्ञानुसार अपनी शेष जीवनी लिखी कि, नहीं । अन्य नवीन सम्मोहकी रचना की कि नहीं । आरि अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं, परन्तु इनका उत्तर देनेके लिये हमारे निकट कोई भी साधन नहीं है । और तो क्या हम यह भी निश्चय नहीं कर सकते कि, उनका देहोत्सर्ग कब और किम स्थानमें हुआ । यह बड़े शोककी बात है ।

पाठकगण जीवनचरित्रका जितना भाग उपरि पाठ कर चुके हैं, उसपर यदि विचार किया जाये, तो निश्चय होगा कि, यह मनुष्य उनकी आत्तिथोका था । उम ५५ वर्षके जीवनमें उन्हें बहुत बड़ा समय देखा दिया है, जिसमें वे सुगम रहे हों । बहुत थोड़े पुरुषोंके जीवनमें इस प्रकार एकके पश्चात् एक, अनरिक्त आनन्दोंके उपरिगत हुई हैं । इस ५५ वर्ष की आयुके समय मोहके उत्थान होने पर उनके सुगमता समय आया था, मनो विधानाने उनके जीवनके इस सुगमय को विभाग भाग का दिये थे और इसी लिये कविवरने इस प्रथम जीवनको पूर्ण शिश्ननेका प्रशंसन दिया था । आश्चर्य नहीं कि दूसरे सुगम

१ 'वसन्त-विभाग' कविवरजी अनेक रचनाओंका लेखक है । हमने "कर्मवृत्ति-विभाग" नामक अपने अन्तिम अध्याय में, संवत् १००० के पञ्चमसदी (जी) को है । इनके वसन्त की ओर भी कविता प्रत्यक्ष है । हमारे वह भी ज्ञान प्रमाण है कि, कवि । कविवर का सुगमय जीवन १०-५ वर्षोंमें खर्च नहीं हुआ ही ।

जीवनको भी उन्होंने हम लोगोंके लिये लिखा हो । परन्तु वह आज हमको प्राप्त नहीं है । यह हम लोगोंका अभाग्य है ।

इतिहास लिखने में जनश्रुतियाँ भी मायनभूता हैं । क्योंकि अनेक इतिहासोंके पत्र केवल जनश्रुतियोंके आधार पर ही गे जाते हैं । कबिराजके जीवनकी अनेक जनश्रुतियाँ प्रकाशित हैं । परन्तु अनुमानसे जाना जाता है कि वे सब प्रथम जीवनके पञ्चाङ्गकी हैं, इनमें हम उन्हें संक्षेपजीवनमें सम्मिलित करना ठीक समझते हैं ।

१ शाहजहाँ बादशाहके दरबारमें कबिरा बनारसीदासजीने बड़ी प्रीति प्राप्त की थी । बादशाहकी कृपाके कारण उन्हें प्रतिदिन दरबारमें उपस्थित होना पड़ता था और महलमें जाकर प्रायः निरन्तर सत्संज खेलना पड़ती थी । कबिरा सत्संजेके बजे शिखाही थे । कहते हैं कि, बादशाह इनके अतिरिक्त किसी अन्यके साथ सत्संज खेलना पसन्द ही नहीं करते थे । बादशाह जिस समय दीरेपर निकलते थे, उस समय भी वे कबिराको साथमें रखते थे । तब अनेक राजा और नवान्न गुरु चिटते थे, जब वे एक साधारण बगिचको बादशाहकी बराबरी पर बैठा देखने थे, और अपनेको उसमें नीचे । संवत् १११८ के पञ्चाङ्ग कबिराका मोह उपशान्त होने लगा था, ऐसा कथानकमें कहा गया है । और हम जो कथा लिखते हैं, वह उसके भी कुछ पीछेकी है, जब कि, उनके चरित्र और भी विशद हो रहे थे, और जब वे अष्टांग सम्प्रदायकी धारणा पूर्णतया कर रहे थे । कहते हैं कि उस समय कबिराजने एक दुर्धर प्रतिज्ञा धारण की थी । अर्थात् उन्होंने संसारको तुच्छ समझके यह निश्चय लिया था कि, मैं

जिनेन्द्रदेवके अतिरिक्त किसीके भी आगे मस्तक नम्र नहीं करूंगा । जब यह बान फैलते २ बादशाहके कानोंतक पहुंची, तब वे आश्चर्ययुक्त हुए परन्तु क्रोधयुक्त नहीं हुए । वे कविवरके स्वभावसे और धर्मग्रन्थसे मंत्रीमांति परिचित थे, परन्तु उस धन्दाकी सीमा यहां तक पहुंच गई है, यह वे नहीं जानते थे, इसीसे विस्मित हुए । इस प्रतिज्ञाकी परीक्षा करनेके रूपमें उस समय बादशाहको एक मसखरी सूझी । आप एक ऐसे स्थानमें बैठे, जिसका द्वार बहुत छोटा था, और जिसमें बिना सिर नीचा किये हुए कोई प्रवेश नहीं कर सकता था । पश्चात् करिअरको एक सेनके द्वारा बुला भेजा । करिवर द्वारपर आते ही ठिठक गये, और हुगूरकी घाटाकी समझके घटमें बैठ गये । पश्चात् शीघ्र ही द्वारमें पहिले पैर बाड़के प्रवेश कर गये । इस क्रियासे उन्हें मस्तक नम्र न करना पड़ा । बादशाह उनकी इस बुद्धिमानी से बहुत प्रसन्न हुए, और हँसकर बोले, कविगन ! क्या चाहते हो ! इस समय जो मांगो मिल सकता है, करिअरने तीन बार बचनबद्ध करके कहा, जहापनाह ! यह चाहता हूँ कि, आजके पश्चात् फिर कभी दरबारमें सम्मेलन न दिया जाऊँ ! इस विविध वाचनाने बादशाह तथा अन्य समस्त दरबारी जो उस समय उपस्थित थे, चकित तथा स्तब्ध हो रहे । बादशाह इस बचनके द्वार देखेंगे बहुत दुःखी हुए, और उदास होके बोले, करिअर ! आपने धम्मा नहीं दिया । इतना कहके अन्य पुरमें चले गये, और कई दिनगट दरबारमें नहीं आये । करिअर अपने आत्मध्यानमें मग्न हो गये ।

२ जहाँगीरके दरबारमें भी इनमें पहिले एक बार और यह बात

बनी थी, कि बनारसीदास किसीको सत्याम नहीं करते हैं। कहते हैं कि, उगममय अब उनसे सत्याम करनेके लिये कहा गया था, तब उन्होंने ने—यह कविच गदकर कहा था—

जगतके मानी जीव, है रहणो गुमानी पेसो,
भाय्य अमुर दुगदानी महा भीम है ।
ताको परितप संक्षिपेको परगट भयो,
धर्मको धरपा कर्म रोगको टफीम है ॥
जाके परमाय भागे भागें परभाय सय,
नागर नवल सुगसागरकी सीम है ।
संघरको रूप धर सार्ध शिखराह पेसो,
शानी पातशाह ताको मेरी वसलीम है ॥

३ एक बार बनारसीदासजी किसी सहकर गुप्तभूमि देख-कर पेशान करने लगे, यह देखकर एक शाही सिपाहीने जो ताकाउ ही माली हुआ था, और जो कविराजको पहिचानता नहीं था, पाममें आकर इन्हे पकड़ लिया और दो बार चपत (तमाचे) जड़ दिये । कविवरने तमाचे सह लिये, चू तक नहीं किया और चटते बने । दूसरे दिन शाहीदरबारमें कार्यवशात्, देवयोगसे वही सिपाही उस समय हजरि किया गया, जब कविवर बादशाहके निकट ही बैठे हुए थे । उन्हें देखकर बेचारे सिपाहीके प्राण रग्न गये । वह समझा कि, अब मेरी मृत्यु आ पहुँची है, तब ही मैंने कउ इस दरबारीसे सहे बैठे सपुता कर ली है । आज इसीने शिकायत करके मुझे उपस्थित कराया है । इन विचारों-

१ यह कविता "काउक समवसार" में भी है ।

है। तब पुनः देह, और सभी दशाः उत्पन्न भी होने लगे। फिर ब्रह्मणे उत्पन्न सब पापों को जाने तक छोड़ी देर जाके तीर्थ जाँच फिर पुनः बैठे, महात्मन् क्या बने, आरका नाम मनेसा जन्मलिया है, क्या मैं फिर मृत गया फिर बनता हीमिन्द। आगे तक तो महात्मा जन्मलियां काय उत्पन्न होने लगे, पाम्पु अकली का मुग्धमे महात्मा निरुद्ध ही पड़े। मुक्ताने देते, अने देवदूत! दशका बह लो दिया दि, हीनमहात्मा 'हीनमहात्मा' 'हीनमहात्मा!!' फिर कबो जनेही पादे जाया है। कम' परीक्षा हो चुकी, महात्मन् के (अनुनीय) हो गये। बहिरार बह बह बह बहमे बने बने दि, महात्मन्! आरका दशार्थ नाम 'ज्वालामहात्मा' होने योग्य है, सभी जिनके मैं उस मुक्तहीन बहरो पाद गही लय मक्ता था।

५ दशका हो महात्मा आगरेमे आने हुए थे, और बहिरारमे टहने थे। सब लोग उनके दर्शन बन्दनको आते जाते थे, और अपनी २ बुद्धिनुसार पाप सब ही उनकी प्राप्ति दिया जाने थे। बहिरार परीक्षापानी जीव थे। उन्हें सब छोटीसी बह, दर्शन पूजनको जाना ठीक नहीं जेबा, जब तक कि मुनि परीक्षित न हो। अनर्थ स्वयं परीक्षाके जिनके उत्पन्न हुए। एक दिन उक्त मुनिद्वय बहिरारके दारानेमे एक शरीरे (गवाय)के निकट बैठे हुए थे और सम्मुख मकमन धर्मो-पदेश सुननेकी आत्मासे बैठे थे। शरीरेकी दूसरी ओर एक बाग था। उस बागमें मुनिकोटी दहि मट्टीयानि पट्टुबानी थी, और बागमें दहलनेकाहे पुष्पकी दहि भी मुनिपौर स्पष्ट-रीत्या पड़ती थी। बहिरार उस बगैनेमे पट्टुबे, और शरीरेके

मन्त्री मड़े हो गये । जब किसी मुनिजी दृष्टि उनकी ओर आती थी, तब वे अंगुली दिखाकर उसे निशाने थे । मुनियों ने उनकी यह कृति कई बार देमके मुँह केर किया, परन्तु कविवर ने अपनी अंगुली मटकाना बन्द न किया । निदान मुनि-द्वय धुमा विमर्जन करने लगे उद्यत हो गये । और मन्त्रजनों की ओर मुँह करके बोले, कोई देमो तो बागमें कोई कूकर ऊपम मचा रहा है । इतने शब्दों के मुनो ही जब तह छि, लोग बागमें देम-ने लगे आगे, कविवर लम्बे २ पैर लम्बे मो दो ग्याह हो गये । देमा तो वहाँ कोई न था । बनारसीदासजी पैर बढ़ाये हुए चले जा रहे थे । किसी मुनि महाशयो ने कहा, महाशय ! वहाँ भी तो कूकर गूकर कोई न था, हमारे यहाँ के सुप्रसिद्ध विद्वान् बनारसीदासजी थे, जो हम लोगों के वदुषों के वदुषों ही वदान बन गये । यह जानकर छि, वह कोई विद्वान् परीछक था, मुनियों को कुछ निम्ना हुई, और दावा दिख रहे थे मन्त्रज विद्वान् बन गये । कहन दे छि, कविवर परीछा कर गृहने पर छि मुनियों के दर्शनों को नहीं गये ।

५. सोमाजीजी ने सोमाजी मुदसीदासजी बहुत प्रिय हैं । उनकी बनाई हुई सोमायणदा भाग्यने मन्त्राण्य प्रचार है, और सब मन्त्र वह प्रचार के योग ही मन्त्र है । सोमाजीजी बनारसीदासजी के मन्त्राण्य थे । मन्त्र १२८० में विम मन्त्र मुदसीदासजी का कविवर हुआ था, बनारसीदास ने ही मन्त्र १२८० को ही । हम ईश्वर ने मन्त्र कव को ही मन्त्र है छि, बनारसीदासजी को मुदसीदासजी का कई बार मन्त्र हुआ था, मन्त्राण्य मन्त्र ही नहीं हो मन्त्र ।

गोस्वामीजी निरंकवि ही नहीं थे, वे एक स्वधरिष महात्मा थे । और सज्जनोंसे भेट करना बनारसीदासजीका एक स्वभाव था । इस दिवसे भी दन्तकथाओंपर विश्रान किया जा सकता है । यद्यपि कविवरजी जीवनी संवत् १६९८ तककी है, और उसमें इस विषयका उल्लेख नहीं है, तो भी दन्तकथाओंमें सर्वथा तथ्य नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । एक साधारण बात ममताके जीवनीमें उसका उल्लेख न करना भी ममत्व है ।

कहते हैं कि एकबार मुलसीदासजी बनारसीदासजीकी काव्य-महांता सुनकर अपने कुछ भेदोंके साथ आगरे आये तथा कविवरसे मिले । कई दिनोंके समागमके पश्चात् वे अपनी बनाई हुई रामायणकी एक प्रति भेट देकर दिखा दी गये । और पार्श्वनाथसायीकी स्तुतिमय दो तीन कवितायें जो बनारसीदासजीने भेटमें दी थी, माथमें छेप गये । इसके दो तीन वर्षोंके उपरान्त जब दोनों कविभेदोंका पुनः समागम हुआ, तब मुलसीदासजीने रामायणके सौन्दर्य विषयमें प्रश्न किया । जिसके उत्तरमें कविवरने एक कविता उसी समय रचके सुनाई—

“विराजै रामायण घटमाहि, विराजै रामायण०”

(बनारसीविलास पृष्ठ १४९।)

मुलसीदासजी इस अध्यात्मभावगुर्वको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले “आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगती है,” मैं उसके बदलेमें आपको क्या सुनाऊँ । उस दिन आपकी पार्श्वनाथस्तुति पढ़के मैंने भी एक पार्श्वनाथस्तोत्र बनाया था, उसे आपको ही भेट करता हूँ । ऐसा बहके “भक्तिविरदावली” नामक एक सुन्दर कविता कविवरको अर्पण की । कविवरको उस कवितासे

बहुत संतोष हुआ, और पीछे बहुत दिनों तक दोनों गजनो
भेट गमय २ पर होती रही ।

भक्तिविरदायलीली कविता सुन्दर है, उसकी रचना अने
छन्दोंमें है । ती भी रामायणकी कविताका ढंग उसमें नहीं है
हम लिये उक्त कविरत्नीपर एकाएक विभाग नहीं हो सका
पाठकोंके जाननेके लिये उसके अन्तिम दो छन्द यहाँ उद्धृ
त किये जाते हैं—

गीतिका ।

परजगज भी भगवान्द्रूपे, सरान हैं उर मादि ।
गर्भुगतिविहङ्गन तरनभारन, देन विषन विलादि ॥
भक्ति धरतिगति नदि पार पायन, मर सु पपुरा कौन ?
निदि लगन कमलाजन-पयोधर, भजदि मयिजन तीन ॥
दुनि उदित विभुषन मण भूषन, जलधि मान गभीर ।
जिदि मान ऊपर छत्र गोहन, रहन दोष मधीर ॥
जिदि मान पारम सुगल वंछन, विल चरनन जाग ।
निदि निदि कमला भजत राजिन, भजन तुमर्गदास ॥

इस विभाग में 'लुङ्गीगण' इस नावके अतिरिक्त जो छि
प'व छन्द स्थानोंमें आया है, और कोई बात ऐसी नहीं है,
विषय वह निश्चय हो सके कि, यह 'लुङ्गी' गुणार्थकी ही है,
अर्थात् कोई मन्त्र । पद-गु गुणार्थकी का होना संशय भवेना
की नहीं कहा जा सक्ता । क्योंकि इस समयके सिद्धान्तोंमें आज
कही नहीं मानेइव नहीं जा । वे बड़े साधुद्वयके मत थे ।

० कविरत्ना देह-पदेष्टा अर्थात् देह, यह ३७१ वहाँ

जा चुका है, परन्तु कुटुम्बारी एक निवृत्ती मनीषा है । कहते हैं कि, अन्तर्गतमें कठिनाई के ठ अगस्त हो गया था, लोगेंक सम्मेलनके कारण से कोन मही मने। थे । और हमारे अने अन्त सम्मेलन निवृत्तीका अन्तर्गत हो रहे थे । लोगोंको विभाग हो गया था कि, ये अब घटे हो घटेमें अधिक जीवन नहीं रहेगे, परन्तु कठिनाईका अन्तर्गत अब घटे हो घटेमें पूर्ण नहीं हुए, तब लोगेंक ताह २ के अन्तर्गत करने लगे । पूर्वजोग कहने लगे कि, इनके अन्तर्गत और कुटुम्बिकोंमें अटक रहे हैं, जब तक कुटुम्बीजन इनके सम्मुख न होंगे और दौडतकी मठी इनके सम्मुख न होगी, तब तक अन्तर्गत न होंगे । हम अन्तर्गतमें सबने अनुमति प्रदान की, किमीने भी विरोध नहीं किया । (पूर्वजोगको समझाते हैं !) परन्तु लोगोंके इस ताह पूर्वजोग-पूर्व विभागोंको कठिनाई सहन नहीं कर सके । उन्होंने इस लोकप्रदाताका निवारण करना चाहा, हमारे एक पटिका और लोगोंने अन्तर्गतमें निवृत्तीका लोगोंको इच्छा किया । बरी कठिनाईका साथ लोगोंने उनके इस सन्देशको समझा । जब मेमनी पटिका आ गई, तब उन्होंने निवृत्तीका को छन्द गढ़कर निवृत्ती दिया । इन्हें पटकर लोग अन्तर्गत भूतको समझ लगे, और कठिनाईको कोई परम विद्वान् और धर्मात्मा समझकर वैसावृत्त्यमें मन्वीन हुए ।

ज्ञान बुद्धि का हाथ, भारि भरि मोहना ।

प्रगट्यो कथ स्वरूप, अन्तर्गत सु सोहना ॥

जा परजको अन्त, सत्यकर मानना ।

चले बनापतिदास, फेर नहि आपना ॥

इस कथाने जाना जाता है कि, कविवरकी मृत्यु किसी ऐसे स्थानमें हुई है, जहां उनके परिचयी नहीं थे । क्योंकि आगे अथवा जौनपुरमें उनकी बड़ी प्रीति थी, वहां इस प्रकारकी घटना नहीं हो सकती थी ।

बनारसीशायरीकी रचना ।

बनारसीशायरी, नाटकमयगाथा, माममात्रा, और अर्द्ध-कथानक, ये चार मुख्य कविवरकी रचनाके प्रसिद्ध हैं । कवि दुर्भीषण्डी संगृहीत ग्रन्थोंकी सूची (जौनशाय नाममात्रा) में बनारसीपद्यनि ग्रन्थ भी आकरा बनाया हुआ दिया है । अभी तक हम अर्धकथानक और बनारसीपद्यनि दोनोंको एक समझते हैं, परन्तु दुर्भीषण्डीके लेखमें दो पृष्ठों ग्रन्थ प्रतीत होते हैं । क्योंकि उन्होंने बनारसीपद्यनिको जयपुरके भंडारमें मौजूद बताया है । अतः हो सकता है कि, वह कोई दूसरा ग्रन्थ हो, अथवा

१ और पाँचवा ग्रन्थ यह है, जो समुदायकीके विद्यालयमें लगे किने मिली हो गया है । और शिरोह किने कर्मी महात्मा बंद शिरो मित्र पु भी हुए थे । पाठ्यो काय है, वह सुझाव ग्रन्थ का ।

२ बनारसीपद्यनिकी ओरसेका कवि दुर्भीषण्डीने ५०० दिया है, जो अनन्तरकाकी ओरसेका उनमें पृथ्वीके अनुमान है । औरराननके ६०० देता भी गई है । अतः गलत होता है कि, वह कोई दूसरा ग्रन्थ होगा, यदि कविकीका दिवना पात्र दो तो । इसके अतिरिक्त कविने बनारसीपद्यनिको अथवा अन्तरेक विद्याकीके रूपमें भी दिया है । शिरोह ज्ञात होता है कि, वह भी कोई बनारसीपद्यनि नहीं है, जो किने पृथ्वीने दिया है, अथवा अतः कविनेका दिया हुआ है ।

लका निष्कलंक चन्द्रमा है । इसकी रचनामें कविवरने अपने जिस अपूर्व सक्तिका परिचय दिया है, उसे मायासाहित्यमें अप्पात्मकी चरममीमा कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी । नाटक समयसारकी रचना आदिका समय पहिछे लिया जा चुका है, यहाँ उसके काव्यका परिचय देनेके लिये हम दो चार छन्द उद्धृत करते हैं । पाठक प्यानसे पढ़ें, और देखें हमारा लिमन कहाँ तक मत्त है ।

(१)

मोक्ष धलधेको सीने, करमको करे पीने ,
जाको रस भीन शुध लौन ज्यों घुलत है ।
गुणको गिरंथ निरगुनको गुगम पेध,
जाको जस कहत सुरेश भकुलत है ॥
याहीके जो पक्षी तो उद्धत मान गगनमें,
याहीके बिपरी अगजालमें गलत है ।
दार्दक तो विमल विराटक तो विसतार,
नाटक सुनन दिय फाटक खुलत है ॥

(२)

काया विवर्णासीमें करम परजंक मारी,
मायाकी नेशारी नेत्र थारर कल्पना ।
मन करे धेनन धर्मेननना नींद लिये,
मोहनी मरोर वह सोयनको दपना ॥

उदै पल ओर यदै स्वासको शब्द घोर,
धिपय सुख काजकी दूर यदै सपना ॥
ऐसी मूढ दशामें मगन रहै तिहुंकाल,
धाय भ्रमजालमें न पावै रूप अपना ॥

(३)

काजविना न करै जिय उद्यम, लाजविना रन माटि न जूमि ।
डीलविना न सधै परमारथ, डीलविना नतसों न अरुं ॥
नेमविना न रहै निदर्यपद, प्रेमविना रस रीति न बूझै ।
ध्यानविना न धैमै मनकी गति, ध्यानविना शिषपंथ न गूँझै ॥

(४)

रूपकी न होँक दिये करमको डौंक पिये,
ज्ञान दधि रह्यो मिरगाँक जैसे घनमें ।
लोचनकी डौंकसों न माने सदगुरु डौंक,
डोल पराधीन मूढ राँके तिहुंपनमें ॥
टौंक एक माँतकी डलीसी तामें तीन पौँके,
तीनिको लो भौँक लिति राख्यो काहू तनमें ।
तासों कहै 'नौँक' ताके राखियेको करै कौँक,
लौँकेसो सरग बांधि पौँक धरे मनमें ॥

१ मलक । २ चन्द्रमा । ३ रीक (रीज) । ४ टव (परिमाण-
विशेष) । ५ डकड़े । ६ अक (लोक) । ७ लक (पत्तर) ।
८ बकता (रिमई) ।

(५)

हे नाहीं नाहीं सु हे, हे हे नाहीं नाहि ।
यह सरांगी नयधनी, सब माने सबमाहि ॥

(६)

कायासे विचारि प्रीति मायाहीमें दारजीति,
लिये दडरीति जैमे दारिलकी लकरी ।
पुंगुलके जोर जैमे मोद गदि रहै भूमि,
स्यों ही पाँय गाढ़े पै न छांड़े टैक पकरी ॥
मोदकी मरोरनों भरमको न छोड़ पाये,
घाँवें चहुँभोर ज्यों बढाये जाल मकरी ।
पेभी दुरबुद्धि भूलि सउके मरोमे सुलि,
गूली फिर ममना जंजीरनसों जकरी ॥

(७)

रूपकी रसीली भ्रम कुलकर्की कीली रील,
लुपाके गमुद्र तीली गीली गुणदार है ।
प्रार्थी ज्ञानमानकी मजार्थी है निदान की लु,
सार्थी नरपार्थी होर गार्थी दकुसारे है ॥
घामकी मयनदार रामकी रमनदार,
गथा रम पंथनिमें प्रंथनिमें गार है ।
मंननिकी मारी निरथानी नूरकी निशानी,
वाने मदबुद्धि रानी गविदा बहार है ॥

पाठक । इस ग्रन्थकी सम्पूर्ण रचना इसी प्रकारकी है । जिस पद्यको देखते हैं, जी चाहता है कि, उसीको उद्धृत कर लें, परन्तु इतना स्थान नहीं है, इसलिये इतनेमें ही संतोष करना पड़ता है । आरम्भ इच्छा यदि अधिक बढ़ती हो, तो उक्त ग्रन्थका एकवार आपन्त पाठ कर जाइये ।

नाटकसमयसार सूत्र, भगवान् बुन्दबुन्दाचार्यकृत प्राकृतग्रन्थ है । उसपर परमभट्टारक श्रीमद्भूषचन्द्राचार्यकृत संस्कृत टीका तथा बल्लभ हैं । और पद्मिनी रायमन्त्रीकृत बालावबोधिनी औपाटीका है । इन्हीं दोनों तीनों टीकाओंके आशयसे कविवरने इस अपूर्व पद्यानुवादकी रचना की है ।

३ नाममाला—यह महाकवि श्रीधनंश्वरकृत नाममानाका भाषा पद्यानुवाद है । शब्दोका ज्ञान करनेके लिये यह एक अत्यन्त सरल और उपयोगी ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ हमारे देखनेमें नहीं आया । परन्तु ग्रन्थप्रकाशक महाशयने मुक्तकपुरातिलेके छपरौली ग्रामके बाल्मीकी एकवार पढ़ते हुए सुना था, परन्तु पीछे प्रयत्न करने पर भी नहीं मिला । नाममालाके कुछ दोहे नाटक समयसारमें ॥ प्रकार लिखे हैं—

मैत्रा धिक्का शेमुषी, धी मेघा मति पुजि ।

सुरति मनीषा खेनना, आशय अंश विजुजि ॥

१ पण्डित जयचन्द्रजी, और पद्मिनी हेमरावजीने भी समयसारकी भाषाटीका की है । पण्डित जयचन्द्रजीकी टीका खबरे विस्तृत और बोधप्रद करी जाती है ।

२ शेमुषीधिका आश, मनीषा धीलवाचयः ॥ ११० ॥

निपुण विचक्षण विपुल गुण, विषाधर पिद्वान् ।
 पटु प्रवीण पंडित गनुर, मृधी मृज्जन मनिमान् ।
 कलाधान कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमन्त ।
 साता साधन प्रद्वविद, सत शुनीजन सन्त ॥

२ अमुकमानस — यह कविराजी रचनाका चौथा प्रश्न है इसमें ५७२ श्लोका चौपाई हैं। इसमें यह जीवनपरिचय इस प्रकारके भाषाश्लेषों में लिखा है। इसकी कविताका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जीवनपरिचयमें सब बातें इसमें अनेक वक्त उद्घुस किये गये हैं। अनुमानमें जाना जाय है, कि यह प्रश्न कवी कीमतामें लिखा गया है, क्योंकि अन्य कवीगणोंकी भाँति कविराजने इसमें समकालानुसारपर ध्यान नहीं दिया है। केवल इन हीनप्रकारों का बल ही इसमें रचनेका मुख्य उद्देश्य रहा है। फिर भी कवी २ के रसाभिरुचि वक्त बहुत मनोहर हुए हैं।

Wright et al.

ਸਮੇਂ ਵਿਚੀਂ ਇਹ ਗੁਣਵਾਦੀ ਆਦਿਕਾਸ਼ੀਮੇ ਵਿਚੋਂ ਕੁਝ ਵੀ
 ਨੇਕ ਪੂਰੇ ਨਿਯਮਾਂ, ਆਦਿਕਾਸ਼ੀਮੇ, ਆਦਿਕਾਸ਼ੀਮੇ ਅਤੇ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ
 ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ
 ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ
 ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ
 ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ
 ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ
 ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ ਸਮੇਂ

[illegible]

7-8-1994 10:45 AM 10:45 AM 10:45 AM

है, उसमें बर्हातक गफटता हुई है, इसके निर्णयका भार पाठकोंपर ही है । यदि पाठकोंने हमारे इस परिश्रमका विनित् भी आदर दिया तो, शीघ्र ही पुन्दावनरित्तमादि बान्धव मन्थ कवियोंके विमृत इतिहासमदित् दृष्टिगोचर करनेका प्रयत्न किया आवेगा ।

हिन्दीके माननीय पत्रमन्थदकों और मन्थालोचकोंमें प्रार्थना है कि, वे कृपाकर इस मन्थकी आपन्त-पाठपूर्वक निष्प्रभदृष्टिसे मन्थालोचना करनेकी कृपा करें और हम लोगोंके उन्माह और हिन्दी-प्रचारकी रविको बढ़ावें ।

बनारसीदामजीके परिश्रम सिन्धुमें माननीय मुंशी देवीप्रसादजी मुनिक जोधपुरमें मुसलमानी इतिहासकी बहुत सी बातोंकी सहायता मिली है, इस विषे यह मन्थ और मेमक दोनों उनके आभारी हैं ।

मन्थसंशोधन तथा जीवनचरित्रमें दृष्टिदोषमें तथा प्रमादघटने यदि कोई भूत रह गई हो, तो पाठकवृन्द क्षमा करें । क्योंकि—

“न सत्यं सत्यं जानाति ” इत्यलम् विद्वद्वरेषु ।

बम्बई-पन्दाबादी ।
१०-०-०५ ई० }

निनवाचन—
नाथूराम प्रेमी ।
देवरी (तामर) निवासी ।

विषयनाम.	शृङ्खलाख्या.
१ त्रिनक्षत्रनाम.	१
२ एणमुक्तावली. (संस्कृतपरिचय)	१७
३ ज्ञानवाक्य.	१९
४ वेदनिर्णयपंचाङ्गिका.	१०
५ श्रेष्ठ शालाकायुद्धोपनी नामावली.	१०१
६ मातृपाणिधान.	१०४
७ बर्मपुत्रविधान.	१०७
८ कल्याणमेरिहोत्र.	१२६
९ साधुपदना.	१२१
१० मोक्षपैठी.	१३४
११ कर्मउत्तीषी.	१३९
१२ ध्यानपैठी.	१४३
१३ अभ्यात्मपैठी.	१४६
१४ ज्ञानपैठी.	१५०
१५ विषयपैठी.	१५३
१६ भवतिपुत्रपुद्गी.	१५५
१७ अभ्यात्मपत्र. (धमार)	१५७
१८ शोधविधि.	१६०
१९ वेदकाटिका.	१६१
२० अभ्यात्मगीत. (मेरे मनका धारा को मिले)	१६३
२१ पंचपदविधान.	१६७

२२ मुमतिदेव्यष्टोत्तरशतनाम.	१६८
२३ शारदाष्टक.	१७०
२४ नवदुर्गाविधान.	१७२
२५ नामनिर्णयविधान.	१७६
२६ नवरत्नकविच.	१७८
२७ अष्टप्रकारभिनयपूजन.	१८१
२८ दशदानविधान.	१८२
२९ दशबोल.	१८४
३० पहिली.	१८६
३१ प्रभोत्तरदोहा.	१८७
३२ प्रभोत्तरमाला.	१८८
३३ अवस्थाष्टक.	१९०
३४ पदार्थनाष्टक.	१९१
३५ चानुबन्ध.	१९२
३६ अमृतनाथजीके छंद.	१९३
३७ शान्तिनाथभिनयसुवि.	१९५
३८ नवसेनाविधान.	१९७
३९ नाटकसमयसारसिद्धान्तके पाठान्तरकलशोका					
भाषानुवाद.	१९९
४० निग्यामतवाणी.	२०१
४१ प्रह्लादिकुटकरकविता.	२०२
४२ गोरखनाथके वचन.	२०९
४३ वैद्यआदिके भेद. (कुटकर कविता)	२१०
४४ परमार्थवचनिका.	२१४

४५ उपादाननिनिष्ठकी बिटी.	२२४
४६ निनिष्ठउपादानके दोहे.	२२०
४७ राग औरव.	२३१
४८ राग गमकरी. (२ पद) तथा दोहा.	२३२-२३३
४९ राग विलासल. (३ पद)	२३४-२३५
५० राग आसायरी (२ पद)	२३६-२३७
५१ परषाटद.	२३८
५२ राग घनाभी. (२ पद)	२४०
५३ राग सारंग. (४ पद)	२४१-२४२-२४३
५४ आलापदोहा. (६)	२४३
५५ राग गौरी. (२ पद)	२४४-२४५
५६ राग काली. (२ पद)	२४६
५७ परमार्थ दिखलना.	२४७
५८ मत्तार तथा छोटछपम.	२४९
५९ नयापद. १ ला	२५०
६० नयापद २ ला	२५०
६१ नयापद ३ ला	२५१
६२ बनारसीविद्यालके संग्रहकर्म.	२५१



नमः श्रीवीतरागाय.

जैनग्रन्थरत्नाकरस्य—रत्न ७ वां

वनारसीविलास.

विषय सूचनिका.

कविश मन्हर.

प्रथम सहस्रनाम सिन्दूरमेकरथाम, यावनीसेवया वेद-
निर्णय पचासिका । त्रैलोक्यलोका मार्गना करमकी प्रकृति-
फलपार्श्वमन्दिर सार्धवन्दन मुखासिका ॥ पेड़ी" करनछेपीसी
पीछे ध्यानकी बंसीसी, अप्यातमें बपीसी पचीसी" ज्ञान
शामिका । शिवकी पेचीसी भवसिन्धुकी चतुरदशी, अभ्यास-
केप्राग निधिपोढ़ेसविलासिका ॥ १ ॥

तेरदकोठिया मेरे मनका मुंघ्यारागीत, पंचपदे विधान
मुमति देवीधरे है । छारदा बेहारे नवदुरंगा निर्णय नौम,
नौरतन कविश सु पूर्वी दोनदन है ॥ दशबोले पहेली मुपे

पेशोत्तरमाला, अवस्था मतान्तर दोहों वरणत है । अजि-
 तके^{३६} छन्द शान्तिनाथछन्द सेनानव, नाट्यकवित्त चार,
 बानी मिथ्या मत है ॥ २ ॥

फुटकरसवैया बनाये वच गोरखके, वेद औदिभेद
 परमोरथ वचनिका । उपादनि निमित्तकी चिट्ठी तिर्नहीके
 दोहे, भैरौ रामकली ओ विजैवल सचनिका ॥ आशावरी
 बरेवा सु धनोश्री सौरंग गौरी, कौकी ओ हिडोलना
 मलोरकी मचनिका । मूपर उद्योत करो मय्यनके हिरदैमें,
 विरघौ ! बनारसीबिलासकी रचनिका ॥ ३ ॥

दोहर.

ये वरणे संक्षेपसों, नाम भेद विरतन्त ।
 इनमें गर्भित भेद बहु, तिनकी कथा अनन्त ॥ १ ॥
 महिमा जिनके वचनकी, कहै कहां लग कोय ।
 ज्यों ज्यों मति विस्तारिये, त्यों त्यों अधिकी होय ॥ २ ॥

इति विषयमूचनिका.



अथ जिनसहस्रनाम.

शेष.

परमेश्वर परनामकर. गुणको करतुं प्रणाम ।
 बुधिशत दम्पती द्रष्टके. महामष्टोत्तर नाम ॥ १ ॥
 केवल परमहिमा बहो, बहो मित्र गुणगान ।
 भाषा साहज संगहन. त्रिविधि दण्ड परमान ॥ २ ॥
 एकारधरापी तत्पर, अरु द्विरकि ओ होय ।
 नाम कथनके कवितमै, दोष न लागे कोय ॥ ३ ॥

बीषाई १५ मात्रा.

प्रथमोक्तारूप रंगान । करुणागार कृपानिधान ॥
 त्रिभुवननाथ रंग गुणवृन्द । गिराहीन गुणमूल अगन्द ॥ १ ॥
 गुणी गुप्त गुणदाटक बन्दी । अगनदियाकर कौतूहली ॥
 जन्मवर्ती करुणामय हमी । दगावन्तारी दीग्य दमी ॥ २ ॥
 अमर अमृगति अरस अमेद । अचल अवाधित अमर अपेद ॥
 परम परमगुरु परमानन्द । अन्तर्गामी आनन्दकन्द ॥ ३ ॥
 मागनाथ दायन अमलान । सीन्द तदन निर्यल परमान ॥
 तत्परूप तत्परूप अमेय । दयाकेतु अविचल आदेय ॥ ४ ॥
 सीलसिन्धु निष्पम निर्वाण । अविनाशी अम्पश अमान ॥
 अमल अनादि अदीन अलोभ । अनानद अत्र अगम अलोभा ॥ ५ ॥

अनवस्थित अध्यातमरूप । आगमरूपी अधट अनूप ॥
 अपट अरूपी अमय अमार । अनुभवमंडन अनय अपार ॥ ६ ॥
 विमलपूतशासन दातार । दशातीत उद्धरन उदार ॥
 नभवत पुंडरीकवत हंस । करुणामन्दिर एनविध्वंस ॥ ७ ॥
 निराकार निहचै निरमान । नानारसी लोकपरमान ॥
 सुखधर्मी सुखज्ञ सुखपाल । सुन्दर गुणमन्दिर गुणमाल ॥ ८ ॥

दोहा.

अम्बरवत आकाशवत, कियारूप करतार ।
 केवलरूपी कौतुकी, कुशली करुणागार ॥ १२ ॥

इति ओंकार नाम प्रथमशतक ॥ १ ॥

षीपाई.

ज्ञानगम्य अध्यातमगम्य । रमाविराम रमापति रम्य ॥
 अममाण अपहरण पुराण । अनमित लोकालोक प्रमाण ॥ १३ ॥
 कृपासिन्धु कूटस्थ अछाय । अनभव अनारुद्ध असहाय ॥
 सुगम अनन्तराम गुणमाम । करुणापालक करुणाधाम ॥ १४ ॥
 लोकविक्रामी लक्षणवन्त । परमदेव परमेश्वर अनन्त ॥
 दुगाराध्य दुर्गस्थ दयाल । दुरारोह दुर्गम दिक्पाल ॥ १५ ॥
 सत्पारथ सुमहायक सूर । शीलशिरोमणि करुणापूर ॥
 ज्ञानगर्भ चिट्ठूष निषान । नित्यानन्द निगम निरञ्जान ॥ १६ ॥

अक्षय अकरता अक्षर अजीत । अक्षु अनाकुल विषयातीत ॥
 मंगलकारी मंगलमूल । विद्यामागर विगतदुर्मूल ॥ १७ ॥
 नित्यानन्द विमल निरुजान । धर्मधुरंधर धर्मविधान ।
 प्यानी धामयान धनवान । दीर्घनिश्चेतन बोधनिधान ॥ १८ ॥
 लोचनाथ लीलाधर निद्र । कृती कृतारथ महासमृद्ध ॥
 सपमागर सपपुत्र अछेद । भवमयभञ्जन अमृत अभेद ॥ १९ ॥
 गुणादास गुणमय गुणदाम । स्वपरमकाशक रमता राम ॥
 नवल पुरातन अजित विद्वान् । गुणनिवास गुणग्रह गुणपाल ॥ २० ॥

दीर्घ.

लघुरूपी लालचहरन, लोभविदारन पीर ।
 पारादाही पीतमल, धेय धराधर धीर ॥ २१ ॥

इति वनारमीविनास द्वितीयस्कंध ॥ २४ ॥

वदतिछन्द

बिन्तामणि बिन्मय परम नेम । परिणामी चेतन परमछेम ॥
 बिन्मूरति वेता बिद्विताम । पूष्टामणि बिन्मय चन्द्रभास ॥ २२ ॥
 चारित्रधाम बिद् चमत्कार । धरनातम रूपी चिदाकार ॥
 निर्वाचक निर्मम निराधार । निरजोय निरंजन निराकार ॥ २३ ॥
 निरभोग निराख्य निराहार । नयनरत्ननिवारी निर्विकार ।
 आत्मा अनक्षर अमरजाद । अक्षर अव्यय अक्षय अनाद ॥ २४ ॥

आगत अनुकम्पामय अडोल । अक्षरीणी अनुभूती अडोल ॥
 विश्वंभर विस्मय विश्वेटेक । वज्रभूषण व्रजनायक विवेक ॥ २९ ॥
 छलमंजन छायक छीनमोह । मेधापति अकलेवर अकोह ॥
 अद्रोह अविमह अग अरंक । अद्भुतनिधि करुणापति अवंक ॥ २६ ॥
 सुखराशि दयानिधि शीलपुंज । करुणासमुद्र करुणामपुंज ॥
 वज्रोपम व्यवसायी शिवस्व । निश्चल विमुक्त भुव सुधिर सुख ॥ २७ ॥
 जिननायक जिनकुंजर जिनेश । गुणपुंज गुणाकर मंगलेज ॥
 क्षेमंकर अपद अनन्तपानि । सुखपुंजशील कुलशील स्वानि ॥ २८ ॥
 करुणारसभोगी भवकुठार । कृपिवत् कृशानु दारन तुसार ॥
 कैतवरिपु अकल कलानिधान । धिपणाधिप ध्याता ध्यानवान ॥ २९ ॥

कोश.

छंसाकरोपम छलरहित, छेप्रपाल छेत्रज्ञ ॥

अंतरिक्षवत गगनवत, हुत कर्माकृत यज्ञ ॥ ३० ॥

इति चिन्तामणि नाम तृतीयशतक ॥ ३ ॥

पदरिच्छन्दः

लोकांत लोकप्रभु तुष्टमुद्र । संवर सुखपारी सुखसमुद्र ॥
 शिवस्त्री गूढरूपी गरिष्ठ । भडरूप बोधदायक हरिष्ठ ॥ ३१ ॥
 विद्यापति धीधव विगतवाम । धीर्वत विनायक वीरकाम ॥
 धीरस्व शिलीद्रुम शीलमूल । लीलाविनायक जिन धारदूल ॥ ३२ ॥
 परमारय परमानम पुनीत । त्रिपुरेश तेजनिधि त्रपातीत ॥
 तपराशि तेजकुल तपनिधान । उपयोगी उग्र उदोतवाना ॥ ३३ ॥

उत्पातदरण उदामधाम । मञ्जनाथ विमलर विगतनाम ॥
 यदुस्त्री यदुनामी अक्षोप । विपहरण विहासी विगतदोष ॥ ३४ ॥
 तितिनाथ उमापर उमावान । दुर्गम्य दयार्णव दयामान ॥
 चतुरेश विदातम विदानंद । मुस्तरूप शीलविधि शीलकन्द ॥ ३५ ॥
 रसव्यापक राजा नीनिबंत । कृपिरूप महापिं महमहंत ॥
 परमेश्वर परमकृपि प्रधान । परत्यागी प्रमट प्रतापवान ॥ ३६ ॥
 परतक्षपरममुख करममुद्र । हन्तारि परमगति गुणसमुद्र ॥
 सर्वश सुदर्शन मदाकृष । छंकर सुवासवासी अलिप्त ॥ ३७ ॥
 शिषसम्पुटवागी मुसनिधान । शिषपंथ शुभकर शिखावान ॥
 अलमान अंतपारी अनेष । निर्द्वन्दी निर्जड निरपेक्ष ॥ ३८ ॥

दोहा.

विष्मयधारी वीषमय, विधनाथ विधेता ।
 बंधविमोचन बज्रवन, मुषिनायक विबुधेश ॥ ३९ ॥

इति लोकांग नाम चतुर्थ कण्ठ ॥ ४० ॥

छन्दोदक.

महामंत्र मंगलनिधान महहरन महाजप ।
 मोक्षस्वरूपी मुक्तिनाथ मतिमयन महातप ॥
 निम्नरत्न निम्नर नियमनायक नंदीश्वर ।
 महादत्तनि महज्ञानि महाविस्तार मदाश्वर ॥ ४० ॥
 परिपूर्ण परब्राह्मण कमलस कमलवत ।
 गुणनिकेत कमलासमूह परनील प्यानरत ॥

भूतिवान् भूतेश भारल्लभ मर्म उल्लेदक ।

मिहामननायक निराश निर्भयपदवेदक ॥ ४१ ॥

शिवकारण शिवकरन भविक वंषव भवनाशन ।

नीरिरंश निःसमर सिद्धिशासन शिवभ्रामन ॥

महाकाज महाराज मारजित मारविहङ्गन ।

गुणमय द्रव्यस्वरूप दशापर दारिदसंडन ॥ ४२ ॥

जोगी जोग अतीत जगत उद्धरन उजागर ।

जगतबंधु जिनराज शीलसंचय सुखसागर ॥

महाधूर सुखसदन तरनजारन तमनाशन ।

अगनितनाम अनंतधाम निरमद निरवासन ॥ ४३ ॥

वारिजवत जलजवत पद्म उपमा पंकजवत ।

महाराम महधाम महापक्षवंत महासत ॥

निजकृपालु करुणालु बोधनायक विद्यानिधि ।

प्रक्षमरूप प्रक्षमीश परमजोगीश परमविधि ॥ ४४ ॥

वस्तुम्ह.

सुरसमोगी रसील समुदायकी चाल—

शुभकारनशील इह सील राशि संकट निवारन ।

त्रिगुणातम तपतिहर परमहंसपर पंचवारन ॥

परम पदारथ परमपथ, दुस्समंजन दुरलक्ष ।

तोषी सुखपोषी सुगति, दमी दिगम्बर दक्ष ॥ ४५ ॥

इति महामन्थ नाम पंचमः शतक ॥५॥

तोडक प्रश्न

परमप्रबोध परोक्षरूप, परमादनिफन्दन ।

परमध्यानपर परमसाधु, जगपति जगवंदन ॥

जिन जिनपति जिनमिह, जगतमणि कुपकुलनायक ।

कल्पातीत कुलानरूप, दम्भय दगदायक ॥ ४६ ॥

कारणधर्मरूप, गुणराशि रिपुञ्जय ।

ज्ञानमदन सदाधिरूप, शिवकर शत्रुञ्जय ॥

रूपी प्रसन्न, आत्मप्रमोदमय ।

निजाधीन निर्द्वन्द, ब्रह्मवेदक व्यतीतमय ॥ ४७ ॥

अपुनर्मेव जिनदेव सर्वतोमद्र कलिलहर ।

धर्माकर ध्यानस्व धारणाधिपति धीरधर ॥

त्रिपुरगर्भ त्रिगुणी त्रिकाल कुशलाक्षपादप ।

सुखमन्दिर सुखमय अनन्तलोचन भविषादप ॥ ४८ ॥

लोकप्रवासी त्रिकालसासी करुणाकर ।

गुणआश्रय गुणधाम गिरापति जगतप्रभाकर ॥

धीरज धारी धौतकर्म धर्मग धामेश्वर ।

रजाकर गुणरत्नराशि रजहर रामेश्वर ॥ ४९ ॥

निरलिप्ती निवलिह्वार बहुनुड अनानन ।

गुणकदम्ब गुणरसिक रूपगुण अंजिक पानन ॥

निगंकुश निरधाररूप निजपर परकाशक ॥

विगतामव निरबन्ध बंधहर बंधविनाशक ॥ ५० ॥

केवलव्रत परमधनधारी । हतविभाव हतदोष हँतारी ॥
 भावेकदिवाकर मुनिमृगराज । दयासिंधु भवासिंधु जहाज ॥ ६८ ॥
 शंभु सर्वदर्शी शिवपंथी । निराबाध निःसंग निर्मन्थी ॥
 यती यंत्रदाहृत (!) हितकारी । महामोहवारन बलधारी ॥ ६९ ॥
 चित्तसन्तानी चेतनपंथी । परमाचारी भ्रमविध्वंसी ॥
 मदाचरण स्वशरण शिवगामी । बहुदेही अनन्त परिणामी ॥ ७० ॥
 वितथभूमिदारनहलपानी । भ्रमवारिजवनदहनहिमानी ॥
 चारु चिदहित हन्तातीती । दुर्गरूप दुर्लभ दुर्जानी ॥ ७१ ॥
 शुभकारण शुभकर शुभमंथी । जगतारन ज्योतीश्वर जंत्री ७२

कोटा.

जिनपुत्रव जिनकेहरी, ज्योतिरूप जगदीश ।

मुक्ति मुकुन्द महेश्वर, महदानंद मुनीश ॥ ७३ ॥

इति भीतरमप्रदीप नाव अष्टम काण्ड ॥ ८ ॥

संगलकमहा.

तुष्टि दहन मुक्ताब्ज । हत भीत अनीत अमन्द ॥

शीलजगद्गत कोप । अनमग अनंग अनोष ॥ ७४ ॥

हमगम हतमोह । गुणमय गुणमन्दोह ॥

गुणममात्र मुन मेह । हतमंष्ट विगत मनेह ॥ ७५ ॥

शोभदहन हतशोक । अग्नित वन अमन्त्रोक्त ॥

धृतगुणम हतदोष । सतमू अमूय मोष ॥ ७६ ॥

१ इमं गुणधर्मं त्रिगुणमयं त्रिषु चन्द्रेषु वेत्तुं शक्यं ॥

दिग्बत दत्तसंताप । प्रजप्यापी विगताल्प ॥
 पुण्यस्वरूपी पूत । सुरसमिधु स्वयं मंभूत ॥ ७७ ॥
 समयसारसुनिधार । अविकल्प अवस्थाचार ॥
 शांतिकरन धृतशांति । कनरूप मनोहरकान्ति ॥ ७८ ॥
 सिद्धासनपर आरूढ । असमंजसहरन जमूढ ॥
 लोकजयी हतलोभ । कृतकर्मविजय धूनजोभ ॥ ७९ ॥
 मृत्युंजय अनजोग । अनुकम्प अशंक भमोग ॥
 सुविधिरूप मुमतीश । भीमान् मनीषापीश ॥ ८० ॥
 विदित विगत अवगाह । कृमकारज रूपमथाह ॥
 वर्द्धमान गुणभान । करुणाभरतीन्द्रविधान ॥ ८१ ॥
 अक्षयनिधान जगाध । हतकलिल निहतअपगध ॥
 साधिरूप मापक धनी (!) । महिमा गुणमेरु महामनी (!) ८२
 उत्तपति वैभुस्वान । त्रिपदी त्रिपुत्र त्रिविधान ॥
 जगज्जीत जगदाधार । करुणागृह विपतिविदार ॥ ८३ ॥
 जगमाशी वरवीर । गुणगेह महानंभीर ॥
 अभिर्नन्दन अभिगम । परमेयी परमोदाय ॥ ८४ ॥

दोहा

सगुण विभूती वैमवी, सेमुषीश संबुद्ध ।
 सकल विधकर्मा जमय, विधविश्लेषन शुद्ध ॥ ८५ ॥

इति बुद्धिदत्तनाम जयम दातक ॥ ९ ॥

मंगलकमला.

शिवनायक शिव एव । प्रबन्धेश प्रजापति देव ॥

मुदित महोदय मूल । अनुकम्पा सिंधु अहल ॥ ८६ ॥

नीरोषम गर्तं पंक । नीरीहत निर्गत शंक ॥

नित्य निरामय भौन । नीरन्ध्र निराकुल मौन ॥ ८७ ॥

परम धर्म रथ सारथी (!) । धृत केवल रूप कृतारथी (!) ॥

परम नित्य भंडार । संवरमय संयमधार ॥ ८८ ॥

शुभी सारथगत संन । शुद्धोपन शुद्ध सिद्धंत ॥

नैयायक नय जान । अरिगत अनंत अभिधान ॥ ८९ ॥

कर्मनिर्गमामूल । अधभंजन गुमाद अमूल ॥

अनुन क्लृप्त अशेष । अदगमनिधि अशममभेद ॥ ९० ॥

यत्तुभुज रत्नचंद्र । प्रसाद रमण प्रसंद ॥

वरद बंधु भरनार । महर्दंग महानेवार ॥ ९१ ॥

गलप्रमाद गलनाग । मरनाथ निराय निराग ॥

महाभय महाभ्यामि । महर्दय महागति गतिनि ॥ ९२ ॥

महानाथ महजान । महपावन महानिधान ॥

गुणामाग गुणकाम । गुणमेक मजीर निराम ॥ ९३ ॥

कल्याणक निराम । महर्दोमन महार्गमंग ॥

लोचक हस्तिप्रेज । महर्दोमन महर्दोमन ॥ ९४ ॥

१ व-जग २ महर्दोमन ३ महर्दोमन ४ महर्दोमन ५ व

महाविभु महधववंत । परणीधर परणीकंत ॥
 शृपावंत कलिमाम । कारणमय करत विराम ॥ ९५ ॥
 मायावेलि गयन्द । सम्मोहतिमरहरचन्द ॥
 कुमति निकन्दन काज । दुस्सगजभंजन मृगराज ॥ ९६ ॥
 परमतस्त्वसत संपदा (!) । गुणत्रिकालदर्शसिदा (!) ॥
 कोपदयानननीर । मदनीरदहरणसमीर ॥ ९७ ॥
 भयकांतारकुटार । संशयमृणालभसिधार ॥
 लोभशिसरनिर्पात । विपदानिशिहरणप्रभात ॥ ९८ ॥

दोहा

संवररूपी शिवरमण, भीषति झीलनिकाय ॥
 महादेव मनमधमधन, मुसमय मुस्तसमुदाय ॥ ९९ ॥
 इति भीषिकावट नाम दशम एतक ॥ १० ॥

दोहा.

इति भीसहस्रप्रटोत्तरी, नाम मालिका मूल ।
 अधिक कमर पुनरुक्ति फी, कविप्रसादकी भूल ॥ १०० ॥
 परमपिंड प्रसंझमें, लोकशिसर निवसंत ।
 निरति नृत्य नानारसी, बनारसी नमंत ॥ १०१ ॥
 महिमा अन्नविनामकी, मोपर कही न जाय ।
 यथाशक्ति कलु वरणई, नामकथन गुणगाय ॥ १०२ ॥
 संवत सोलहसो निवे, धावण सुदि आदित्य ।
 करनशय तिथि पंचमी; प्रगठो नाम कविच ॥ १०३ ॥
 इति भाषाजिनसरसनाम ।



ॐ

श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता

सूक्तमुक्तावली

तथा

स्वर्गीय कविर बनारसीदासमीकृत

भाषासूक्तमुक्तावली.

(सिद्धमकर.)

धर्मोपकार ।

कारुण्यविरचित ।

सिन्दूरप्रकरस्तवः करिषितः प्रोदे कथापाटवी-

दाषादिनिश्चयः प्रबोधदिव्यमप्रारम्भस्योदयः ।

मुक्तिस्त्रीकुचकुम्भकुन्दुमरसः धेयस्तरोः पालय-

प्रोहासः कमयोर्नरपुतिभरः पार्श्वप्रभोः पालु यः ॥२॥

वरपर ।

शोभित तपगवराज, भीस मिन्दूर पूरुचि ।

बोधदिव्य आरंभ, करण कारण उदोत रवि ॥

मंगल सरु पल्लव, कथाय कातार हुताशन ।

बहुगुणरत्ननिधान, मुक्तिकमलाक्रमलाशन ॥

इदिविधि अनेक उपमा सहित, अरुण चरण संताप दर ।

जिनराय पार्श्वनक्षत्रज्योति भर, नमत बनारसि जोर कर ॥१॥



ॐ

श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता सूक्तमुक्तावली

तथा

स्वर्गाय कविवर बनारसीदासजीकृत
भाषासूक्तमुक्तावली.

(सिंदूरमकर.)

धर्माधिकार ।

कर्तृलक्षित ।

सिन्दूरमकरलपः करिषिः कोटे कपापाटपी-

दापाचिर्निचयः प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदयः ।

मुक्तिखीकुचकुम्भकुङ्कुमरसः धेयस्तरोः पल्लव-

प्रोत्थासः कमयोनरागुतिमरः पार्थप्रभोः पालु यः ॥ १ ॥

परपर ।

शोभित तपगञ्जराज, सीत सिन्दूर पूरछवि ।

बोधदिवस आरंभ, करण कारण उदोत रवि ॥

मंगल तरु पल्लव, कपाय कांतार हुताशन ।

बहुगुणरत्ननिधान, मुक्तिकमलाकमलाशन ॥

इदिविधि अनेक उपमा सदित, अरज परण संताप हर ।

जिनराय पार्थनसज्ज्योति मर, नमस्त बनारसि जोर कर ॥ १ ॥

शार्दूलविकीर्णित ।

सन्तः सन्तु मम प्रसन्नमनसो वाचां विचारोद्यताः
 सूतेऽम्मः कमलानि तत्परिमलं याता चित्तव्यन्ति ।
 किं धाम्यर्थं नयानया यदि गुणोऽस्त्र्यासां ततस्ते स्वयं
 कर्ताः प्रयत्ने न चेदथ यदाः प्रत्यर्थिना तेन किम्
 दोषकान्तपेसरीऽम् ।

जैसे कमल सरोवर वासे । परिमल तामु पवन परकाशे ।
 त्यों कवि भाषहिं अक्षर जोर । संत मुजस प्रगटहि चहुँओ
 जो गुणवन्त रसाल कवि, तो जग महिमा होय ।
 जो कवि अक्षर गुणरहित, ता आदरे न कोय ॥ २ ॥

इन्द्रवज्रा ।

प्रियर्गमंस्तापनमन्तरेण पशोरियायुर्थिकलं नरम् ।
 तथापि धर्मं प्रवरं यद्वन्ति न तं विना यद्गपतोऽर्थकाम
 दोषकान्तपेसरीऽम् ।

मुपुग्य तीन पदारथ साषट्ठि । धर्म विशेष जान आराधहिं
 धरम प्रधान कहै सब कोय । अर्थ काम धर्महिनें होय ॥
 धर्म कइत मंमारमुग, धर्म कइत निर्धान ।
 धर्मपंथमाधनविना, नर निर्यच ममान ॥ ३ ॥

यः प्राप्य दुष्ट्यापमिदं नरम् धर्मं न यत्नेन करोति मूढः
 हेतुशत्रुवन्धेन न लब्धमर्थां चिन्तामणिं पातयति प्रमादात्

कवित्त माश्रिक. (३१ मात्रा)

जैसे पुरुष कोइ धन कारण, हींडित दीपदीप चइ यान ।
आवत हाथ रतनचिन्तामणि, डारत जलधि ज्ञान पापान ॥
तैसे भ्रमत भ्रमत भवसागर, पावत नर शरीर परधान ।
धर्मयज्ञ नहिं करत 'वनारसि' खोवत बादि जनम अज्ञान ॥
अम्दावाप्ता ।

स्वर्णरूपाळे शिपनि स रजः पारुशोचं विधत्ते
पीयूषेण प्रथरकरिषं पादुपस्यधमारम् ।
चिन्तारसं विकिरति करादायसोद्भापनार्थं
यो दुष्पारं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः ॥ ५ ॥

मतगचन्द. (परेषा)

ज्यो मतिहीन विषेक बिना नर, साबि मतज्जज ईधन होवै ।
कंचन भाजन धूल भरे दठ, मूढ सुधारमसो पगधोवै ॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै ।
त्यो यह दुर्लभ देह 'वनारसि', पाय अज्ञान अकारण खोवै ॥

सांकेतिकीकृत ।

ते धनूरुतदं यपन्ति मयने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमं
चिन्तारसमपात्य काचशकलं स्वीकुर्यते ते जडाः ।
विशेष द्विरदं निर्दिष्टसदृशं प्रीणन्ति ते रासभं
ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा पावन्ति भोगाशया ॥

कवित्त माश्रिक. (३१ मात्रा)

ज्यों जरमूर उस्वारि कल्पतरु, वोवत मूढ़ कर्नकको सेत ।
ज्यों गजराज बेच गिरिवर सम, कूर कुबुद्धि मोल खर लेत ॥
जैसे छांड़ि रतन चिन्तामणि, मूरख काचसंडमन देत ।
तैसे धर्म बिसार 'बनारसि' पावत अधम विषयमुखहेत ॥६॥

शिलरिणी ।

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभयं
न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः ।
मुङ्गपारापारे प्रधरमपहाय प्रयद्दणं
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते ॥ ७ ॥

सोरस ।

ज्यों जल बूढ़त कोय, बाहन तज पाहन गई ।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छांड़ि सेवत विषय ॥ ७ ॥

द्वार गाथा ।

सार्दूलविहीनित ।

मक्ति तीर्थकरे गुरी जिनमते संघे च दिसानृत-
स्नेयाग्रहपरिग्रहव्युपरमं क्रोधाक्षरीणां जयम् ।
मात्रग्न्यं गुणिसङ्गमिन्द्रियदमं दानं तपोभायनां
धैर्यायं च कुर्यात् निर्वृतिपदे यद्यस्मि मनुं मनः ॥८॥

परषद् ।

जिन पूजहु गुरुनमहु, जैनमनर्वन बभानहु ।

सब भक्ति आदरहु, जीव रिमा न बेधानहु ॥

सूठ अदस कुडील, त्याग परिग्रह परमानहु ।

क्रोध मान हल लोभ जीत, मजनना ठानहु ॥

गुणिसस करहु इन्द्रिय दमहु, देहु ज्ञान नव भावजुन ।

गहि मन विराग इतिविधि नरहु, जो जगम सीसनमुकन ॥ ॥

पूजाधिकार ।

पापं लुम्पति पुनर्गति दलयति व्यापादयत्यागर

पुण्यं संचिनुते धियं विननुते पुण्याति तीर्णेगताम् ।

सौभाग्यं विदधाति पल्लययति प्रीति प्रमूने यश

स्वर्गं पश्यति निर्गुनि च स्वयत्यर्चाहिता निर्मिता ॥ १ ॥

३१ भाषा सर्वपा उम्ह ।

लोपि दुरित हरि दुख सकट, आपि गेग गहित नितदेह ।

पुण्य भेदार भै जग प्रगट, मुक्तिन पयमो कर मनेह ॥

रखै सुहाग देय लोभा जग, परभव पैहु नावन नुरगेह ।

गुगति बंध दलमलटि बनारसि; बीतगग पूजा फल येह ॥ १ ॥

स्वर्गलक्ष्य गृहाङ्गणं सदचरी साध्याभ्युदयीः शुभा

सौभाग्यादिगुणायल्लिखितसति स्थिरं वपुर्देहमनि ।

संसारः सुतरः शिष्यं फललक्षणे सुदृश्यज्ञता

यः भयाभयग्राजनं जिनपतेः पूजां विधत्ते जनः १०

ओ जिन गुजग करे जन नाथी, महिमा इन्द्र करे मृगलोच ।
ओ जिन ध्यान करत बनारसि; भ्यावे मुनि नाके गुण जोय ॥ १२ ॥

गुरु अधिकार ।

वसन्तविलास ।

अवधमुने, पथि यः प्रवर्तते प्रवर्तयत्यन्यजन स निष्कृत ।
त सेवितव्यः स्वदिनेष्विणा गुरु स्वय नमन्तामयिनु क्षमः
परम् ॥ १३ ॥

अष्टम छन्द ।

पापपथ पण्डितगह पण्डित शुभवध पण ।
पर उपगार निमित्त बभानहि मोक्षमग ॥
सदा अवलित चित्त जु नाग्न नग्न जग ।
ऐसे गुरको मेवत, भार्गव करम ठग ॥ १३ ॥

मालिनी ।

विदलपति कुपोषं बोधयत्यागमार्थं
सुगतिबुगनिमार्गो पुण्यपापं व्यनक्ति ।
भयगमपति हृत्पाहृत्यभेद गुरयो
भवजलनिधिपोतलं विना नास्ति कश्चित् ॥ १४ ॥

इति तीतिका पद्य ।

निध्यात दलन सिद्धान साधक, मुक्तिमारग जानिये ।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति, पुण्य पाप बसानिये ॥
संसारमागतरनतारन; गुरु जदाव विरोसिये ।
जगमाहि गुरुसम कद बनारसि; और कोठ न देसिये ॥ १४ ॥

सिखरिणी ।

पिता माता आता प्रियसहचरी सूनुनिबद्धः

सुहृत्स्वामी माद्यत्करिमटरथाश्वः परिकटः ।

निमज्जन्तं जन्तुं नरककुहरे रक्षितुमलं

गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरत्कोऽपि न परः ॥ १५ ॥

मत्तगवन्द ।

मात पिता सुत बन्धु सखीजन; मीत हितू सुख कामन पीके ।

सेवक साज मत्तंगज बाज; महादल राज रथी रथनीके ॥

दुर्गति जाय दुखी बिललाय, पंग सिर आय अकेलहि जीके ।

पंथ कुपंथ गुरू ममझावत; और सगे सब स्वारथहीके ॥ १५ ॥

शार्दूलगिरिजीवित ।

किं ध्यानेन भयत्यशेषविषयत्पार्गस्तपोभिः शृतं

पूर्ण भाषनयालमिन्द्रियजयैः पर्याप्तमाप्तागमैः ।

किं त्येकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शास्त्रं

सयै येन विना विनाथबलवत्स्वार्थाय नालं गुणाः ॥

वस्तु छन्द ।

ध्यान धारन ध्यान धारन, विषे मुन्य त्याग ।

करुणारम आदरन, भूमि सैन इन्द्री निरोधन ॥

शन संजम दान तप; भगनि भाव गिद्धंत साधन ॥

ये सब काम न आवही, ज्यां विन नायक सैन ॥

शिवमुन्य हेतु बनारसी; कर प्रतीत गुरुवेन ॥ १६ ॥

जिनमताधिकार ।

नितिरिणी ।

न देयं नादेयं न शुभगुरुमेनं न कुगुरुं
न धर्मं नाधर्मं न शुभपरिणयं न विगुणम् ।
न हृत्यं नाहृत्यं न दितमदितं नापि निपुणं
विलोकास्ते लोका जिनवचनचक्षुर्विपदिताः ॥१७॥

बृंहलिका छन्द ।

देव अदेव नहीं लसै; सुगुरु कुगुरनहिं सस ।
धर्म अधर्म गने नहीं; कर्म अकर्म न सूझ ॥
कर्म अकर्म न सूझ; गुण रु औगुण नहिं जानहिं ।
दित अनदित नहिं सभै; निपुणमूरख नहिं मानहिं ॥
कहत धनारसि शानदष्टि नहिं अंध अवेयहिं ।
जैनवचनदमहीन; लसै नहिं देव अदेवहिं ॥ १७ ॥

छातुंलविशीकित ।

मानुष्यं विकलं वदन्ति हृदयं ध्येयं शृणा धोषयो-
निर्माणं गुणदोषभेदकलनां तेषामसंभाषिणीम् ।
दुर्बारां नरकान्धकूपपतनं मुक्तिः शुभा दुर्लभा
सार्वत्रः समग्रो दयारसमग्रो येषां न कर्णातिथिः ॥

११ मात्रा सदैवा छन्द ।

ताको मनुज जनम सब निष्फल; मन निष्फल निष्फल जुगकान ।
गुण अर दोष विचार भेद विधि; ताहि भदा दुर्लभ है शान ॥

ताको सुगम नरक दुःख संकट; अगमपथ पदवी निर्वाण ।

जिनमतवचन दयारसगर्भित; जे न सुनत सिद्धंतवसान ॥८॥

पीयूषं विषयज्जलं ज्यलनयस्तेजस्तमःसोमय-

न्मित्रं शाश्वदयत्यजं भुजगयधिगतामणिं लोष्टयत् ।

ज्योत्स्नां श्री-यज्ञधर्मयत्स मनुने काट्यपण्यापणं

जैनेन्द्रं मतमन्वर्शनसमं यो दुर्मतिर्मन्वते ॥१९॥

परपर ।

अंगूतको विष कई; नीरको पारक मानहि ।

तेज निमरसम गिनहि, मित्रको अयु रगानहि ॥

पद्ममाल कहि नाम, स्तन पंथर गम तुलहि ।

नरद्विग्न आनन स्वरूप, इहि भान जु भुजहि ॥

कृष्णानिभान अमलानगून; पण्ड वनाग्नि जैनमन ।

परमन समान जो मनभान, सो अज्ञान मूर्ख भवत ॥२०॥

धर्म जागरणाय विषट्पण्युन्नायण्युन्नाय

मित्रे माण्यमुद्विष्टमि कुनये मज्ञानि मिष्टामनिम् ।

देवाण्यं विजयोनि पुन्यनि कृपां मुण्णानि कृपां न व-

नन्त्रिने मजमर्षनि प्रयवनि ज्ञायन्तर्धान कर्ता ॥२०॥

मरदय कम्प ।

सुन चमं विहायो वार्ताविनायो वृषव डण्डनराज ।

निष्कामनन्यः पुनर्वादिदे मदे दया भाव ॥

सुखामदमो, गम विहाये वर विनम्रमममा ।

जो वृद्धे ध्याने बंद वरदे, सो जगमहि उदार ॥२०॥

ताको आय मिलै सुखसंपत्ति, कीरति रहै तिहूँ जग छाय ।
 जिनसों प्रीत बढे ताके घट, दिन दिन धर्मबुद्धि अधिकाय ॥
 छिनछिन ताहि लखै शिवसुन्दर, सुरगसंपदा मिलै सुभाय ।
 धनारसि गुनरास सषकी, जो नर भगति करै मनलाय ॥२१॥
 यद्भक्तेः फलमहंदादिपदवीमुख्यं कृपेः सस्यय-

चक्रिन्ध्रिदशेन्द्रतादि तृणयत्नासङ्गिकं गीयते ।

शक्तिं यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पतेः

संघः सोऽघहरः पुनानु चरणन्यासः सतां मन्दिरम् ॥

जाके भगत मुक्तिपदपावत, इन्द्रादिक पद गिनत न कोय ॥

ज्यों कृपि करत धानफल उपजत, सहज प्यार धाम भुस होय ॥

जाके गुन जस जंपनकारन, सुरगुरु थकित होत मदसोय ।

सो श्रीसंघ पुनीत धनारसि, दुरित हरन विचरन भविष्योय २४

अहिंसा अधिकार ।

फ्रीडाभूः सुकृतस्य दुष्कृतरजःसंहारवात्या भयो-

दन्वन्नौर्घ्यसनाग्निमेघपटली संकेतदूती धियाम् ।

निःश्रेणिछिदिवीकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गला

सर्वेषु प्रियतां कृपेय भवतु क्लेशैरशेषैः परैः ॥ २५ ॥

धनाक्षरी ।

सुकृतकी स्नान इन्द्र पुरीकी नसैनी जान

पापरजसंडनको, पौनरासि पेसिये ।

भवदुखपावकबुझायवेको मेघ माला,

कमला मिलायवेको दूती ज्यों विशेषिये ॥

सांपके बदन जैसे अमृत न उपजत;
 कालकूट साये जैसे जीवन न जानिये ॥
 कलह करत नहि पाइये मुजम जैमै;
 बाइतरसांस रोग नात्र न बलानिये ।
 प्राणी बधमांहि तैसै; धर्मकी निशानी नाहि,
 यार्हीतै बनारसी विवेक मन आनिये ॥ २७ ॥

साहूँलविच्छिदित ।

आयुर्दीर्घतरं वपुर्धरतरं गोत्रं गरीयस्तरं
 धित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामिन्धमुचैस्तरम् ।
 आरोग्यं विगतान्तरं त्रिजगति स्वाध्यन्धमल्पेतरं
 संसाराम्युनिधिं करोति सुतरं चेतः कृपाद्रान्तरम् ॥

३१ मात्रा सबैया छन्द ।

दीरघ आयु नाम कुल उत्तम; गुण संपति आनंद निवास ।
 उन्नति विभव मुगम भवसागर; लीन भवन महिमा परकास ॥
 भुजबलवंत अनंतरूप छवि; रोगरहित नित भोगविलास ॥
 जिनके चित्तदयाड तिन्होके, सब मुस होहि बनारसिदास ॥

सत्यवचन अधिकार ।

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं दैवैः कृताराधनं
 मुक्तैः पथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोदरगस्तम्भनम् ।
 धेयः संयननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनं
 कीर्तैः केलियनं प्रभावमदनं सत्यं वचः पावनम् २९.

रोडक छन्द ।

कुमति कुरीत निवास; प्रीत परतीन निवारन ।

रिद्धसिद्धमुखहरन; विपन दारिद दुस्स कारन ॥

परवंचन उतपत्ति; सहज अपराध कुरुच्छन ।

सो यह मिथ्यावचन; नाहि आदरत विवच्छन ॥३१॥

शार्दूलविभीदिन ।

तस्याग्निर्जलमर्णयः स्यलमपिमिश्रं मुराः किदूराः

कान्तारं नगरं गिरिशृङ्गमहिमाल्यं मृगारिमृगः ।

पातालं विलमस्त्रमुत्पलदलं व्यालः शृगालो विपं

पीयूषं विषमं समं च यचनं सत्याश्रितं घृतिः यः ३२

वनाश्रयी ।

पावकतैं जल होय; बारिषतैं थल होय,

शसतैं कमल होय; ग्राम होय बनतैं ।

कूपतैं विवर होय; पर्वततैं घर होय,

बासवतैं दास होय; हितू दुरजनतैं ॥

सिषतैं कुरंग होय; व्याल सालअंग होय,

विषतैं पीयूष होय; माला अहिफनतैं ।

विषमतैं सम होय; संकट न व्यापै कोय,

एते गुन होय सत्य; बादीके दरसतैं ॥ ३२ ॥

अदत्तादान अधिकार ।

मालिनी ।

तमभिलषति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि-

स्तमभिसरति कीर्तिमुञ्चते तं भवार्तिः ।

मरहटा छन्द ।

जो कीरति गोपहि, घरम विलोपहि, करहि महाअपराध ।
जो शुभगति तोरहि, दुसगति लोरहि, जोरहि युद्ध उपाध ॥
जो संकट आनहि, दुर्गति ठानहि, बधबंवनको गेह ।
सब औगुण मंडित, गहै न पंडित, सो अदत्तधन येह ॥३५॥

हरिणो ।

परजनमनःपीडाकीडापनं यधमायना-

भयनमयनिव्यापिष्यापहृतायनमण्डलम् ।

कुगतिगमने मार्गः स्वर्गापवर्गपुरागलं

नियनमनुपादेयं सोयं नृणां हितकाङ्क्षिणाम् ॥ ३६ ॥

(३३ भाषा) सर्वथा ।

जो परिजन संताप केलियन; जो बध बंध कुबुद्धि निवास ।
जो जग विपतिबेलघनमंडल; जो दुर्गति मारग परकास ॥
जो सुरलोकद्वार दद आगल; जो अपहरण मुक्तिमुखवास ।
सो अदत्तधन तजत साधुजन; निजहितहेत बनारसिदास ३६

शीलाधिकार.

झातूलविकीडित ।

दत्तस्तेन जगत्प्रकीर्तिपटदो गोत्रे मर्षाकूर्चक-

धारित्रम्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानलः ।

संकेतः सकलापदां शिथपुरद्वारे कपाटो ददः

शीलं येन निजं दितुममक्षिलं त्रैलोक्यचिन्तामणिः ३७

प्रथमको अहित अधीरजको बाल हित;

महामोहराजाकी प्रसिद्ध राजधानी है ।

अमको निधान दुग्ध्यानको विडासवन,

विषतको धान अभिमानकी निधानी है ॥

दुरितको मृत रोग शोग उत्पत्ति हैन;

कलहनिकेत दुरगतिको निदानी है ।

ऐसो परिग्रह भोग सवनको त्याग जोग;

आत्म गवेपीलोग याही भांति जानी है ॥ ४३ ॥

बहिस्तृप्यति नेण्यनरिह यथा नाम्मोभिरम्मोनिधि-

स्तच्छहोमघनो घनरपि घनजंजुनं सतुप्यति ।

न त्वेवं मनुते विमुच्य विमयं निःशेषमन्यं भयं

यात्यात्मा तदहं मुर्धय विद्वाम्येनांसि भूयांसि किम् ॥

पदपद ।

ज्यों नहिं अग्नि अधाय, पाय ईधन अनेक विधि ।

ज्यों सरिता पन नीर; नृपति नहिं होय नीरनिधि ।

त्यो असंख्य धन बढत; मूढ संतोष न मानहि ।

पाप करत नहिं ढरत; बध कारन मन आनहि ॥

परतछ बिलोक जम्भन भरन; अधिर रूप संमारक्रम ।

समुझै न आप पर ताप गुन; प्रगट बनारसि मोह अम ॥ ४४ ॥

श्रीवाधिकार.

यो मित्रं मधुनो विकारकरणे संयाससंपादने

सर्पस्य प्रतिविम्बमद्दहने सत्ताचिपः सोदरः ।

वस्तुछन्द ।

कलह मंडन मंडन कम्पन उद्वेग ।

यससंडन हित हरन, दुस्सविलापसंतापसाधन ॥

दुरवैन समुच्चरन, धरम पुण्य मारग विराधन ।

विनय दमन दुरगति गमन, कुमति रमन गुणलोप ।

ये सब लक्षण जान मुनि, तजहि ततअण कोप ॥ ४७ ॥

यो धर्म दहति द्रुमं दय इवोन्मथाति नीतिं लतां

दन्तीयेन्दुकलां विधुंनुद इव ह्निश्राति कीर्तिं नृणाम् ।

स्यार्थं वायुरिवाम्बुदं विघटयत्युल्लासयत्यापदं

तृष्णां धर्मं इवोचितः कृतकपालोपः स कोपः कथम् ॥

पदपद ।

कोप धरम धन दहै, अग्नि जिम विरम्व विनासहि ।

कोप मुजस आवरहि, राहु जिम चद गरसहि ॥

कोप नीति दलमलहि, नाग जिम लता बिहंडहि ।

कोप काज सब हरहि, पवन जिम जलधर संडहि ॥

संचरत कोप दुख ऊषजै, बटै त्रपा जिम धूपमहैं ।

करुणा विलोप गुण गोप जुत, कोप निषेध महत कहैं ॥ ४८ ॥

मानाधिकार.

मन्दाग्रान्ता ।

यस्मादाविर्भवन्ति विततिदुस्तरापन्नदीनां

यसिश्चिष्टाभिरुचितगुणश्रामनाप्रापि नास्ति ।

करिष्या छन्द ।

मान सत्र उचित आचार मंजन करे;
 पवन मचार जिम धन विहंडहि ।
 मान आदर तनय विनय लोपे सद्धल;
 भुजग वि१ भीर जिम मरन मंडहि ॥
 मानके उदित जगमाहिं विनसे सुयम;
 कुपित मातंग जिम कुमुद खंडहि ।
 मानकी रीति विपरीति करतूति जिम;
 अधमकी प्रीति नर नीत छंडहि ॥ ५१ ॥

वमन्ततिलका ।

मुष्णाति यः कृतसमस्तसमीहितार्थं
 संजीवनं विनयर्जावितमद्भुतात्मा ।
 जात्यादिमानविपन्नं विषमं विकारं
 तं मार्दवामृतरसेन नयस्य शान्तिम् ॥ ५२ ॥

(मात्रा १५) चौपाई ।

मान विषम विपत्तन संचरै । विनय विनाश वॉछितहरै ॥
 कौमल गुन अग्रत संजोग । विनसे मान विषम विपरोग ॥ ५२ ॥

मायाधिकार.

मालिनी ।

कुशलजननयन्ध्यां सत्यसूर्यांससंध्यां
 कुगनियुषतिमाल्यां मोदमातङ्गशाल्याम् ।

शमकमलहिमानी दुर्यशोरप्रधानी

व्यसनशतसहायां दूरतो मुष्य मायाम् ॥ ५३ ॥

रोचक छन्द ।

कुशल जननको मौश; सत्य रविहरन सांशधिति ।

कुगति युवति उरमाल; मोह कुंजर निवास छिति ॥

शम घारिज हिमराशि; पाप संताप सहायनि ।

अवश खानि जग जान, सजहु माया दुख दायनि ॥ ५३ ॥

उपेक्षका ।

विधाय मायां विविधैरुपायैः परम्य ये पञ्चनमाचरन्ति ।

ते पञ्चयन्ति त्रिदिषापपङ्गमुत्तान्महामोहसत्ताः स्वमेव ५४

वेशी छन्द ।

मोह मगन माया मति सचहि । कर उपाय ओरनको बंचहि ।

अपनी हानि लखे नहि सोय । मुगति हरि दुर्गति दुख होय ५४

वसत्यविलम् ।

मायामविश्वासविलासमन्दिरं

दुरातायो यः कुरुते धनाशया ।

शोऽनर्थसार्थे न पतन्तमीश्वरे

यथा पिडालो लघुङं पयः पिबन् ॥ ५५ ॥

पद्मरिछन्द ।

माया अविश्राम विलास गेह । जो करहि मूढ जन धन सनेह ।

सो कुगति बंध नहि लखे एम । सजगयविलयव पय पियतजेम ५५

धमन्ततिलका ।

मुग्धप्रतारणपयथणमुञ्चिहीते

यत्पाटयं कपटलम्पटचित्तवृत्तेः ।

जीर्यत्युपप्लवमचक्षमिद्वाप्यकृत्वा

नाप्यभोजनमियामयमायतौ तत् ॥ ५६ ॥

अमानक छन्द ।

ज्यों रोगी कर कुपथ; बढ़ावे रोग तन ।

स्वादलंपटी मयो; कहै मुझ जनम धन ॥

त्यों कपटी कर कपट; मुग्धको धन हरहि ।

करहि कुगतिको बंध; हरण मनमें धरहि ॥ ५६ ॥

लोभाधिकार.

पार्श्वलुविस्तीर्णित ।

यद्गुणामदयीमदन्ति विकटं कामन्ति देशान्तरं

गाहन्ते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां शूर्पं कुप्यते ।

नेयन्ते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरं

संपन्ति प्रधनं धनान्वितधियस्त्वोमघिसूजितम् ५७

मनहरण ।

सहै धोर मंकट समुद्रकी तरंगनिमें;

कपे चितमीन पंथ; गाहै बीच वनमें ।

टाँन कृपिकर्म जाँम; शर्मकी न लेश कहुं;

संकलेशरूप होय; जूझ मरै रनमें ॥

सर्वं निज धामको विराजि परदेस भावै;
मेवै प्रभु कृपणमत्सीन रहै मनमै ।
होने धन काज अनारज मनुज मूढ,
ऐसी परतूति करै; लोभकी लगनमें ॥ ५३ ॥

मूलं मोहविषद्रुमस्य गुरुताम्भोपादिकुम्भोज्ञयः
प्रोषासेररणिः प्रतापतरणिमण्डारने तोयदः ।
प्रीडासद्यकलेक्षिणेकदाशिनः स्वर्मानुरागधरी-
सिन्धुः कीर्तिलताकलापकन्दमो लोभः पराभूयताम् ५८
पूरन प्रताप रवि, रोकवेको पाराधर;
गुरुति समुद्र मोसवेको कुम्भनेंदहै ।
कोप दब पावक जननको भरणि शरु,
मोह विष भूहको; महा दृढ कंद है ॥
परम विषेक निशिमणि प्राप्तवेको राहु;
कीरति कला फलाप; दलन गर्वद है ।
फलहको केलिभौन आपदा नदीको सिंधु;
ऐसी लोभ बाहूको विपाक दुस ब्रंद है ॥ ५८ ॥

धनस्तिलकः ।

निःशेषधर्मधनदाद्विज्रम्भमाणे
दुःशीघ्रमस्मिन्नि विसर्पेक्षीर्तिभूमे ।
षाट् धनेश्वनसमागमदीप्यमाने
लोभानले बालमर्ता लभते गुणोपः ॥ ५९ ॥

परम धर्म वन दहै; दुरित अंवर गति धारहि ।
 कुयश धूम उदगै; भूरि भय भस्म विधारहि ॥
 दुम फलंग कुंकरै; तरल वृष्णा कल कादहि ।
 धन ईधन आगम; मँजोग दिन दिन अति पादहि ॥
 लहलह लोभ पावक प्रबल; पवन मोह उद्धत पदै ।
 दासहि उदारता आदि बहु; गुण पनंग कैवरा कदै ॥१॥

साधुंनविशीलिन ।

जानः कल्पनरुः पुरः गुरुगर्वा मेगां प्रपिष्टा गृहं
 धिक्काग्लमुपस्थितं करनलं प्रामो निधिः तंनिधिम् ।
 विभं पदपमपदपमेव तुलभाः स्वगांनयनंभिषो
 ने गंमोगमशोपशोपदहनप्यंगाम्पुदं विभनं ॥ ३० ॥

(३१ मात्रा) गर्वा ।

विश्वे कामधेनु नाके पर; गूर कल्पवृक्ष गुणशेष ।
 भगव भेडा मँ निनामणि, निनको गुरुम गुरुग आ मोप ।
 ने नर भयन को त्रिभुवनको, निनगो त्रिगुण रंते दुम दोप ।
 गँ निधान गदा नाके दिग, तिनके हृदय भगन गंनोप ॥३०॥

सज्जनानिहार.

निर्वासी ।

४१ शिव. गानि कृतिनरजिना पञ्चपुद्गे
 ४२ सप्ताश्वतो अश्वत्थमपुद्गे विरचितः ।
 ४३ प्रामप्रामः नगरि अदालतविरिदिनो
 ४४ अन्ध कीर्तन नरनि विपरी नय विदुता ॥३१॥

(११ मात्रा) चांपादं ।

परु अहियदन हृत्प निज डारहि । अगनि कुंडमै तनपर जारहि
दारहि उदर करहि बिष भक्षण । पै दुष्टता न गहहि विचक्षण ६१

वसन्तगिरिका ।

सौजन्यमेव विदधाति पदाक्षयं च

व्यधेषसं च विमयं च भवक्षयं च ।

सौजन्यमापदभि यत्कुम्भते तदर्थम्

धाम्येऽनतं क्षिपसि तज्जलसेकसाध्ये ॥ ६२ ॥

मत्तगवन्द (सर्वथा) ।

ज्यो कृपिकार भयो चित्तयातुल; सो कृपिकी करनी इम ठाने ।

बीज र्वे न कर जल सिचन; पावकसो कलको थल भाने ॥

स्यो कुमती निज स्वारथके हित; दुर्जनभाष हिये माहि आने ।

संपति कारन बंध विदारन; सज्जनता सुखमूल न जाने ॥ ६२ ॥

कृष्णी ।

परं विमयवन्धयता सुजनमायमाजां नृणा-

मसाधुचरितार्जिता न पुनरुर्जिताः संपदः ।

एतान्यपि शोभते सदजमायतां सुन्दरं

विपाकविरस्ता न तु भव्यधुसंमया रम्यता ॥ ६३ ॥

अमानक छन्द ।

पर दरिद्रता होय; करत सज्जन कला ।

दुराचारसो मिलै; राज सो नहि भला ॥

ज्यो शरीर कृश सहज; सुशोभा देत है ।

मूत्र धूलता बढ़; मरनको हेत है ॥ ६३ ॥

शास्त्रैर्विधीयते ।

न घ्ने परदूषणं परगुणं यक्षत्यलमप्यन्यदं

संतोषं यद्वदे परदिषु परायाषामु धत्ते शुचम् ।

स्वस्वाद्यां न करोति मोक्षानि नयं नान्यित्यनुसङ्ग-
युक्तोऽप्यप्रियमक्षमां न स्वयस्येनचरित्रं सताम् ॥१४॥

पश्यद् ।

नहि जैवै पर दोष; अल्प परगुण बहु मानहि ।

हृदय धैर मनोप; दीन नमि करुणा टानहि ॥

उचिन रीत आदरहि; भिषज नय नीति न छंडहि ।

निज मरहज पण्डितहि; राम रनि रिषय विदंडहि ॥

मडहि न कोप दुर वचन गुन; सहज मधुर धुनि सगदि ।

कदि कपरपाल जग जाल बमि; ये चरित्र मज्जन करिहा ॥१५॥

गुणिर्गंगाविकारः ।

धर्म धम्मदयो यदाधगुननयो विभं प्रमत्तः पुमा-

न्कार्यं निप्रतिमत्तयः शमर्मेः शम्भोऽल्पमेव धुनम ।

वक्तव्योऽमत्योयनशममना ध्यानं च वाग्दण्ड्याः

यः सत्तं गुणिनां विमुच्य विमतिः कदवाणमाकाङ्क्षति ॥

मज्जनपद (मर्षा) ।

मो कृपादिनि धर्म शिवात्त, नैज विना नमिरेहो उमादे ।

मो दुर्नीति धैर वज हेतु, मुधी विन आगमको भवगदे ॥

मो हिदशून्य वदित्त बरै गमना विन सो तपमो सन दाह ।
मो धिरता विन ध्यान धरै शठ; जो मन सग सजै दिन चाह ६५

इति श्री ।

हरति कुमति भिन्ते मोहं करोति विवेकितां
पितरति रति गूने नीतिं सन्नोति विनीतनाम् ।
प्रपद्यति वशो धने धर्मं व्यपोदति दुर्गतिं
जनयति मृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तमसंगमः ॥ ६६ ॥

अनाक्षरी ।

कुमति निहंद होय मदा मोह मंद होय;
अगमगे गुमरा विवेक जये दियेसों ।
नीतिको दिदाय होय विनेको बदाय होय;
उपजै उठाह ज्यो प्रधान पद लियेसों ॥
धर्मको प्रकाश होय दुर्गतिको नाश होय;
बर्जन गमाधि ज्यो विरूप रस लियेसों ।
तोष परि पूर होय, दोष दष्टि दूर होय,
एते गुन होहि सत; संगतके कियेसों ॥ ६६ ॥

आर्तुलक्षिणीकृत ।

लभ्युं बुद्धिकलापमापदमपाकमुं विदुर्नु पथि
प्राप्तुं धर्म्मनिमग्नपुतां विधुषितुं धर्मं समासेयितुम् ।
रोदुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्णोपपगंधियं
धेत्तुं चित्त समीक्षसे गुणयतां राक्षं तदङ्गीकुर्व ॥ ६७ ॥

कुंडलिषा ।

‘कौरा’ ते मारग गहै, जे गुनिजनसेवंत ।
 ज्ञानकला तिनके जगै, ते पावहिं भव अंत ॥
 ते पावहिं भव अंत, शांत रस ते नित धारहिं ।
 ते अप आपर हरहिं, परमकीरति विहारहिं ॥
 होति सहज जे पुरुष, गुनी बारिजके भौरा ।
 ते गुर संपनि लहै, गहै ते मारग ‘कौरा’ ॥ ६७ ॥

दाहिणी ।

दिमति महिमाम्भोजे गण्डानितरपुदयाम्पुरे
 शिखरि दयारामे क्षेमशामाधुनि पद्मति ।
 समिपनि कुमार्यणी कन्दस्थनीतिरत्नागु यः
 किमभिलषतां भयः भयान्न निर्गुणिसंगमः ॥ ६८ ॥

पदार्थ ।

ओ महिमा गुन हनदि, सुदिन तिम बारिज बारिदि ।
 ओ मनाग सहरदि, पवन तिम मेघ विहारदि ॥
 ओ मम त्वम कन्दमलदि, दूरद तिम उपवन भंडदि ।
 ओ गुह्यम लय करदि, वज्र तिम शिखर सिद्धदि ॥
 ओ कुमनि अमि द्वयनमगिग, कन्दमलता हृद मूत्र त्रग ।
 ओ दुर्दम्यम कृष्ण गुण कर, लज्जति निचक्षणता मुग्धग ॥ ६८ ॥

इन्द्रियाधिकार ।

कार्त्तिकीरिण ।

मागमात्रं कुपमेव शिखरिणिर्भुं गः शृङ्गलाभ्यामने
 कृष्णकृष्णारिणेऽर्द्धीरिणहर्षो यः कृष्णगर्भांगने ।

पः पुण्यद्रुमगण्डरागण्डनविर्धी स्फूर्जत्कुठारायते
तं गुणमतमुदमिन्द्रियगणं जित्वा शुभं पुर्भव ॥ ६९ ॥
इति तीतिका ।

ओ जगत जनको कुपेय डारहि, बक शिशित सुरगसे ।
ओ दरहि परम विवेक जीवन, काल दारुण उरगसे ॥
ओ पुण्यद्रुमकुठार तीसन, गुपति मत मुद्रा करें ।
त करन मुभट महार भविजन, सब सुमारग पग धरें ॥ ६९ ॥
मिलतिनी ।

प्रतिष्ठां पक्षिष्ठां जयति नयनिष्ठां विषट्प-
त्यहस्येष्वापत्ते मतिमतपसि प्रेम तनुते ।
विषेकस्योत्सेकं पिदलयति दत्ते च विपद्
पदं तद्दोषाणां कारणनिकुदम्बं कुद यशे ॥ ७० ॥

बनाहरी ।

ये ही हैं कुगठिके निशानी दुख दोष दानी;
इनहीकी संगतसों संग भार बहिये ।
इनकी मगनतासों विभोको विनाश होय,
इनहीकी भीतसों अनीत पन्थ गहिये ॥
ये ही तपभावकों निडारै दुराचार धारै,
इनहीकी तपत विवेक भूमि दहिये ।
ये ही इन्द्री सुभट इनहि जीतै सोई साधु,
इनको मिलापी सो तो महापापी कहिये ॥ ७० ॥

शार्ङ्गलुचिक्रीडित ।

घत्तां मौनमगारमुज्झनु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता-
मस्यन्तर्गणमागमथममुपादत्तां तपस्तप्यताम् ।

धेयः पुञ्जनि कुञ्जमञ्जनमहायातं न चेदिन्द्रिय-
घातं जेतुमर्हति मस्मनि द्रुतं जानीत सर्वं ततः ७१

मौनके धैर्या गृह त्यागके करैया विधि,
रीतके सभैया पर निन्दासों अपठे हैं ।

विद्याके अभ्यासी गिरिकंदराके वासी शुचि;
अंगके अचारी हितकारी बैन छूटे हैं ॥

आगमके पाठी मन लाय महा काठी भारी ;
फट्टके सहनदार रामाहुसों रूठे हैं ॥

इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते;
इन्द्रिनके जीते विना सरवंग सृष्टे हैं ॥ ७१ ॥

धर्मध्वंसधुरीणमध्रमरसायारीणमापत्प्रथा-
लद्रूर्माणमशर्मनिर्मितिकलापारीणमेकान्ततः ।

सर्वाभ्रीनमनात्मनीनमनयात्पन्नीनमिष्टे यथा-
कार्मीनं कुर्यात्पन्नीनमजयप्रक्षीयमशेममाक् ॥ ७२ ॥

धर्मतरुमंजनको महा मत्त कुंजरमे;
आपदा मंदारके भरनको करोरी हैं ।

सत्यशील रोकवेको पौड़ परदार जैसे;
 दुर्गतिके मारय चलायवेको धोरी है ॥
 कुमतिके अधिकारी कुनैपथके विहारी;
 मदभाय ईधन अरायवेको होरी है ।
 मृषाके सदाई दुरभावनाके भाई ऐसे;
 विषयाभिलाषी जीव अपने अधोरी हैं ॥ ७२ ॥

कमलाधिकार ।

निघ्नं गच्छति निघ्नगेव नितरां निघ्नेव विष्कम्भते
 धृतम्यं मदिरेष पुष्यति मरं धूम्येव धसेऽग्न्यताम् ।
 चापल्यं चपलेष पुष्यति दधन्यालेष सुष्णां नय-
 त्युल्लासं कुलटाहनेव कमला स्वयं परिधाम्यति ॥ ७३ ॥

मन्त्रावम् ।

नीचकी ओर टरे सरिता जिम, धूम बढ़ावत नींदकी नाई ।
 चंबलता प्रपटे चपला जिम, अंध करै जिम धूमकी साई ॥
 सेज करै तिसना दध ज्यों मद; ज्यों मद पोषित मूढके ताई ।
 ये करतूति करै कमला जग; डोलत ज्यों कुलटा बिन साई ॥
 दायाराः स्पृहयन्ति तरुकरगणा मुष्णन्ति भूमीमुजो
 गृह्णन्ति षडलमाकलम्य दुनमुग्मस्मीकरोति क्षणात् ।
 भग्मः ग्रापयते शितौ विनिद्रितं यस्त दारुते दटा-
 दुर्धृतास्तनया नयन्ति निधनं धिग्वह्नीनं धनम् ७४

बंधु विरोध करै निश्चयासर; दंडनको नैरवे छल जोवै ।
 पावक दाहव नीर बहावत, द्वे दृगभोट निशाचर दोवै ॥
 मूल रक्षित जप्त हरे करके दुरग्रहि कुसंतति खोवै ।
 ये उतपात उठै धनके दिग; दामधनी कहु क्यों मुस सोवै ७३
 नीचस्यापि चिरं घटूनि रचयन्त्यायास्ति नीचैर्नति
 शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युपैर्गुणोत्कीर्तनम् ।
 निर्धेयं न विदन्ति किंचिद्वृत्तशस्यापि सेयाक्रमे
 कष्टं किं न मनसिधनोऽपि मनुजाः कुर्वन्ति विचारिणः ॥

बनासरी ।

नीच धनवंत साहि निरस असीस देय;
 यह न विलोके यह चरन गहत है ।
 यह अहृतज नर यह अश्रुताको घर;
 यह मद लीन यह दीनता कहत है ।
 यह बित कोप टाने यह बाधो मनु माने;
 कोरे कुवचन राख यह पै सहत है ।
 बेगी गति धार न निचारे कतु गुण दोष;
 अरथामिदानी जीव अरथ चहन है ॥ ७५ ॥

कः प्रीतिः शरीरेण जीवमर्जयत्ययः सत्त्वादिषाम्मोर्तिर्नी-
 र्जमर्गोदित्वा कष्टदुःखमप्यन्यथा न जानि धनं परम् ।

धैतन्यं विरसं निधेरिष नृचामुज्जासयत्यजसा

धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्मात्रं तदस्याः फलम् ७६

नीचहीकी ओरको उमंग चले कमला सो;

पिता मिथु सखिलस्वभाव यादि दियो है ।

रहै न सुधिर है सकंठक धरन याको;

बसी कंजमाहि कंजकैसो पद कियो है ॥

जाको मिलै हितसों अचेत कर डारै ताहि;

विपकी पहन ताहै विपकैसो हियो है ।

ऐसी ठगहारी जिन धरमके पंथदारी;

करकै सुकृति तिन याको फल लियो है ॥७६॥

दानाधिकार.

धारित्रं विनुते तनोति विनयं क्षानं नयत्युन्नति

पुण्णाति प्रशमं तपः प्रचलयत्युत्तासयस्यागमम् ।

पुण्यं काम्दलयत्यर्थं दलयति स्वर्गं ददाति धामा-

धिर्योषधियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रे धनम् ७७

११ मात्रा सर्वेषां छंदः ।

धरन असंख्य ज्ञान अति उज्जल; विनय विवेक प्रथम अमलान ।

अनप सुभाव सुकृति गुन संचय, उच्च अमरपद बंध विधाना ।

आगमगम्य रम्य तपकी रुचि; उद्धत सुकृति पंथ सोपान ।

ये गुण प्रपट होय तिनके घट; जे नर देखि सुपछाहि दान ७७

दारिद्र्यं न तमीक्षते न मज्जते दौर्भाग्यमालम्बते
 नाकीर्तिर्न परामयोऽभिलषते न व्याधिराह्वन्दति
 दैन्यं नाद्रियते दुनोति न दहः क्लिश्नन्ति नैवापदः
 पात्रे यो वितरत्यनर्थदलनं दानं निदानं धियाम् ॥

परपद ।

सो दरिद्र बल मन्त्रहि; ताहि दुर्भाग्य न मंजहि ।
 सो न लट्टे अपमान; सु सो विपदा भयभंजहि ॥
 तिहि न कोइ दुरा देहि, सामु सन व्याधि न मद्दुर ।
 ताहि कुपता परहरहि, सुमुख दीनता न कद्दुर ॥
 मो लहहि उचपदजगत महँ, अप अनरय नामहि सर
 कहे कुँवरपाल सो धन्य नर, जो गुमेत सोवै दरय ॥७॥

सत्कर्माः कामयने प्रतिगृह्ययने कीर्तिस्तमालोकते
 प्रीतिधुम्यति मेयने सुमगता नीरोगतादिहृति ।
 भयःसंदर्शनिरभ्युपेति दृष्टुने स्वर्गोपमोगम्यति-
 मुक्तिर्वाञ्छति यः प्रयच्छति पुमान्पुण्यपापंमर्थ निज
 वनाक्षरी ।

ताहिहो सुबुद्धि परे रया माही पाद करे,
 बंजन मरुण हो गुपज ताहि चारये ।
 सहज मुदाग पावे गुग्गु गमीन आये,
 बार बार मुकनि रमनि माहि आये ॥
 नहिहो शरीरहो अधिमनि अगेमनाई,
 मंगल को निनाई मीन को पाये ।

जोई नर हो सुचेत विष्ट समता ममेत,
धरमके हेतको सुमेत धन गरब ॥ ७० ॥

मन्दाशयता ।

तज्ज्यासघा रनिरनुचरी कीर्तिदण्डकण्टिता धीः
जिग्धा बुद्धिः परिचयपरा यक्रयनिष्ठक्रुद्धिः ।
पाषा घाता त्रिदिवकमाला कामुकी मुक्तिमंगल
समशोष्यो यपति विपुलं विजयीजं निजं यः ॥ ८० ॥
वक्रावली ।

हाकी रति कीर्ति दामी सम, गहना गजगिद्धि या आवे ।
गुमति गुना उपवे ताके घट, गो गुरलोक मपरा पावे ॥
हाकी दृष्टि लभे तिव गारग, गो निरबंध भावना भावे ।
जो नर त्याग कपट कुंवरा कट, विविगो सममेत धन बावे ॥ ८० ॥

तपसभावाधिकार ।

कारुण्यविधीन ।

पाशूपाञ्जितकामंदौलबुद्धिदो यत्कामदायातल-
व्यालाज्जातजलं यदुमकरणाग्रामादिमन्त्राशम् ॥
पाशूपाञ्जितमःसमुद्दिष्टं यद्विधायकमीलना-
गुणं तद्विविधं यथाविधि तपः कुर्यात् दीनगृहः ॥ ८१ ॥
वाचर ।

जो पूरक हन बर्म, विष्ट गिरदलम बजधर ।
जो मनमथ दब उदाह, मान सौग हरन मेधर ॥

जो प्रनड इंद्रिय भुजंग, यंभन मुमंत्र वर ।

जो विभाव सनम मुपुत्र, संडन प्रमान कर ॥

जो लब्धि बेल उपजंत घट, तामु मूल दृढता महित ।

सो सुतप अंग बहुविधि दुविधि, करहि विबुधिबंधारहित ८१

यस्माद्विप्रपरम्परा विघटने दाम्ब्य सुराः कुर्वन्ते

कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याणमुत्सर्पति ।

उन्मीलन्ति महर्क्षयः कलयन्ति ध्वंसं च यः कर्मणां

स्याधीनं त्रिदिवं क्षिप्यं च भवति रक्षाण्यं तपस्तप्त्र किम्

यनाशरी ।

जाके आदग्त महा रिद्धिमो मिलाप होय,

मदन अब्याप होय कर्म बन दाहिये ।

विघन विनास होय गीरबाण दास होय,

ज्ञानको प्रकाश होय भो समुद्र आहिये ॥

देवपद खेल होय मंगलसो मेल होय,

इन्द्रिनिकी जेल होय मोषपंथ गाहिये ।

जाकी ऐसी महिमा प्रघट कहै कौरपाल,

तिहुंलोक तिहुंकाल सो तप सराहिये ॥८२॥

कान्तारं न यद्येतरो ज्वलयितुं दक्षो दयाम्नि विना

दावाम्नि न यथापरः शमयितुं शक्नो विनाम्मोधरम् ।

निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाम्मोधरं

कर्मौघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा ॥८३॥

अक्षयपद् ।

जो घर कानन दाहनको दब; पावकमो नहि दूमरो दीते ।
जो दबजाय पुष्टै न ततक्षण; जो न अमंडित मेय बरीमे ॥
जो धपटे नहि जोल्य मारन; सोल्य पोर पटा नहि मीमे ॥
त्यो पटमे सपवसाविना दह; कर्मकुम्भाचल और न सीमे ॥८३॥

छावरा ।

संतोषरूपलसूल; प्रशमपरिकरहकम्पधमप्रपञ्चः
पञ्चाक्षीरोधशावः सुखरूपमपदलः शीलनंपराप्रवाहः ।
प्रदाम्मः पुररोकाठिपुल्लकुलवर्द्धिभ्यर्चसाग्व्यमोगः
रूपगादिमातिपुण्यः शिवपदपातलः ग्यात्तपःबोध्यपूरः ॥

पापद ।

सुदह गून संतोष; प्रशम गुन प्रपल पेह धुव ।
पंचाचार सु शास्त्र; शील नंपति मवाज दुव ॥
अमय अंग दलपुञ्ज; देवपद पदुप गुमेदित ।
गुरुतभाव विभार; भार शिव सुपल अमंडित ॥
परनीन चार जल सिंच किय; अनि उनेग दिन दिन पुपिन ।
जयबंत जगत यह गुतपतर, गुनि निहेग सेबहि गुमित ॥ ८४ ॥

भावनाधिकार ।

सार्जुनकिरीटित ।

नीरामो तटणीकटाशितमिच त्यागव्यपेतममोः
रोषाचलमिषोपरोपणमिवाग्मो जग्यवामदमनि ।

विष्यग्वरंमिवोपरक्षितितले दानार्हदर्शनपः-

स्याप्यायाच्ययनादि निष्फलमनुष्ठानं विना भावनाया

पञ्चाङ्गी छन्द ।

ज्यो नीराग पुरुषके सनमुस्त; पुरकामिनि कटाक्ष कर छी ।

ज्यो धन त्यागरहित प्रमुसेयन; ऊसरमें बरपा जिम दूरी ॥

ज्यो झिलमाहि कमलको बोजन; पवन पकर जिम बांधिये नूत ।

ये करतूति होय जिम निष्फल; त्यों विनभावक्रिया सब दूरी ८५

सर्वे क्षीप्सति पुण्यमीप्सति दयां धित्सत्यर्थं भित्सति

क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति ।

कल्याणोपचयं चिकीर्षन्ति भयान्मोघेस्तटं लिप्सते

मुक्तिर्लो परि लिप्सते यदि जनस्तद्भाषयेद्भावनाम् ८६

धनाद्वरी ।

पूरव करम दहै; सरबहु पद लहै;

गहै पुण्यपंध फिर पापमै न आवना ।

करनाकी कला जागै कठिन कषाय भागै;

लागै दानशील तप सफल सुहावना ॥

पावै भवसिंधु तट सोलै मोक्षद्वार पट;

शर्म साध धर्मकी धरामै करै भावना ।

एते सब काव करै अलस्तको अंगधरै;

चेरी चिदानंदकी अकेली एक भावना ॥ ८६ ॥

शृण्वी ।

विषेकपनसारिणीं प्रदामदामसंजीवनीं

मधार्णवमहातरीं मदनदायमेघायलीम् ।

छत्वारशमृगपाशुरां गुरुकषायशलाशनि

विमुक्तिपथयेवरीं मज्जन भावनां किं परः ॥ ८७ ॥

मदमके पोषवेको जमरुकी धारासम;

शानवन सींचवेको नदी नीरभरी है ।

चंचल करण मृग बांधवेको दागुरामी;

कामदाधानल नासवेको मेघ हारी है ॥

प्रबल कषायगिरि भंजवेको बज्र गदा,

भो समुद्र तारवेको पौदी मदा तरी है ।

मोक्षपन्थ गाढ़वेको वेदारी बिल्ववल्ली,

ऐसी शुद्ध भावना अलंङ्घ्य पार दरी है ॥ ८७ ॥

शिलारिणी ।

घनं दलं विलं जिनघनमभ्यस्तमभिलं

चिपाकाण्डं धण्डं रचितमघनं तुलमलहम् ।

तपस्वीयं तमं चरणमपि धीर्लं विरतरं

न धेयिते भावस्तुल्यपनघातव्यमकालम् ॥ ८८ ॥

अभावक छन्द ।

गद पुनीत आधार, जिनायम ओवना ।

वर तप मंजम दान, गुमि का सोचना ॥

बनाक्षरी छन्द ।

जाकों भोग भाव दीसैं करे नागकेमे फन,
 राजको समाज दीसैं जैसो रजकोप है ।
 जाको परवारको बढाव घेरावंध सुअ,
 विषे सुख सौंजकों विचारै विषोप है ॥
 लसैं यों विमूति ज्यों मसमिको विमूति फदै,
 बनता विलासमें विलोकैं दृढ दोष है ।
 ऐसो जान त्यागै यह महिमा विरागताकी,
 ताहीको बैराग सही ताके दिग मोप है ॥ ९२ ॥

इति २२ अधिधर समाप्तम्

अथ उपदेश गाथा ।

वपेन्द्रवज्रा ।

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः सत्यानुकम्पा शुभपात्रदानम् ।
 गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य नृजन्मशूलस्य फलान्धमूनि ९३
 मत्तगयम् ।

कै परमेश्वरकी अरचा विधि, सो गुरुकी उपसर्पन फीजे ।
 दीन विलोक दया धरिये चित, प्रासुक दान सुपसहि दीजे ॥
 गाहक हो गुनको गहिये, रुचिसों जिन आगमको रस पीजे ।
 ये करनी करिये ग्रहमें बस, यो जगमें नरभोफल लीजे ॥ ९३ ॥

जित्तरिणी ।

प्रिसंभ्यं देवार्चा विरचय च यं प्रापय यशः

श्रियः पात्रे यार्प ज्ञय नयमार्गं नय मनः ।

स्वरक्षोधाघारीन्दन्य कन्य प्राणिषु दयां

जिनोकं सिद्धान्तं गृणु वृणु जयान्मुक्तिफलदाम् ॥

हरिणीनाम् ॥

जो करे साध विघात सुमरण, आस जगयस विस्तरे ।

जो सुने परमानर्हि मुरचिसो, नीत मारग पग धरे ॥

जो निरख दीन दया ममुंवे, कामक्षोधादिक हरे ।

जो सुधन सप्त मुसेत स्वरचे, साहि शिवसंपति बरे ॥ ९४ ॥

सातुलविनीदिन ।

हृत्पार्श्वेऽप्युपजनें यतिजनं नत्वा विदित्वागमं

दित्वा सहस्रधर्मकर्मदधिपान् पात्रेषु दत्त्वा धनम् ।

नत्वा पञ्चनिमुत्तमकमत्तुषां जिघ्र्यान्तरारिमज्जं

स्मृत्या पञ्चनमस्त्रिकां कुट्ट करकोडस्थमिष्टं सुराम् ॥

बन्धु ॥

देव पुजहि देव पूजहि, रचहि गुरु सेव ।

परमागमरुचि परहि, तजहि दुष्टसंगत नतक्षण ।

गुणि संगति भादरहि, करहि त्याग दुर्भक्ष भक्षण ॥

देहि सुपात्रहि दान निन, जेई पंचनवकार ।

ये करनी जे आचरहि, ते पावै भवपार ॥ ९५ ॥

हरिणी ।

अस्तरति यथा कीर्तिर्दिष्टु श्लाघारसोदया-

भ्युदयजननी याति स्फूर्तिर्यथा गुणसन्ततिः ।

कलयति यथा वृद्धि धर्मः कुकर्मदतिक्षमः

कुशलगुलमे न्याप्ये कार्ये तथा पथि वर्तनम् ॥ ९६ ॥

दोहा छन्द ।

गुन जरु धर्म मुधिर रहै, यज्ञ प्रताप गंभीर ।
कुशल वृक्ष जिम लह लहै, तिहिं मारग चल बीर ॥९६॥

शित्तरिणी ।

करे स्थाप्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणमनं
मुखे सत्या वाणी श्रुतमभिगतं च अथवायोः ।
इदि स्वच्छा वृत्तिर्यिज्यवि भुजयोः पीरुगमहो
विनाय्येभ्येण प्ररुनिमहतां मण्डनमिदम् ॥ ९७ ॥

कविचन्द्र ।

बंदन विनय मुकट सिर ऊपर, मुगुरुवचन कुंडल जुगछान ।
अंतर शशुविजय भुजमंडन, मुकनमाल उर गुन अमनान ॥
त्याग महज कर कटक विराजत, शोभित मत्प वचन मुख पान ।
मृगण तजहि नऊ तन मंडित, याँ मन्तपुरुष परधान ॥ ९७ ॥
मैवारण्यं मुकथा यदि जिगमिषुमुंतिनगरं
तदानीं मा कार्णाविगपयिष्यदृक्षेपु यम तिम ।

वनदछावायेनां प्रचयति महामोहं
दयं जगुपंमगापदमपि न
मोह नीचे निम्ने नीच कीलोरे मो विन्दे दुमिने

महं जे मुवन तीन गु
मेवा माये गुरुही च विदेमो का जोरें ।

विद्याको वितानधरे परतिष मंग हरे,
 दुर्जनकी संगतिमो बैठे मुस मोरकै ॥
 सत्रे सोफनिन्ध काज पूजे देव त्रिनाराज,
 कौं जे करम धिर उमंग सहोरकै ।
 तेहं जीव मुसी होय तेहं मोस मुगी होय,
 तेहं होदि परम करम फन्द तोरकै ॥ १ ॥
 वरनिन्दा त्याग कर मनमें बैराग धर,
 कोष मान माया सोम चारों परिहर रे ॥
 द्विदेम तोष गहु समनासो सीरो रहु,
 परमको भेद लहु सेदमें न पर रे ॥
 करमको बंदा सोय मुक्तिको पन्थ ओय,
 मुहनिको बीजयोष दुर्गतिमो हर रे ।
 ओर नर पेसो होदि बार बार कहं सोदि,
 नहिं तो सिपार तूं निगोद तेरो पर रे ॥ २ ॥

११ भाषा सवैया छन्द ।

आलना त्याग जाग नर चेतन, बल सँभार मत करहु विलंब ।
 हरां न मुस लबलेख अगतमहिं, निव विरपमें लौते न अंब ॥
 ताति नु भंतर विपक्ष हर, कर विरक्ष निज अक्षकदंब ।
 गद गुन ज्ञान बैठ चारितरथ, देहु मोष मग सन्मुख बंब ॥ ३ ॥

सावित्री ।

भमजद्विजितवेधाचार्यबहोदयादि-

पुस्तकविजयसिद्धाचार्यपादारविन्दे ।

मधुकरसमतां यस्तेन सोमप्रमेण

व्यरचि मुनिपनेया सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥ ९९ ॥

कविः छन्दः ।

जैन वंश सर हंस दिगम्बर; मुनिपति अजितदेव अति आरज ।

ताके पद वारीमदमंजन; प्रघटे विजयसेन आचारज ॥

ताके पद भये सोमप्रम; तिन ये ग्रन्थ क्रियो हित कारज ।

जाके पदत मुनत अवधारत, हँ सुपुरुष जे पुरुष अनारज ॥ ९९ ॥

इन्द्रवज्रा ।

सोमप्रभाधार्यममा च लोके यन्मु प्रकाशं कुर्वते यथाशु ।

तथायमुच्चैरुपदेशलेशः शुभोत्पन्नज्ञानगुणांस्तनोति ॥ १०० ॥

भाषाग्रन्थरुर्षाक्षी ओरसे नामादि.

दोहा छंदः ।

नाम सूक्तिमुक्तावली; द्वाविंशति अधिकार ।

ज्ञान श्लोक परमान सब; इति ग्रन्थरिप्सार ॥ १ ॥

कैवल्यपाल वानारमी; मित्र जुगल इच्छरिष ।

निर्दिष्ट ग्रन्थ भाषा क्रियो, बहुविधि छन्द कविष ॥ २ ॥

सौन्दर्यमे इक्यानेवे; अगु भीषम वैशाख ।

भोमशार एकादशी; कर्गनश्रव गिन पाय ॥ ३ ॥

इति श्रीसोमप्रभाधार्यममा च लोके यन्मु प्रकाशं कुर्वते यथाशु

भाषाग्रन्थरुर्षाक्षी ओरसे नामादि ।

श्रीः

अथ ज्ञानवावर्नी.

प्रकाशती।

ओंकार शब्द विनाश आपके उभयरूप,
एक आत्मिक भाव एक पुद्गलको ।
शुद्धता समावलिये उठयो राय विशानंद,
अशुद्ध विभाव लै प्रभाव जह्वनको ॥
त्रिगुण निकाल तासैं ज्यय ध्रुव उतपात,
ज्ञानको मुहान्त बात नहीं लाग सलको ।
बानारसीदासजूके हृदय ओंकारवास,
जैमो परकाश दाशि प्रकाशे शुक्लको ॥ १ ॥
निरमल ज्ञानके प्रकार पंच नरलोक,
तामें भुतज्ञान परधान कर पायो है ।
ताके मूल दोष रूप अनार अनशरमें,
अनशर अम पिंड सैनमें बतायो है ॥
शब्द वरण जाके असंख्यात सतिपात,
तिनिमें नृप ओंकार मज्जनमुहामो है ।
बानारसी दास अंग द्वादश विचार यामें,
पेसे ओंकार कंठ पाठ सोहि आयो है ॥ २ ॥
महामंत्र गायत्री के मुख प्रसरूप मंद्यो,
आनम प्रदेस कोई परम प्रकाश है ।

तापर अशोक वृक्ष छत्रध्वज चामर सो,
 पवन अग्नि जल वैसे एक वास है ॥
 सारीके अकार तामें रुद्र रूप चितवत,
 महातम महावृत्त तामें बहु मास है ।
 ऐसो ओंकारको अमूल चूल मूलरस,
 बानारसीदासजूके वदन बिलास है ॥ ३ ॥
 सिद्धरूप शिवरूप भेष अवभेषरूप,
 नररूप न्यायरूप विधिरूप वातमा ।
 गुणरूप ज्ञानरूप ज्ञायक गंभीररूप,
 भोगरूप भोगीरूप सरस मुदातमा ॥
 एकरूप आदिरूप अगम अनादिरूप,
 असंख्य अनंतरूप जातिरूप जातमा ।
 बानारसीदास द्रव्यपूजा व्यवहाररूप,
 शुद्धता स्वभावरूप यहै शुद्ध आतमा ॥ ४ ॥
 धुंधवांड हृदे भयो शुद्धता बिसरि गयो,
 परगुणरंग रघो पर ही को रुसिया ।
 निगनिधि निकट विच्छट भई नैन बिन,
 क्षणकमें सुखी तामें क्षणकमें दुखिया ॥
 समक्षित जड बिना त्रयिन अनारि काल,
 विषय कथायवदि अरणमें धुमिया ।
 बानारसीदास बिन सीति बिपरीति जाचे,
 मेरे जाने ते तो नर मूढ़नमें धुमिया ॥ ५ ॥

अनुमदज्ञानतै निदान जानमान हृद्यो,
 सरधानवान चाने छहो द्रव्यकरसे ।
 करम उपाधि रोग लोभ जोग भोग राते,
 भोगी ब्रिया भोगी करामातृहृको सरसे ॥
 दुर्गति विपाद न उछाह गुर भौनवास,
 समता सुक्षिति आनमीक मेघ सरसे ।
 शानारसीदासजूके बदन रमन रस,
 ऐसं स्तारसिया ते अससको परसे ॥ ६ ॥
 आवरण समल विमल मयो लोके गुने,
 मोह आदि हने काहु काल गुनकसिया ।
 लीन भयो लखलासी मगन विभावत्यागी,
 उद्योनिके उद्योन होत निज गुण पगिया ॥
 शानारसीदास निज आत्म प्रकाश भंय,
 आवे ने न जादि एक ऐसे वासवासिया ।
 अस परम दस आदि ही अनन्त जन्म,
 गुणगवादरावे सोई सोखो रसिया ॥ ७ ॥
 रस ही गुणके सबादी भंय ते तो गुनै,
 तीर्थकरचकवर्ति दासी अध्यात्मदी ।
 बज बागुदेव प्रति बागुदेव विद्याधर,
 कारणगुनिन्द्र इन्द्र छेदी बुद्धि भगवी ॥

अष्टावीस लवधिके विविध सधेया साधु,
सिद्धिगति भये कीन्हीं सुगम अगमकी ।

बानारसीदास ऐसो अमीकुंडर्पिंड पायो,
तहांलो पहुंच कालक्रमकी न जमकी ॥ ८ ॥

इतर निगोदमें विभाव ताके बहुरूप,
तामें ह समाव ताको एक अंश आवै है ।

वहै अंश तेजपुंज बादर अगनि जैसें,
एकतैं अनेक रस रसना बढ़ावै है ॥

आगें जोर बज्यो प्राण चभु ओत्र नरदेह,
देह देही भिन्न दीखे भिन्नता ही भावै है ।

बानारसीदास निजज्ञानको प्रकाश भयो,
शुद्धतामें बाम किये सिद्धपद पावै है ॥ ९ ॥

उदै भयो मानु कोऊ पंथी उट्यो पंथकाज,
कदै नैनतेज थोरो दीप कर चदिये ।

कोऊ कोटीष्यज रूप छत्रछांद पुरतज,
तादि होस भई जाय प्रामवास रहिये ॥

मंगल प्रचट तज काह ऐसी इच्छा भई,
एक मर निज अमवागी काज चदिये ।

बानारसीदास त्रिनवचन प्रकाश गुन,
और बैन मुन्यो सादे तायों ऐसी कहिये ॥ १० ॥

ऊचे बंशकी बरवाई मीतवनो मीतिताई,
गुण गरबाई पिडुलाई धनो पेर है ।

बचन विलासको निवास बन सपनाई,
चतुर नागर नर सुरनको पेर है ॥

कीरति सराहको प्रवाद बई महानदी,
एतो देश उपमा है सवै जग जेर है ।

हेरि हेरि देख्यो कोऊ और न अनेगे ऐसो,
बानारसीदास बसुधामें गिरि मेर है ॥ ११ ॥

रीति विपरीति रंग राख्यो परगुण रस,
छायो सुठे भ्रम सातें छूटी निधि परकी ।

तेरे घर झट्टि है अनंत आपरंग आवे,
नेकु जो गहूरी फेरे हाथ होय दरकी ॥

कामके उपायसेती एती होम पूरे भले,
निजप्रियाछूटे जेती होम पूरे नरकी ।

बानारसीदास बदे भूदको विचार बढ,
कोटीध्वज भयो चाहे आस करे परकी ॥ १२ ॥

कालु बरसात नदी नाले सर जोरबरे,
बदे नाहिं मरजाद सागरके फेनकी ।

नीरके प्रवाद सुन काठहून्व बदे जात,
चित्रावेल आद बदे नादी काहु गैदकी ॥

वानारसीदास ऐसे पंचनके परपंच,
 रंचक न संच आवै वीर बुद्धि ढैलकी ।
 कलु न अनीत न क्यों प्रीति परगुणसेती,
 ऐसी रीति विपरीत अध्यातमदौलकी ॥ १३ ॥

लवरूपातीत लागी पुण्यपाप आंति मागी,
 सहज स्वभाव मोहसेनावल भेदकी ।
 ज्ञानकी लवधि पाई आतमलवधि आई,
 तेज पुंज कांति जागी उमग अनन्दकी ॥
 राहुके विमान भट्टे कला प्रगटत पुर,
 होत जगाजोत जैसे पूनमके चदकी ।
 वानारसीदास ऐसे आठ कर्म भ्रमभेद,
 सकनि संभाल देसी राजा चिदानदकी ॥ १४ ॥

निसनपट्टत टाम टाम लोक लक्षक्षोटि,
 ऐगो पाठ पड़े कलू शान हू न बरिये ।
 मिथ्यामनी पचि पचि शास्त्रके ममूह पड़े,
 बंधीकलवाजे पशुचामदोल मरिये ॥
 दीपक संजोव दीनो चतुर्दीन ताके कर,
 रिद्धत पहाव बापे कबहू न बरिये ।
 वानारसीदाम मो मो ज्ञानके प्रकाश भये,
 दिव्यो कहा पड़े कलू लख्यो हूँ मो बरिये ॥ १५ ॥

एक मृतपिण्ड जैसे जलके संयोग छते,
 भाजन विशेष छोड़ लणकमें सेइ है ।
 तैसे कर्मनीरविदानन्दकी प्रणति दीर्घ,
 नरनारी नपुंसक त्रिविध सुखद है ॥

बानारसीदास भर बाधो धूप बाधो तप,
 छूटेत संयोग ये दशाधिनको छेद है ।
 पुगलके परबे विशेष जीव भेद भंव,
 पुगलक प्रसंग बिना आठम अभेद है ॥ १६ ॥

ये ही ज्ञान सपद गुनन गुर ताहि गुन,
 बटरस म्वाद मानै गू तो ताहि ज्ञान रे ।
 रिद विरल्लोटकी लखर सोअ ताहि सोअ,
 परगुण निअ गुण जानै ताहि ज्ञान रे ॥

विषय कषायके बिलाग मंटे ताहि छंड,
 अमल असंढ नष्टि जानै ताहि ज्ञान रे ।
 बानारसीदास काता होय सोई जानै बट,
 मेरे मीन ऐसी रीत बिछ मुषि ठाव रे ॥ १७ ॥

उपम करत नर स्वारथके बरज गव,
 स्वारथके उपमको छुं रह्यो बटर सो ।
 स्वामयको भजे निरास्वारथको तज रह्यो,
 शहरको बन जानै वनको बाहर सो ॥

स्वारथ भलो है जो तू स्वारथको पहिचानै,
 स्वारथ पिछाने बिन स्वारथ जहर सो ।
 बानारसीदास ऐसे स्वारथके रंगराचे,
 लोकनके स्वारथको लागत कहर सो ॥ १८ ॥
 उलट फलट नट खेलत मिलत लोक,
 याके उलटत भव एक तान है रसो ।
 अज हं न ठाम आवै विक्रया भवण भावै,
 महामोह निद्रामें अनादि काल स्वरसो ॥
 बानारसीदास जागे जागे सासो बनि आवै,
 बिनवर उकति अमृत रस स्वरसो ।
 उलटि जो रोलै तो तो स्याल सो उठाय परै,
 उलटिके सेने बिन लोटे स्याल है रसो ॥ १९ ॥
 कौन काव मुगध करत बध दीनपशु,
 जागी ना अगमश्रोति कैगो जग करि दे ।
 कौन काव गरिता ममुद्र मरवने होदे,
 आनम अमल होषो अबहं न हरि दे ॥
 काहे परिणाम मंक्रनेश रूप करि जीव ।
 पुण्यपाप भेद किये कहुं न उपरि दे ।
 बानारसीदास बिन उकति अमृत रस,
 मोई ज्ञान गुने तू अनन भव तरि दे ॥ २० ॥

खेलत अनन्तकाल भये पै न सेद पावै,
 तीन सौ सेताल राजू मापकी तलकमें ।
 केई स्वांग घर खेले वरष असंख्य कोटि
 केई स्वांग केर लावै पलक पलकमें ॥
 खेलें जेतें जन्तु तातें खेलने अनन्त गुणें,
 बनारसीदास जानै ज्योतिषी सलकमें ।
 खेलें ते बहुत ख्याल देखे तें अल्प जन्तु,
 देखे ते भी खेल बैठे ख्याल ई खलकमें ॥२१॥
 गुरुमुख सुषक सुषक भरे भुत सोर,
 कालकी लपधि कलधपी दरम्भानकी ।
 जामकी अगमबुद्धि जोग उपजोग शुद्धि,
 रंजकअरथ उबाला लागी शुभ ध्यानकी ॥
 इत ज्ञानादल उत मोहसेना आई बन,
 बनारसीदास जू कुमक होजो न्यानकी ।
 जीव न अवश्य जाके बन्दूककी गोली लागै,
 जाँग न मिथ्यात जोपे गोली लागै ज्ञानकी ॥२२॥
 पटमें बिपट घाट उलट ऊरपघाट,
 परगुण साधे ते अनन्त काल संयको ।
 सुषुम्ना आदि इला विंगलाकी सोत्र भई,
 पटचक्रनेपी गण जीत्यो मनमंथको ॥

सुलब्धो है कमल बनारसी विशेष ताको,
 सुनिवेकी इच्छा मई जिनमत ग्रन्थको ।
 ऐसे ही जुगति पाय जोगी जोग निधि साथे,
 जोगनिधि साथे तो सिधावे सिद्धपंथको ॥ २३ ॥

नीच मतिहीन कहै सो तो न छै केवलीपै,
 कहै कर्महीन सो तो सिद्ध परमितको ।
 धियागारी धरै धिया सारमुत्त ऐसी धरी,
 मेधाके मिलापसों मथन निज चितको ॥

मूरख कहैं ते साथे परम अवधिवार,
 तहां न विचार कछु हित अनहितको ।
 धानारसीदास तोसो निज ज्ञान गेह आये,
 लोगनकी गारी मो मिगार समकिनको ॥ २४ ॥

चंचलता बाज्य बैस भौरी दे दे भूमि फिरै,
 पर तेनहु भूमि देसै भूमत भरमते ।

जो ही परब्र योगपग्ननिमेती परबंध,
 श्रीदासि फ भाव मूढ पावे ना भरमते ॥

निजकृत मानैम तानें घटनि विशेष मानै,
 जो पात्राय भेष याही कटिन करमने ।

बानारसीदास न रिमे विद्वज विभाव छूटै,
 बुद्धि विमगम गुनेवावे स्वभाव धरमने ॥ २५ ॥

छत्रपार बैठो घने लोगनकी भीरभार,
 दीसत स्वरूप सुसनेहिनीसी नारी है ।
 सेना चारि साजिके बिराने देश दोही केरी,
 फेरसार करें मानो चौपर पसारी है ॥
 कहत बनारसी बजाय पौंसा बारबार,
 रागरस राच्यो दिन चारहीकी बारी है ।
 तुल्यो ना सज्जानो न सज्जानचीको खोजपायो,
 राज खसि आयगो सज्जाने बिन ख्वाारी है ॥ २६ ॥
 जागो राम चेतन सदज दल जुरि आये,
 सुरे कर्मरिपुभाव मनमें उमाहबी ।
 सरहद भई याकी लोकालोक परिमाण,
 इन्द्रचन्द्र चितवत चोपकर चाहबी ॥
 बनारसीदासशता ज्ञान सेना बनि आई,
 आदि छैं अन्त बिन ऐसी ही निवाहबी ।
 सज्जानची शुभध्यान ज्ञानको सज्जानो पूरो,
 सुरो आप सादिय सुधिर ऐसी सादिबी ॥ २७ ॥
 हाग उठे यामे यामे कोपफेन फैलि रहे,
 बिबलतरंगरंग दहंनमें आवना ।
 यामे लणकाठ धनधान्यपरिग्रह यामे,
 यामे मलपंक यादि बंधद्रोह भावना ॥

वानारसीदास वामें आकृति अनेक उठें,
 यहां कुलकोट योनि जाति दोष लावना ।
 बसो जात जल तामें येते कविभाव उठें,
 आत्मा बहिर तामें कहेंते स्वभावना ॥ २८ ॥
 निजकाज सबहीको अध्यात्म सैली मांझ,
 मूढ क्यों न खोज देखें खोज औरवानमें ।
 सदा यह लोकरीति मुनी हैं वानारसीजू,
 वचनप्रसाद नैकु शानीनके कानमें ॥
 चेरी जैसें मलिनलि धोवत बिराने पांव,
 परमनरजियेको सांझ ओ विहानमें ।
 निजपांव क्यों न धोवें ? कोई सरसी ऐसो कहै,
 मो सी कोऊ आनखान और न जहानमें ॥ २९ ॥
 टेककरि मूरम्भारिणें पर टिक रखो,
 जानै मेरे यही घर मैं भी याही घरको ।
 पर परमारथ न जानै तानें प्रमथेरो,
 टौर बिना और टौर अपर पथरको ॥
 पंचको मन्थायो कहै परपंच वचद्रोह,
 संमद गमूह दियो सो तो पिंड वरको ।
 वानारसीदास ज्ञानचन्द्रमें विचार देख्यो,
 पगवर्णदुर्गा जनम ऐसें नरको ॥ ३० ॥

ठांव सृगमद सृग नाभि पुदगलगुन,
 विसतरघो पौनते विघेप हूँदे वनमें ।
 साहिबके काज मूढ़ अटत अनेक ठौर,
 सनको जो भित्त मानै सो तो सेरे तनमें ॥
 फंठमाहिं मणि कोऊ भूरस्त विसरि गयो,
 सो तो उपस्थानों सांचो मयो दीन जनमें ।
 बनारसीदास जिहें काजको जगत फिरै,
 सो तो काज सरे तेरे एक ही बचनमें ॥ ३१ ॥
 सृत्यो तू निगोद कोऊ कान्ध पाय होकि आयो,
 प्रत्येक शरीर पंच भावरमें तैं धरघो ।
 पुनि विकलिदी ईदी पंच परकार चार,
 नरक तिर्थच देव, पुनि पुनि संचरघो ॥
 बनारसीदास अब नरमव कर्म गूनि,
 गंठिभेद कीन्दो मोक्षमारगमें वै धरघो ।
 बेतरे बनुर नर अज हूँ तू क्यों न बेते ?
 इस अवतार आयो एते पाट उतरघो ॥ ३२ ॥
 हुँदे लीण सागरमें नेक हूँ न टील करै,
 क्षारजल बसे चाके क्षारजल पै नदी ।
 सीतबदामीतादरिकान्तारछाधोतस्वाद,
 स्वादी होय सोई स्वादे कोई काहूँ दे नदी ॥

सुभरि विभावसिंधु समता स्वभावश्रोत,
 वानारसी लाभै ताको भ्रमणको भै नहीं ।
 संगी मच्छ सारिसो स्वभावज्ञाता गहि राख्यो,
 राख्यो सोई जाने भैया कह्येको हे नहीं ॥ ३३ ॥

नैननतें अगम अगम याही नैननतें,
 उलट पलट यहै कालकूट कहरी ।
 मूल विन पाये मूत्र कैसें जोग साधि आवै,
 महज समाधिही अगम गति गहरी ॥
 अध्यात्म गुन्यो सो पै सरधान दे न आवै,
 तौ तौ भैया में तौ बड़ी राजनीनि कहरी ।
 वानारसीदास ज्ञाना जपि गपे सोई जाने,
 उदधि उधाने अथिऊ मनलहरी ॥ ३४ ॥

तत्त्व नित्रकाज कसो मत्त्व पागुण गद्यो,
 मनही लहर मानों इसें भाग कोमे ।
 जिनकमें नगी जिन जपी ईके जागरेण,
 जिनकमें भोगी जिन जोग पागरेमे ॥
 वानारसीदास ज्ञानो पूर्वहन संभ साके,
 ध्यानिच मान लेई आपो कइ पागेमे ।
 जइ जग मन सैल्यो तजरही परंन भादी,
 मन्य पाये मूत्रमनी सांगे मनसोमे ॥ ३५ ॥

धिर धंभ उपल विपुल ज्योति सरतीर,
 सता आये आपनी न कोऊ फाके दलको ।
 मासै प्रतिबिम्ब अम्बु बायुसों अनेक फैन,
 पूजतो सो दीसै पै न पूजै धंभ यलको ॥
 जाकी दृष्टि पुगललौ चेतन न भिन्न धितै,
 आचरण देखे सरधान न विमलको ।
 बानारसीदास ज्ञान आत्म सुधिर गुण,
 डोलै परजाय सो विकार कर्मजलको ॥ ३६ ॥
 द्रव्यधकी दोउनकी सरहद देहमात्र,
 भावधकी लोकपरिमाण याकी इधिना ।
 भाव सरहद याकी अलोकसैं अधिकरि,
 ये तो शुभ काजकारी बाने कहूँ सिधि ना ॥
 याके तो अभेद प्रदि अमल अरंड पुर,
 याके सेना परदल कहूँ निज रिधि ना ।
 बानारसीदास दोउ मीडि देखी दुनियाँमें,
 एक दिसि तेरी विधि एक दिसि रिधिना ॥ ३७ ॥
 धर्मदेव नरको वचन जैसो गिरिराज,
 मिथ्याती वचन शुद्धारथको पटंतरो ।
 पारस पाषाण जैसै जाति एक जेतो भेद,
 मूरख दरज जैमैं दरज महंतरो ॥

वानारसीदास कंकसार अन्यसार जैसे,
 जनमको चौस जैसो चौस मरणंतरो ।
 अध्यातम शैली अन्य शैलीको विचार तैसो,
 ज्ञाताकी मुट्ठिमाहिं लागे एतो अंतरो ॥ ३८ ॥

नरभव पाय पाय बहु नूमि धाय धाय,
 पर गुण गाय गाय बहु देह धारी हे ।
 नरभव पीछे देह नरक अनेक भव,
 फिर नर देव नर असंख्यात धारी हे ॥

एक देवभव पीछे तिर्यच अनंत भव,
 वानारसी संसारनिवास दुःखकारी हे ।
 क्षायक शुभतिपाय मोह सेना विजुराय,
 जय निदानंदराय शक्ति गंभारी हे ॥ ३९ ॥

पामर वरण भूद्र पात तय देह बुद्धि,
 अनुमको काज ताहि ताते बड़ी लाज हे ।
 वैश्यको विचार बाके कष्ट करवृत्ति फेर,
 वैश्य बाग बगे सौलो नाहि जोगराय हे ॥

सत्री शुद्ध पगंड जैनवार काज जाके,
 वानारसीदास अगम अगाज हे ।
 जेमे बाग बगे ज्योप सामे तेगी बुद्धि होय,
 जेगी बुद्धि तेगी किया किया तेमो काज हे ४०

फटिक पाषाण ताहि मोतीकर माने कोऊ,
धुंधली रक्त कहा रतन समान है ।

हंस बक सेत इहां सतेको न देत कमू,
तोरी पीरी भई कहा कंचनके बान है ॥

भेष भगवानके समान कोऊ आन भयो,
मुद्राको मंडान कहा मोक्षको सुधान है ।

बानारसीदास ज्ञाना ज्ञानमें विचार देखो,
काम जोग कैसे होउ गुण परधान है ॥ ४१ ॥

वेदपाठचाले ब्रह्म कहें ये विचार बिना;
शिव कोई भित्त जान शैव गुणगावही ।

जैनी पर जतन जतन निजभित्त जान,
बानारसी कहै पारबाक धुंधपावही ॥

बाँद कहै मुद्र रूप काह एक देशवर्गे,
न्यायके बरनहार ऊरध बनावही ।

छटो दरसनमाहि छटो आदि छिपि रह्यो,
छट्यो ॥ मिथ्यात साने प्रगट न पावही ॥ ४२ ॥

भेषपर कोटिक नट्यो हैं लम्बोरामीमें,
बिना गुरुज्ञान परतै न विवसावमें ।

गुरु भगवान सुटी भगवानभान्ति हूँटै,
भान्तिमें गुगुरभाषे जोगे स्वीर तावमें ॥

बानारसीदास ज्ञाता भगवानभेद पायो,
 मयो हे उल्लाह तेरे वचन कहावमें ।
 भेषधार कहै भैया भेषहीमें भगवान,
 भेषमें न भगवान भगवान भावमें ॥ ४३ ॥
 मोक्ष चलियेको पंथ मूले पंथ पथिक उथों,
 पंथबलहीन साहि सुखरथ सारसी ।
 सहजसमाधि जोग साधिवेको रंगभूमि,
 परम अगम पद पढिवेको पारसी ॥
 भयमिन्नु नाग्विकेको शब्द पर है पौन,
 ज्ञानघाट पाये ध्रुनलंगर लेझागमी ।
 मर्मकल नैननिको बाके बन भजनमे,
 भानमा निहाग्विकेको भागमी बनारसी ॥ ४४ ॥
 त्रिनयात्री दुग्गमादि त्रिजया गुमनिहार,
 त्रिजयार कंदवृन्द चहलपहलमें ।
 विदेक विचार उपचार ए कर्ममो कीन्हों,
 विद्यांगोफी मिटि गये ज्ञानही महलमें ॥
 शीगरी शुक्लध्यान अनदद नाद नान,
 गान गुजमान कर गुजग महलमें ।
 बानागमीदाम मध्यनयक ममामगर,
 अध्यानमशरी चरी मोशुके महलमें ॥ ४५ ॥

रसातल तलै पंच गोलक अनन्त अंतु;
 तामें दोऊ राशि अन्तरहित स्वरूप हे ।
 कटुक मधुर जौलो अगनित भिन्नताई;
 बिहणताभाव एक जैसे तेलरूप हे ॥
 जैसे कोऊ जात अंध चीइन्द्री न कहियत,
 द्रव्यको विचार मूढभावको निरूप दे ।
 बनारसीदास प्रभु वीर जिन ऐसो कही,
 आत्म अभव्य भैया सोऊ सिद्धरूप हे ॥ ४६ ॥
 लक्षफोट जोरिजोरि कंचन अंवार कियो,
 करता मैं याको ये तो करै मेरी शोभ को ।
 धामधन भरो मेरे और तो न काम कछू,
 गुल बिसराम सो न पावै कहं मोभको ॥
 ऐसो बलवंत देरत मोह मूप गुशी भयो,
 सेनापति थाप्यो जैसे अहंभार मोभको ।
 बनारसीदास ज्ञाना ज्ञानमें विचार देख्यो,
 लोगनको लोभ छाप्यो लागे लोभ लोभको ४७
 पावनवरण ये ही पड़त वरण पारि,
 काहू पड़े ज्ञान बंद काहू दुस हेंदजू ।
 वरण भंडार पंच वरण रतनसार,
 और ही भंडार भाववरण गुहंरजू ॥

वरणतें भिन्नता सुवरणमें प्रतिभायै,
 सुगुण सुनत ताहि होतहै अनंद जू ।
 बानारसीदास जिनबाणी वरणन कियो,
 तेरी बाणी वरणाव करै बड़े वृन्द जू ॥ ४८ ॥

शक्रबंधी सांचो शिरीमान्ज जिनदास सुन्यो;
 ताके पंग मूलदास विरद बाणयो दे ।
 ताके बंदा शिनिमें प्रगट भयो सद्गमेन,
 बानारसीदास ताके अरतार आयो दे ॥

बीटोलिया गोत गर बतन उघोत भयो,
 आगरेनगर ताहि भेंटे मुरगयायो दे ।

‘बानारसी’ ‘बानारसी’ सत्यक यमान करे,
 ताको बेंग नाम टाग नाम गुण गायो दे ॥ ४९ ॥

गुणी दैके मन्दिर कपूरचन्द माहु बेंटे,
 बेंटे काँग्यान्ज मभा जुगी मनभावनी ।

बानारसीदासजुके वचनही बात बरी,
 याही कथा मेमी ज्ञानाज्ञानमनरावनी ॥

गुणवन पुष्पके गुण बीगवन बीग,
 पीनाथर पीनि करी मजन गुदावनी ।

बही अविद्या आयो कूपने रिजोना बायो,
 रूचम प्रसादने मरी दे ज्ञानरावनी ॥ ५० ॥

भोज्य तो तियासीये भवन पुंसारमाम,
 पक्ष उत्रियारे पन्द्र पड़वेको पाव है ।
 बिजेदशी दिन आयो शुद्ध परकाज पायो,
 उषरा आषाढ उहुंमन बदे दाव है ॥
 धानारसीदाम गुणयोग है शुक्लवाना,
 धीरिषधधान गिरि कर्म बदाव है ।
 एक तो अरध शुभ महरत वरणाव,
 दूसरे अरध धामे दूजो वरणाव है ॥ ५१ ॥
 हेतवैत जेते ताको सद्व उदारचिण,
 आगे कदो एतो वरदान मोदि दीत्रियो ।
 उषम पुरष शिरीवानारसीदाम वस,
 पल्लवम्यभाव एक ध्यानमो मुनीत्रियो ॥
 पवनम्यभाव विगतार कीम्यो देशदेश,
 भ्रमर स्वभाव निज स्वाद रम पीत्रियो ।
 बावन कविष ये तो मेरी मनिमान भये,
 हंसके स्वभाव शाता गुण गदलीत्रियो ॥ ५२ ॥
 इति धीवानारसी नामादिन शानकावनी ।

अथ वेदनिर्णयपंचासिका.

चूडामणि छन्द ।

जगतविलोचन जगतहित, जगतारण जग जाना ।

चन्द्रहु जगचूडामणी, जगनायक परधाना ॥

नमहुं प्रपन्नभक्त्यामीप्रमुख, जिनचौबीस महन्ता ।

गुरुवरण निनरास मुरा, कहं वेदविरतन्ता ॥ १ ॥

मनहरण । (सहीचौबी)

केवलीकवितवेर अन्तर गुपन भये,

जिनके जगदमे अमृतम पुराहे ।

अर गगुनेर मनुर्वेद शाम अधर्वज,

इनहीका परभाव जगनमें हुवा टे ॥

कहत बनारसी तथापि मे कहंगा कत,

गही गममेंगे जिनका भिग्यान मुरा दे ।

मनारगे मूम न माने उपदेश येगे,

इहमा म जाने धिगिओर मानु उवा दे ॥ २ ॥

होरा ।

कहहु ने दर्पचानिका, जिनशरी परमान ।

नर अरान जानें नही, जो जाने सो जान ॥ ३ ॥

१ कल्प कवितवेर इमे मुद्रावर्ण ईत्यादि, ११ और १२ के निचम के इमने १० मन्त्रा होगे है. तेरहे मन्त्र मगुलीमे लड़ करीजेने वा छन्द बन जान्य है.

ब्रह्मानाम युगादिजिन, रूप चतुर्मुख धार ।

समयसरण मंडानमें, वेद बस्तानें चार ॥ ४ ॥

बनाक्षरी ।

प्रथम पुनीत प्रथमानुयोगवेद जामें,

त्रेसठशलाका महापुरुषोंकी कथा है ।

दूजो वेद करणानुयोग जाके गरभमें,

बरमी अनादि लोकालोक पिति क्या है ॥

चरणानुयोग वेद तीसरो प्रगट जामें,

मोक्षपथकारण आचार सिंधु मया है ।

चौथोवेद दरव्यानुयोग जामें दरबके,

पटभेद करम उछेद सरवया है ॥ ५ ॥

प्रथमवेद यथाः—

वसव ।

तीर्थकर धौसीम, काम चौबीस मनुजवन ।

मिनमाता जिनपिता, सकल व्यालीसआठ गन ॥

चक्रवर्ति द्वादश प्रमान, एकादश शंकर ।

नव प्रतिहर नव वासुदेव, नव राम शुभकर ॥

कुलकर महन्त चवदह पुरुष, नव नारद हत्यादि नर ।

इनको चरित्र अरु गुणकथन, प्रथमवेद यह भेद धर ॥ ६ ॥

द्वितीयवेद यथाः—

अगम अनंत अलोक, अहृत अनिमित्त असंख्य सभ ।

असंख्यातपरदेस, पुरुषआकार लोक नभ ॥

ऊरुय स्वर्ग अधो पताल, नरलोक मध्यभुव ।
 दीप असंख्य उदधि, असंस मंडलाकार भुव ॥
 तिस मध्य अड़ाई दीपलग, पंचमेरु सागर जुगम ।
 यह मनुजक्षेत्र परिमाण छिति, सुरविद्याधरको मुगम ॥ ७ ॥

मनहरण ।

सोलह गुरग नवभीव नव नवोपर,
 पंच पंचानुपर ऊपर सिद्धशिला दे ।
 ता ऊपर शिखरक्षेत्र तहां हैं अनन्तसिद्ध,
 एकमें अनेक फोऊ काहसों न मिला दे ॥
 अभोलोक पातालकी रचना अनेकविधि,
 नीचे सात नरकनिवास बहु रिला दे ।
 इत्यादि जगतधिति कही दूजेनेद मादि,
 मोई जीव माने भिन मिग्यात उगिया दे ॥ ८ ॥

तृतीयधेद यथाः—

मिग्याकरनुनि नामी मासादन रीति भाभी,
 मिश्रगुणधानककी राभी मिश्र करनी ।
 सम्यकवचन मार कथो नानाप्रकार,
 धातकआचार गुन एकारदा परनी ॥
 वामासीगुनिकी किया कही अनेकप्र,
 भागि गुनिगवकी किया समारहरनी ।
 भास्त्रिकप्र रिया भेजिभाग दुष्टिया दे,
 एक दोषमुभी एक मोक्षमुगी यानी ॥ १० ॥

चाँपाई ।

उपशम क्षिपक यथावत चारित ।

परकृत अनुमोदनकृतकारित ॥

द्विविधि त्रिविधि पनविधि आचारा ।

तेरह विधि सत्रह परकारा ॥ ११ ॥

होहा ।

वरनन संख्य असंख्यविधि, तिनके भेद अनंत ।

सदाचार गुणकथन यह, तृतीयवेद विरतंत ॥ १२ ॥

चतुर्थवेद यथाः—रूपक पैनाक्षरी.

जीव पुदगल धर्म, अधर्म आद्याग काल,

येही छहों दरब, जगतके धरनहार ।

एक एक दरबमें, अनंत अनंत गुन,

अनंत अनंत परजायके धरनहार ॥

एक एक दरबमें, शक्ति अनंत बसै,

कोऊ न जनम धैर कोऊ न मरनहार ।

निदरै निवेद कर्मभेद चाँथेवेद माहि,

बखानै सुगुरु मानै मोहको धरनहार ॥ १३ ॥

चाँपाई ।

येही चारवेद जगमाहि । सर्व ग्रन्थ इनकी परछाहि ॥

ज्यों ज्यों धरम भयो विच्छेद । त्यों त्यों गुप्त भये ये वेद १४

१ इस छन्दमें बत्तीगर्जन लघु गुरुके नियमरहित होते हैं, आड. आड आड, आड मिलाकर एक चरणमें ३२ बर्ण होते हैं अन्तमें नियमसे लघु होता है.

दोहा ।

द्वादशांगवानी विमल, गर्भित चारों वेद ।

ते किन कीन्हें कब भये, सो सब वरनों भेद ॥ १५ ॥

युगलधर्म रचना कहों, कुलकर रीति बखान ।

ऋषभदेव ब्रह्मा क्या, सुनहु भविक धर कान ॥ १६ ॥

युगलधर्मयथा,—चीपाई ।

मधमहि जुगलधर्म है जैसा । गुरुपरसाद कहहुं कछु तैसा ॥

जन्महि जुगलनारिनर दोऊ । भाई बहिन न मानै कोऊ ॥ १७ ॥

दोहा ।

सुरसे सीरे सोमसे, बहुरागी बहुमित्र ।

होहि एकसे जुगल सब, कौतूहली विचित्र ॥ १८ ॥

मनहरण ।

सषट्हीके चित्त अतिसरलस्वभावी निष्ठ,

सषट्हीके बिरचिष्ठ कोऊ न सुगुलिया ।

दिये पुण्यरसगोष सहजसंतोष लिये,

गुननके कोष दुःखदोषके उगुलिया ॥

कोऊ नहि मरै कोऊ काहूँको न पन दरे,

कोऊ कबहुं न करे काहूँकी सुगुलिया ।

गमनागतिन संकटेशनारतिन सब,

सुगुलिया सदीव येगे जीव है जुगलिया ॥ १९ ॥

भूपन नवीन दम्ब मलहीन सघहीके,
 घर घर निकट कल्पतरुवाटिका ।
 नाही रागद्वेषभाव नाही बंधको बड़ाव,
 नाही रोग ताप न बिलोके फोऊ नाटिका ॥
 विविधपरिमह सबके घर देखिये वै,
 काहूके न पोरि पैरद्वार न कपाटिका ।
 अल्पअहारी सब मृदुतनधारी सब,
 सुंदरअहारी सब ऐसी परिपाटिका ॥ २० ॥

कोटा ।

घर घर नाटक होहि निज, घर घर गीत गेंसीत ।
 कपहू कोऊ न देखिये, बदनपीतें भयभीत ॥ २१ ॥

मनहरण ।

जिनके अल्प संकल्प विकल्प दोऊ,
 धोरो मुखजडेंप अल्पअहमेवेता ।
 जिनके न फोऊ अरि दीरघ शरीर धरि,
 त्रिपतिपी दशा धरै विपति न बेईता ॥
 जिनके विषै बड़ाव पत्योपमतीनआव,
 सबै नर राव फोऊ काहूको न सेवता ।

१ मषानका आगेका भाग. २ विवाह. ३ पीला होबाण्डय
 गुण. ४ बोलना (वित्तभाषि) ५ आरंभ ६ अनुभव करना.
 ७ तीन पत्थरी आगु.

ऐसे मद्रमानुष जुगलभवतारपाय,
 करि करि भोग मरि मरि होहिं देवता ॥ २२ ॥
 जिनके जनम माहिं भावपिता मर जाहिं,
 ध्यापे न वियोग दुख शोक नहिं धरना ।
 अपने अँगूठाको अमृतसरसपान कर,
 जिनको अपनो तन वर्द्धमान करना ॥
 अन्तर्ज्ञात जिनको असानावेदनी न होय,
 छींक आये अथवा जँभाई आये मरना ।
 जिनको शरीर स्त्रि जाय ज्यों कपूर उड़े,
 ऐसो जिनबानीमें जुगलधर्म धरना ॥ २३ ॥

चौपार ।

जुगलधर्म जब लेय मरोग । बाकी काल रहै कटु धोरा ॥
 मगटाहिं सदा चतुर्दशप्रानी । कुम्भकर नाम कहाये शानी ॥ २४ ॥
 सब गुनान सबकी गनि नीकी । सब शंका भेटाहिं सपेजीकी ।
 होहिं विछिन्न कल्पतरु ज्यों ज्यों । कुम्भकर आगम भाषहिं त्यों त्यों ॥

रोदा ।

क्यों मयनि मरि मरि जनम, हरि हरि मानि कहाव ।
 धरि धरि तन मरि मरि मये, करि करि पूर्य आव ॥ २५ ॥
 इतिशिव चवदह मेनु मये, कटु कटु अन्तरकाज ।
 तीन ज्ञान संयुक्त मय, मनि धुनि अर्कवि गगन ॥ २६ ॥

बाँपाई ।

रह मनुके नाब जु आने । नाभिराय चौदहें बसाने ॥
 लदेवी तिनकी बनारी । शीलबंत सुंदरि मुकुमारी ॥ २८ ॥
 ताके गर्भ भये अपतारी । कृपभदेवजिन समकितधारी ।
 तीनशान संपुक्त सुहाये । अगणित नाम जगतमें गाये ॥ २९ ॥

कृपभदेव कथनः—

देवा ।

कृपभदेव जे जे दशा, परी किये जे काम ।
 ते ते पदगभित भये, प्रगट जगतमें नाम ॥ ३० ॥
 जे ब्रह्माके नाम सब, जगतमाहि विख्यात ।
 ते गुणसौ करतूनिषों, कृपभदेवकी बात ॥ ३१ ॥
 बाँपाई ।

जनमत नाम मयो शुभवेला । आदिपुरुष अवतार अकेला ॥
 मातापिता नाम जब राखा । कृपभकुमार जगत सब भाखा ॥ ३२ ॥
 नाभि नाम राजाके जाये । नाभिकर्मज उत्पन्न कहाये ॥
 इन्द्र नरेन्द्र करें जब सेवा । सब कहिये देवनको देवा ॥ ३३ ॥

१ वैष्णव सम्प्रदायमें कथना की है कि श्रीहृण्मजीने जब पृथिवी
 पुराके पेटमें रखी, तब ब्रह्माजीने पुराके इन्हे इडा बद्रक्षके पसेपर
 पोलेहुये मिटे, तब इनके पेटमें सन्देह किया, श्रीहृण्मजीने अपने पेटमें इन्हे
 पुन जाके दिया और फिर मुह बंदकर निकलने नही दिया, तब ब्रह्माजी
 श्रीहृण्मजी नाभियेसे कमल उत्पन्न कर उसकी नाभमें पृथिवीमहित
 करने कहा नाभिकर्मज उत्पन्न कहाये.

जुगलरीति तज नीति उधरता । तातें कहैं सृष्टिके करता ॥
 असिमसिद्धिवाणिजके दाता । ताकारण विधि नाम विधाता ॥
 क्रियाविशेष रचा जग जेती । जगत विरञ्चि कहैं प्रभु सेती ॥
 जुगकी आदि प्रजा जच पालें । तच जग नाम प्रजापति ओलें ३५
 रोहा ।

कियो नृत्य काह समय, नटी अप्सरा वाम ।
 जगत कहैं प्रभा रंचो, तिय तिलोत्तमा नाम ॥ ३६ ॥
 चीपारु ।

गुरुविन भये महामुनि जय ही । नाम स्वर्णभू प्रगटोत्पही ॥
 ध्यानारूढ़ परमतप सार्थे । परमइष्ट कह जगत अरार्थे ॥ ३७ ॥
 भरतखंडके प्राणी जेते । प्रजा भरतराजाके तेते ।
 भरतनरेश कृपामकी माया । तातें लोक पितामह भाया ३८
 केयकज्ञानरूप जय होई । तर प्रव्या भाये सब कोई ॥
 कंचनगङ्गाभिन् जग भागे । नाम द्विरण्यगर्भ परकामे ॥ ३९ ॥
 रोहा ।

कमलामनपर बैठिके । देदि धर्म उपदेश ।
 समर छत्र लख जग कहैं । कमलासन लोकेस ॥ ४० ॥
 चीपारु ।

आनममुमि रूप दामाये । तबहिं आनमभू नाम कदाये ॥
 मङ्गलद्वीवकी रक्षा भाग्ये । नाम महेश्वरानु जग रामे ॥ ४१ ॥

समवसरनयहिं चौमुसि दीसै । चतुरानन कह जगत असीसै ॥
 अक्षरविना वेदधुनि भासै । रचना रच गणधर परगासै ॥ ४२ ॥
 चारवेद कहिये सब सेती । द्वादशांगकी रचना पत्ती ॥
 जब धुनि मुनि अनतता गहिये । सब प्रभु अनन्तातमा कहिये ॥ ४३ ॥
 आदिनाथ आदीश्वर जोई । जादि अन्तविन कहिये तोई ॥
 फौ जगत इनहीकी पूजा । वे ही ब्रह्म और नहि दूजा ॥ ४४ ॥
 जबलौ जीव सृषामग दारै । सबलौ जानै ब्रह्मा औरै ॥
 जब समकित नैननसौ सुख । ब्रह्मा रूपभेदेव तब बूझै ॥ ४५ ॥
 बोझ ।

आदीश्वर ब्रह्मा भये, किये वेद जिन चार ।
 नामभेद मतभेदसौ, बड़ी जगत्में रार ॥ ४६ ॥

ब्रह्मलोक कथनः—धीरार्ह ।

और उक्ति में मन आवै । सांचीवात सबनको भावै ॥
 ब्रह्मा ब्रह्मलोकको वासी । सो वृषान्त कहों परकासी ॥ ४७ ॥
 कुदृष्टिवा ।

क्या सब सुरलोकके, ब्रह्मलोक अभिराम ।
 सो सरवारथसिद्धि तनु, पंचानुत्तर नाम ॥
 पंचानुत्तर नाम, धाम एका अवतारी ।
 तहां पूर्वभय चसे, रूपभजिन समकितपारी ॥
 ब्रह्मलोकसों भये, भये ब्रह्मा इदि भूपर ।
 तहाँ लोक कहान, देव ब्रह्मा सब ऊपर ॥ ४८ ॥

चौपाई ।

आदीश्वर युगादि शिवगामी । तीनलोकजनभंतरजामी ॥
 ऋषभदेव ब्रह्मा जगसाक्षी । जिन सब जैनधर्मविधि माक्षी ॥
 ऋषभदेवके अगनितनाऊं । कहों कहां लैं पार न पाऊं ॥
 वे अगाध मेरी मति हीनी । तातें कथा समाप्त कीनी ॥ ५०

पदपद ।

इहिविधि ब्रह्मा मये, ऋषभदेवाधिदेव मुनि ।
 रूप चतुर्मुख धारि, करी जिन प्रगट वेदधुनि ॥
 तिनके नाम अनंत, ज्ञानगर्भित गुणगूँसे ।
 मैं तेते घरणये, अरथ जिन जिनके वृँसे ॥
 यह शब्दब्रह्मसागर अगम, परमब्रह्म गुणजलसहित ।
 किमि लहै बनारसि पार पद, नर विवेक भुजबलरहित ॥ ५१ ॥

इति वेदनिर्णयप्रचालिका.

अथ त्रेशठशलाकापुरुषोक्ती नामावली.

बभ्रुवन्द ।

नमो त्रिनवर नमो त्रिनवरदेव श्रीवीग ।

नरद्वादश वक्रपर, नव मुहुन्द नव प्रतिनारायण ।

नव हलपर सकल मित्रि, प्रभु त्रेशठ शिवपथपरायण ॥

ए महंत त्रिभुवनमुकुट, परमधरमधनधाम ।

ज्यो ज्यो अनुक्रम अवतरे, त्योंत्यों वरनों नाम ॥ १ ॥

मोरदा ।

केई तद्भव सिद्ध, निरुद्धमय्य केई पुरुष ।

गुणागंठि उरविद्ध, सुमति शलाकापर मकर ॥ २ ॥

बभ्रुवन्द ।

कृपभजिनवर कृपभजिनवर भरतपर्वज ।

धीभजित त्रिनेत्र हुष, मगरपकि गंधवतीर्धर ।

अभिर्नदन सुमति त्रिन, पथपथ गुपारा धीश्रवर ॥

धीपन्द्रमधु गुविष त्रिन, धीमल त्रिन धेपाश ।

अभ्यप्रीव प्रतिहर मयो, हलपर विमल गुवेरा ॥ ३ ॥

मोरदा ।

हरि शिष्टि त्रिन जाय, बागुपूज्य त्रिन द्वादशम ।

तारक मतिहरि वाय, हलपर अचल द्विष्टि हरि ॥ ४ ॥

बभ्रुवन्द ।

विमल त्रिनवर विमल त्रिनवर केई मनिविष्णु ।

बल धर्म स्वयंभूहरि, जिन अनंत मधु प्रतिदामोदर ।
 बल सुप्रभ नाम हुव, पुरुषोत्तम हरि तामु सोदर ॥
 धर्म जिनेश निशुंभ प्रति, नारायण नरमेस ।
 राम सुदर्शन नाम हुव, हरि नरसिंह नरेस ॥ ५ ॥

सौरा ।

मध्वनाम चक्रेश, चक्री सनतकुमार हुव ।
 चक्री शांति नरेश, मयहु शांति जित शांतिकर ॥ ६ ॥
 वस्तुछन्द ।

कुंयु चक्री कुंयु चक्री, कुंयु सर्वेश ।
 अर सार्वभौम हुव, अर जिनेश प्रह्लाद प्रतिहरि ।
 बलभद्र मुनंदि हुव, पुंदरीक हरि बंधु तामु घर ॥
 सार्वभौम मुर्भौम हुव, बलि प्रतिहरि अवतार ।
 नन्दिमित्र बलदेव हित, केशव दत्तकुमार ॥ ७ ॥
 सौरा ।

पद्म चक्रि जिन मल्लि, विजयसेन पटसंडजित ।
 मुनिमुपेत हरि अति, चक्रवर्ति हरिपेण हुव ॥ ८ ॥
 वस्तुछन्द ।

मयहु रावण मयहु रावणनाम प्रतिकृष्ण ।
 रुपनन्दन राम हुव, वामुदेव लक्ष्मण गणिते ।
 नमि जिनवर नेमि जिन, जरासंध प्रतिहरि मणिते ॥

हलधर पदम गुरोरि हरि, ब्रह्मदत्त चक्रीस ।

पास जिनेश्वर वीर जिन, ये नर तीर्तत्रयीस ॥ ९ ॥

मोरछ ।

त्रिभुवनमाहि उदार, त्रेशठ पद उत्कृष्ट त्रिय ।

भाषिभूत उपचार, वन्दे चरण बनारसी ॥ १० ॥

भीष्मकर नामावली—पदपर ।

प्रपन्न अजित संभव विनन्द, अभिनन्द मुमति धर ।

श्रीपदमघ्न श्रीमुपास, चन्द्रमम जिनवर ॥

सुविधिनाथ दीतल श्रेयांसमनु वासुपूज्य धर ।

विमल अनन्त सुधर्म शांति जिन कुण्डुनाथ अर ॥

प्रभु मलिनाथ त्रिभुवनतिलक, मुनिमुव्रत नमि नेमि नर ।

पास जिनेश वीरेश पद, नमनि बनारसी ओर कर ॥ ११ ॥

चक्रपनिनाम—श्लोक ।

भरत सगर मधवा सनत्, कुँवर शांति कुंभेश ।

अर सुभीम पदमारुची, जय हर्षण ब्रह्मेश ॥ १२ ॥

प्रतिनारायण नाम—श्लोक ।

अधर्मीव तारक मधू, मेरु निर्गुण महलाद ।

सठिराजा रावण जरा, सन्ध मुमतिहरिवाद ॥ १३ ॥

नारायणनाम—श्लोक ।

त्रिषिप द्विषिष्ट स्वयंभु पुरु, पोचम नरसिंहेश ।

पुण्डरीक दत्तात्रिपति, ललमण हरिर्मथुरेश ॥ १४ ॥

बलमद्रनाम—रोहा ।

विजय अचल बल धर्मधर, मुप्रम सुदर्शन नाम ।

मुनेदि भेदिभिन्नेश रघु, नामपदम नवराम ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाशिवलालसुखशोधी नानावची

अथ मार्गणाविधान लिख्यते.

रोहा ।

यन्महं देव जुमादित्रिन, मुमरि मुगुरु मुनमाम् ।

चयदह मारगणा कटहुं, बाणहुं बागट माय ॥ १ ॥

बीपार ।

मजेम भयं अहारे कयांय । दरशन जाने जोगे गनि काय ।

नेदया गेमेदिन गेनी वेद । इन्द्रिय मदितयगुर्गभेद ॥ २ ॥

ए, भीदह मार्गणा मार । इनके बागट भेद उदार ॥

बागट मंगारी त्रिय भाव । इनहि उलंघि होय निवराव ॥ ३ ॥

गंजम मान मय द्वे भाव । त्रिविधि अहारी चार कयाव ॥

दर्शन चार आठविधि ज्ञान । जोग मीन गनि पारिधान ४

षट् काया नेदया षट् होय । षट् गमदिन गेनीरिधि होय ॥

वेद तीनविधि इन्द्रिय ध्वज । मकल टीक गनि बागट गेय ५

इनके नान भेद विचार । बाणहुं त्रिनशानो अनुगार ।

बागटमय स्थान पर जीव । कर नृत्य जगयाहि महीव ॥ ६ ॥

असंजम रूप विशेष । देशसंजमी दूजो भेष ॥
 सामायिक सुखधाम । चौथा छेदउद्यापन नाम ॥ ७ ॥
 पद परिहारि विशुद्धि । सुखम सांपराय पट बुद्धि ॥
 ख्यात चारित सातमा । सातों स्वांग परी आत्मा ॥ ८ ॥
 अभव्य स्वांग पर दुषा । करै जीव जग नाटक मुषा ॥
 हारक आहारी होष । नाचै जीव स्वांग पर दोष ॥ ९ ॥
 हं क्रोध अगनि लहलहे । कपहं अष्ट महामद गहे ॥
 हं मायामयी सरूप । कपहं मगन लोभ रसरूप ॥ १० ॥
 र कपाय चतुर्विध भेष । पर जिय नाटक करै विशेष ॥
 हं चक्षुदर्शनसों लसै । कहुं अचक्षुदर्शनसों बसै ॥ ११ ॥
 हं अवधि दर्शन सु प्रबुज । कहुं सुकेवलदर्शन पुंज ॥
 पर दर्शन मारगणा चारि । नाटक नटे जीव संसारि ॥ १२ ॥
 सुमतिज्ञान मिथ्यामति लीन । कुश्रुति कुआगममें परबीन ॥
 परी विभंगा अवधि अज्ञान । सुमति ज्ञान समकित परवान ॥ १३ ॥
 सुश्रुतिज्ञान परमागम गुणै । अवधि ज्ञान परमाारथ गुणै ॥
 मनपरजय जानहि मनभेद । केवलज्ञान प्रगट सब वेद ॥ १४ ॥
 एही आठ ज्ञानके अंग । नवै जीव इनरूप रसंग ॥
 मनोजोगमय होय कदाचि । बोलै वचन जोगसों राचि ॥ १५ ॥
 कायजोगमय मगन स्वकीय । नाचै त्रिविधि जोग पर जीया ॥
 सुगति पाय करै सुखभोग । सममुखदुख नरगति संजोगा ॥ १६ ॥
 पटुदुख अल्पमुखी तिरजब । नरक महादुख है मुरार रंज ॥
 चहुंगति जन्मन मरण कलेस । नटे जीव नानारसभेस ॥ १७ ॥

पृथिवी काय देह त्रिय धरै । अपकायिकमय द्वे अवतारै
 अग्निकायमहि तपत म्बमाय । वायुकायमहि कहिये वाय
 वनमपती रूपी दुग्धमूल । लहि व्रसकाय धरै तन धूल
 पटकाया पटविधि अवतार । धरि धरि भरै अनन्ती बा
 धरै कृष्णलेश्या परिणाम । नीललेश्यमय आतमराम ॥
 फिर धरै लेश्या कापोत । सहज पीतलेश्यामय होत ॥
 चेतन पद्मलेश्य परिवान । करै शुक्ललेश्या रसपान ।
 इहिविधि पट लेश्या पद पाय । जगवामी शुभ अशुभ कमा
 धर मिथ्यात्व झूठ सरददै । यमि समकित मामादन ग
 सत्य असत्य मिश्र ममकाल । सीधे समकित क्षायक चा
 उपगम बोध धरै बहुवार । वेदै वेदकल्प विचार ॥
 धर पट समकित स्वाग विधान । करै नृत्य त्रिय जान अज
 सेनीरूप अगेनीरूप । दुधिमिथ्याग त्रिय धरै अनु ॥
 गुरुवेद गृण अगनि उछाह । त्रियवेदी कारीमादाह ॥
 वनदवदाह नपुमछवेद । नरै जीव धर रूप त्रिभेद ॥
 सागगमादि इकेन्द्री होय । प्रम गंगादिक इन्द्रिय दोषा
 लिखिछादिक इन्द्री तीनि । भौगिन्द्रिय त्रिय प्रमरादी
 पंचेन्द्री देवादिह देह । मय सागटि सागगणा पद ॥
 ज्ञान त्रिय सागगणात्मा । भावकाय भये भवद्वय ॥
 सब सागगणा मृद डोहद । नय शिव साँगे भग्न भवेदा ॥

रोहा ।

ये पासठ विधि जीवके, तनसम्बन्धी भाव ।

सज मनबुद्धि बनारसी, कीजे मोक्ष उपाय ॥ २८ ॥

इति कामठ मार्गण विधान.

अथ कर्मप्रकृतिविधान लिख्यते.

वस्तुच्छन्द ।

परमशंकर परमशंकर, परमभमवान्,

परमप्र अनादि निष, अत्र अनेत गणपति विनायक ।

परमेश्वर परमगुरु, परमपंथ उपदेगदायक ॥

इत्यादिक बहु नाम धर, जगतपंथ जिनराज ।

जिनके वरण बनारसी, वंदै निखटितकाज ॥ १ ॥

रोहा ।

नमो केशरीके वचन, नमो आत्मराम ।

कहौ कर्मकी प्रकृति सब, भिन्न भिन्न पद नाम ॥ २ ॥

बीरार्द्र. (१५ भाग)

एकदि करम आटविधि दीस । प्रकृति एकसौ अहतानीस ॥

जिनके नाम भेद विचार । वरणहुं जिनवाणी अनुरार ॥ ३ ॥

मध्यमकर्म ज्ञानावरणीय । जिन सब जीव अज्ञानी बीव ॥

द्विनिष दर्शनावरण पहार । जाकी ओट जलम्ब करतार ॥ ४ ॥

सीजा कर्म बेदनी जान । नामों निगवाध गुणदान ॥

बोधा महामोह जिन मने । ओसकवित अरु बारित हने ॥ ५ ॥

पंचम आवकरम परधान । हनै शुद्ध अवगाहप्रमान ॥

छटा नामकर्म विरतंत । करहि जीवको मूरतिवंत ॥ ६ ॥

गोत्र कर्म सातमों वस्थान । जासों ऊंच नीच कुल मान ॥

अष्टम अन्तराय विख्यात । करै अनन्तशक्तिको पाठ ॥ ७ ॥

रोहा ।

ए ही आठों करममल, इनमें गर्भिण जीव ।

इनहि त्याग निर्मल भयो, सो शिवरूप सदीय ॥ ८ ॥

चंगाई ।

कहो कर्मतरु डाल सरीस । प्रकृति एकमो अद्वितीय ॥

मतिज्ञानावरणी जो कर्म । गो आवरि सार्व मतिधर्म ॥ ९ ॥

श्रुतिज्ञानावरणी पल जहा । शुभश्रुतज्ञान कुं नहि तहा ॥

भरधिज्ञानभावरण उदोन । जियको अविज्ञान नहि होत ॥ १० ॥

मनपरजयभावरण समान । नहि उपजे मनपरजय शान ॥

केवलज्ञानावरणी कृप । तामहि सांभन केवलरूप ॥ ११ ॥

वरणी ज्ञानावरणकी, प्रकृति पंचपरकार ।

अब दर्शन आवरण तरु, कहहुं तागु नरु डार ॥ १२ ॥

पशुदर्शनावरणी वष । जो जिय करै होदि गो अप ।

अश्वपशुदर्शनावरण बंधेव । अवद करम रग गंध न बंधे ॥ १३ ॥

अग्निदर्शनावरण उदोन । विमल अविदर्शन नहि होत ॥

केवलदर्शनावरण तहा । केवलदर्शन होष न तहा ॥ १४ ॥

न्यानर्षदि निदावन पर । गो प्राणी शिरोव बन्धे ॥

नहि नहि बंधे बंधे कणु बान । करै प्रवद कर्मउपरात ॥ १५ ॥

निद्रानिद्रा उदय स्वकीव । पलक उपाड़ मकै नहि जीव ॥
 प्रचलाप्रचला जावतकान्न । चंचल अंग बहै मुर लान १६
 निद्रा उदय जीव दुस भँर । उठ चाँकै बैठे गिरि परे ॥
 रहे आँख प्रचलासों घुनी । आधी मुद्रित आधी खुली १७
 सोयवमाहि मुरति फलु रहै । बारबार लघु निद्रा गहै ॥
 इति दर्शनावरणि नवपार । कहों येदनी द्वयपरकार ॥ १८ ॥

दोहा ।

साता करम उदोतसों, जीव विषयमुरा वेद ।
 करम असाताके उदय, जिय बेदे दुख खेद ॥ १९ ॥

बीरह ।

अब मोहिनी दुविधिगुरुभने । इक दरशन इक पारित दन ॥
 दर्शनमोह तीन विधि दीस । पारितमोह विधान पचीस २०
 प्रथम मिथ्यातमोहकी दौर । जिय सरदह औरकी और ॥
 दूसरी मिथमोहकी पाल । सत्य असत्य गहै समकान्न ॥ २१ ॥
 समकितमोह तीसरी दशा । करै मटिन समकितकी रमा ॥
 अब कषाय सोलहविधि कहों । नोकषाय नवविधि सरदहो २२
 प्रथमकषाय कहाने कोष । जाके उदय छिमागुण लोप ।
 द्विनियकषाय मान परबंद । विनय विनाश करै रातखंड ॥ २३ ॥
 तीजी मायारूप कषाय । जाके उदय सरलता आय ॥
 लोभकषाय चतुर्थमभेद । जामु उदय सेनोष उठेद ॥ २४ ॥

ते तिराणवे कहूं बखान । पिंड अपिंड वियालिस जान ॥

प्रथमपिंड प्रकृती गतिनाम । मुर नर पशु नारक दुखधाम ॥ ४१ ॥
मोरदा ।

सुरगतिमों मुर गेह, नरशरीर नरगति उदय ।

पशुगतिमों पशुदेह, नरकबसावे नरक गति ॥ ४५ ॥

चौपाई ।

चहुंगति आनुपूर्वी चार । द्वितिय पिंड प्रकृती अवधार ॥

मरण समय तज देह स्वीकिय । परमव गमन करै जब जीव ॥ ४६ ॥

आनुपूर्वी प्रकृति विरेरि । भावीगतिमें आनि पेरि ॥

आनुपूर्वी होय महाय । गहै जीव नूनन परजाय ॥ ४७ ॥

तृतीय प्रकृति इन्द्रिय अधिकार । इग दुग तिग चतु पंच विचार ॥

कर्मगमन नामा दृग कान । जयाजोग जिय नाम बमान ॥ ४८ ॥

तन इन्द्रिय धारि जो कोय । मुन नामा दृग कान न होय ॥

गो पंचन्द्रिय धावर काय । मृ जल अगनि वनस्पति वाय ॥ ४९ ॥

आंक तन रमना द्वय धोक । मंग मिदोला जडचर ओक ॥

इत्यादिक जो जंगम जन्त । ते छे इंद्री कहै मिदुल ॥ ५० ॥

आंक तन मुन नाक हनूर । पुन विनीविद्या कानगनूर ॥

इत्यादिक न इन्द्रिय जीव । आंस कानगो रहत मरीच ॥ ५१ ॥

आंक तन रमना नाजा आंसि । विच्छु मजम दीह अकिमानि ॥

इत्यादिक ते आनमगम । ते जगमें चौइंद्री नाम ॥ ५२ ॥

देह गमन नामा दृग कान । तिनके ते पंचेंद्री जान ॥

नर नारकी देव निरावंच । इन चारहुके इंद्री पंच ॥ ५३ ॥

चौथी प्रकृति शरीर विचार । औदारिक वैक्रियक अहार ॥
 तेजस कार्माण मिल पेच । औदारिक मानुष तिरजेंच ॥ ५४ ॥
 वैक्रिय देव नारकी धरे । मुनि तपबल व्याहारक करे ॥
 तेजस कार्माण तन दोय । इनको सदा धरे सबकोय ॥ ५५ ॥
 लंबी उदय तथा तिन गही । चौथी पिंड प्रकृति यह कही ॥
 अथ वंपन संधानन दोय । प्रकृति पंचमी छठवीं गोय ॥ ५६ ॥
 वंपन उदय काय संधान । संघातनसों रिद संधान ॥
 दुहुंकी दरा दाखा द्वय स्वध । जथाजोय काया संबंध ॥ ५७ ॥
 अथ ग्रातमी प्रकृति परसंग । कठों तीन तन अंग उपंग ॥
 औदारिक वैक्रियक अहार । अंग उपंग तीन तनधार ॥ ५८ ॥

रोष ।

मिर नितंब उर पीठ करि, जुगल जुगल पर टेक ।
 भाठ अंग ये तनविषे, और उपंग अनेक ॥ ५९ ॥
 तेजस कार्माण तन दोय । इनके अंग उपंग न होय ॥
 कहहुं आठमी प्रकृति विचार । वद् संस्थान रूप आकार ६०
 जो सर्वग धार परधान । सो है समचतुरस संठान ॥
 ऊपर धूल अधोगत एम । सो निगोधपरिमंडल नाम ॥ ६१ ॥
 हेट धूल ऊपर कृश होय । सात्विक नाम कहावै सोय ॥
 कवर सहित वक्र धनु जायु । कुबज अकार नाम है तासु ॥ ६२ ॥
 लघुगुभी लघु अंग विधान । सो कहिये कायन संठान ॥
 जो सर्वग अगुंदर मुंड । सो संठान कहावै हुंड ॥ ६३ ॥

कही आठमीप्रकृति छमेद । अब नौमी संहनन निवेद ॥
 है संहनन हाड़को नाम । सो पञ्चविधि बंधे तन धाम ॥ ६४ ॥
 वज्र कील कीलित संधान । ऊपरि वज्रपट्ट बंधान ॥
 अंतर हाड वज्रमय बाच । सो है वज्रगृपभनाराच ॥ ६५ ॥
 जहँ सब हाड़ वज्रमय जोय । वज्रमेख सो अविचल होय ॥
 ऊपर वेदरूप सामान । नाम वज्रनाराच वखान ॥ ६६ ॥
 वज्र समान होहिं जहँ हाड । ऊपर वज्ररहित पट आड ॥
 वज्ररहित कीलीसों विद्ध । सो नाराच नाम परसिद्ध ॥ ६७ ॥
 जाके हाड़ वज्रमय नाहिं । अर्द्धवेष कीली नसमाहिं ॥
 ऊपर बेठबंधन नाहिं होय । अर्द्धनाराच कहावै सोय ॥ ६८ ॥
 जहां न होय वज्रमय हाड । नाहिं पटबंधन कीली गाड ॥
 कीली विन दिड बंधन होय । नाम कीलिका कहिये सोय ६९ ॥
 जहां हाड़सों हाड़ न बंधे । अमिल परस्पर संधि न संधे ॥
 ऊपर नसाजाल अरु चाम । सो सेवट संहनन नाम ॥ ७० ॥
 ये संहनन छविधि वरणई । नवमी प्रकृति समापति भई ॥
 दशमी प्रकृति गमन आकाश । ताके दोय भेद परकाश ७१
 रोहा ।

शुभविहाय गनिके उदय, मली चाल त्रिय धार ।

अशुभविहाय उदोतसों, ठाने अशुभ विहार ॥ ७२ ॥

परिच्छन्द ।

अब कहूँ ग्यारही प्रकृतिसंच । जो वरणभेद परफार पंच ॥

मित्र अरुण पीत दुति हरित श्याम । ये वर्ण प्रकृतिके पंच नाम ७३

ओ दणं प्रहृति लोके उदोन । ताको घरीर निह बर्ष होत ॥
 रग नाम प्रहृति बागमी जान । गो पंचभेद विवरण परान ७४
 बहु मधुर निष्क आमन्त्र कषाय । रमउदय रमीनी होय काय ।
 जाओ जो रग प्रहृती उदोन । ताके तन तेसो साद होत ७५
 तेगही प्रहृति गंधमयी होय । दुर्गंध गुगन्ध प्रकार होय ॥
 ओ जीव ओ प्रहृति करे बंध । रिह उदय सामु तन सोद गथ ७६
 अथ काम नाम धौरवी पानि । निम कटो थाठ तास्त बस्त्रानि ॥
 बीकनी रण बोमन्त्र कटोर । रुपु भारी शीतल सप्त ओर ॥ ७७ ॥

रोदा ।

प्रहृति बीकनीके उदय, गंदे बीकनी देह ।
 रुमी प्रहृति उदोनमो, रुमीकाया मेह ॥ ७८ ॥
 बठिन उदयमो बठिन तन, मृदु उदोत मृदु अंग ।
 तपनउदयमो तपनतन, शीतउदय शीतंग ॥ ७९ ॥

वररि ठं ।

अहं भारी नाम परकृति उदोत । सहं भारी तनपर जीव होत ॥
 लघुप्रकृति उदयपर जीव जोय । अति हरहं काया परे सोय ८०
 ए पिंडप्रकृति दणचार मास्ति । इनहीकी पैमठ कही सास्ति ॥
 अथ अहावीम अपिण्ड टानि । तिनके गुप्तरूप कही बस्त्रानि ८१
 जय प्रकृति अगुरुलघु उदयदेय । तब जीव अगुरुलघु तन परेय
 उपपात उदय सो अंग व्याप । जासो दुरत पावे जीव आप ॥ ८२ ॥

परधात उदयसौ होय अंग । जो करै औरको प्राण भंग ॥
 उस्सासप्रकृति जब उदय देय । तब प्राणी सास उसास लेय ८३
 आतप उदोत तन जया मान । उचोत उदय तन शशि समान
 त्रस प्रकृति उदय घर जीव जोय । जंगम शरीरघर चले सोय ८४
 थावर उदोतघर प्राणघार । लहि धिर शरीर न करै विहार ॥
 सूक्ष्म उदोत लघु देह जास । सो मारै मरै न और पास ८५
 बादर उदोत तन धूल होय । सबहीके मारै मरै सोय ॥
 परजापति प्रकृति उदय करंत । जिय पूरी परजापति धरंत ८६
 जो प्रकृति अपर्जापत धरेंय । सो पूरी परजापत न लेय ॥
 प्रत्येक प्रकृति जाके उदोत । सो जीव बनस्पति काय होत ॥ ८७ ॥
 जब तुचा फाठ फल फूल पान । जहँ बीज सहित जियराशिसात ॥
 जो एक देहमें जीव एक । सो जीवराशिकहिये प्रत्येक ॥ ८८ ॥
 प्रत्येक बनस्पति द्विविधिजान । सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित बसान ॥
 जो धारै राशि अनन्तकाय । सो सुप्रतिष्ठित कहिये सुभाय ॥ ८९ ॥
 जामें नहि होय निगोदघाम । सो अप्रतिष्ठित प्रत्येकनाम ॥
 अब माधारणबनस्पति काय । सो सूच्छम बादर द्विविधि थाय ९०
 सूच्छम निगोद जगमें अमेय । बादर यह दूजा नामधेय ॥
 धरि भिन्न भिन्न कामाण काय । मिनि जीव अनन्त इकत्र आय ९१
 समहदि एक नो कर्म देह । तिम कारण नाम निगोद एह ॥
 सो पिण्ड निगोद अनन्तरास । जियरूप अननानेत माम ॥ ९२ ॥

भर रहे लोकनभमें मदीब । ज्यों घड़ामाहि भर रहे पीव ॥
 सुशम अरु बादर दोय साम । पुनि नित्य अनित्य दुभेद भास ९१
 जो मोनकरूपी पंचधाम । अदर खंडर इत्यादि नाम ॥
 ते सातनरकके हेट जान । पुनि सकललोकनभमें बरतान ॥ ९२ ॥
 रोदा ।

एक निगोद सरीरमें, जीव अनंत अपार ।
 धरें जन्म सब एकटे, मरहि एक ही बार ॥ ९५ ॥
 मरण अठारह बार कर, जनम अठारह बेव ।
 एक म्यास उम्यासमें, यह निगोदकी टेव ॥ ९६ ॥
 एक निगोदसरीरमें, एते जीव बस्तान ।
 तीन कालके सिद्ध सब, एक अंश परिमान ॥ ९७ ॥
 बंन न सिद्ध अनंतता, पटै न राशि निगोद ।
 जैसेके नैसे रहें, यह विनवचनविनोद ॥ ९८ ॥
 तानें पान निगोदकी, कहे कदाँलौ कोय ।
 साधारण प्रकृतीउदय, जिय निगोदिया होय ॥ ९९ ॥
 यह साधारण प्रकृतियों, बरणी चौदह सास ।
 बाकी चौदह जे रहें, ते बरणों मुम भास ॥ १०० ॥
 पदसिद्ध ।

धिरप्रकृति उदयधिरता अभय । अशिर उदोतसों अधिर अंग ॥
 शुभप्रकृतिउदय शुभगीति सर्व । जहं अशुभउदय तहं अशुभपर्व ॥
 सौभागप्रकृति जाके उदोत । सो प्राणी सबको इष्ट होत ।
 दुर्भागप्रकृतिके उदय जीव । सबको अनिष्ट लागै सदीव ॥ २ ॥

जहँ सुस्वरप्रकृति उदय बसान । तहँ कंट कोकिल मवुरवान ॥
 जो दुस्वरप्रकृति उदोत धार । ताकी ध्वनि ज्यों गर्दभपुकार ॥३॥
 आदेयप्रकृति जाके उदोत । ताको बहु आदर मान होत ॥
 जब अनादेयको उदय होय । तब आदर मान करै न कोय ॥४॥
 जसनाम उदय जिस जीव पाहिं । ताकी जस कीरति जगतमाहिं ॥
 जहँ प्रगट मालमहँ अजसरस । तहँ अपजस अपकीरति विशेष ५
 निर्माणचितेरा उदय आय । सब अंगउपग रचै बनाय ॥
 तीर्थकरनामप्रकृति उदोत । लहि जीव तीर्थकरदेव होत ॥ ६ ॥

कोहा ।

ये निगनवे और दश, तनसंबन्धी आन ।

मिलहिं एकसोतीन सब, होहिं नामकी वान ॥ ७ ॥

चाँपाई ।

नामप्रकृति संपूरण भई । पिंड अपिंड कही जो जुई ॥
 पिण्डप्रकृति चौदह बनि रही । तिनकी पैसठ शाखा कही ॥८॥
 अष्टादस अपिंड बरनई । ते सब मिलि तिगनवे भई ॥
 दरनों गोतकरम सातमा । जासों ऊंच नीच आतमा ॥ ९ ॥
 ऊंचगोत उद्योत प्रवान । होवै जीव उच्चकुलवान ॥
 नीचगोत फलसंगति पाय । जीव नीचकुल उपजै आय ॥१०॥
 गोत्रकर्मकी द्वयप्रकृति, तेह कही बसानि ।
 अंतराय अब पंचविधि, तिनकी कहों कहानि ॥ ११ ॥

अन्तराय अष्टम बटमार । सो है भेद पंच परकार ॥

अन्तराय तरुकी है डार । निहचै एक एक विवहार ॥ १२ ॥

कहौ प्रथम निहचैकी सार । जामु उदय आतमगुण घात ॥

परगुन त्याग होहि नहि जहां । दान अन्तराय कहि सदा ॥ १३ ॥

आतमतन्त्रलामकी हान । लामअन्तराई सो जान ॥

जबहो आतमभोग न होय । भोगअन्तराई है सोय ॥ १४ ॥

भारभार न जमै उपभोग । सो है अन्तराय उपभोग ॥

अष्टकर्मको करै न जुदा । बीरज अन्तरायका उदा ॥ १५ ॥

निहचै कही पंच परकार । जब गुन अन्तराय विवहार ॥

उनीचमु फटु देय न सकै । दान अन्तराई बन दकै ॥ १६ ॥

उघम करै न सपति होय । लाम अन्तराई है सोय ॥

विषयभोग सामग्री उती । जीव न भोग कर सकै रंती ॥ १७ ॥

रोग होय के भोग न जुँर । भोगअन्तरायवन फुरै ॥

एक भोगगामग्री सार । साकी भोग जु कारेवार ॥ १८ ॥

कीजै सो कहिये उपभोग । साहू को न जुँर संभोग ॥

यद उपभोगपानकी कथा । बीरजअन्तराय सुन जया ॥ १९ ॥

शक्ति अनन जीवकी कही । सो जगदशमादि दष रही ॥

जगमें शक्ति कर्मआधीन । कबहु सफल कबहु बनहीन ॥ २० ॥

तनरन्ध्रियवन फुरै न जहां । बीरजअन्तराय है सदा ॥

सातें जगतदशा परवान । नव राग्य भासी भगवान ॥ २१ ॥

जैनग्रन्थरत्नाकरे

दोहा ।

ये वरणी व्यवहार की, अन्तराय विधि पंच ॥
 अन्तर बहिर विचारतें, । संशय रहै न रंच ॥ २२ ॥
 स्याद्वाद जिनके वचन, । जो माने परमान ।
 सो जानै सब नयदशा, । और न कोऊ जान ॥ २३ ॥
 सर्वपातियाकी प्रकृति, । देशपातियावान ॥
 बाकी और अपातिया, । ते सब कहों वस्तान ॥ २४ ॥
 लज्जानावरणी वान । केवलदरशआवरण जान ॥
 पंच चौकरी तीन । प्रकृती द्वादश लीजे चीन ॥ २५ ॥
 तबंध अमत्याख्यान । मत्याखान चौक त्रिक जान ॥
 मिथ्या मिश्रित मिथ्यात । एकवीस प्रकृति सब पात २६
 दोहा ।

पातियाकी कही । विंशति एक वस्तान ।
 वरणों छबीसविधि । देशपातिया वान ॥ २७ ॥
 बीपाई ।

लज्जानावरणी विना । बाकी चार आवरण गिना ॥
 लदरशआवरण छोड़ । बाकी तीनों लीजे जोड़ ॥ २८ ॥
 भेद संग्रहलनकपाय । नयविधि नोकपाय समुदाय ॥
 यप्रकृति मिथ्यात वस्तान । अन्तरायकी पांचों वान ॥ २९ ॥
 छबीस प्रकृति सब भई । देशपातियाकी वरनई ॥
 रही एकसौ एक । ते सब कही पानि अतिरेक ॥ ३० ॥

म
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९
३०
३१
३२
३३
३४
३५
३६
३७
३८
३९
४०
४१
४२
४३
४४
४५
४६
४७
४८
४९
५०
५१
५२
५३
५४
५५
५६
५७
५८
५९
६०
६१
६२
६३
६४
६५
६६
६७
६८
६९
७०
७१
७२
७३
७४
७५
७६
७७
७८
७९
८०
८१
८२
८३
८४
८५
८६
८७
८८
८९
९०
९१
९२
९३
९४
९५
९६
९७
९८
९९
१००

दोहा ।

द्विविधिगोत्र द्वय वेदनी । आयु चारविधिज्ञानि ॥
मिल तिरानये नाम की एकोत्तरद्वयत वानि ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

जे घातहिं सय आतमदर्ब । ते ही कही पातिया सर्व ॥
जे कछु पात करहिं कछु नाहिं । देसपातिया ते इन माहिं ॥ ३२ ॥
जे न करहिं आनमबल पात । ते अपातिया कही बिह्यात ॥
अब सुन पुण्यपापके भेद । भिन्न भिन्न सय कहों निवेद ३३
एक सातावेदनी स्वभाव । नरकआयु बिन तीनों आव ॥
ऊंचगोत्र मानुषगति भली । मानुषआनुश्रवी रली ॥ ३४ ॥
सुरगति सुरानुश्रवि जान । जात पैवेन्द्री एक बस्तान ॥
पंच शरीर पंच सपात । मंथनसहित पंचसंगात ॥ ३५ ॥
अंग उपग तीनविधि भाम । बिंशति वर्ष मंथ रस फास ॥
पहिला समचतुरम् गंटान । मन्त्रगृषभनासाच बरान ॥ ३६ ॥
भली बाल आतप उघोत । पर परपात अगुरुन्धु होत ॥
साग उसास प्रतेक मवान । भ्रस बादर पर्यापत जान ॥ ३७ ॥
मिर शुभ शुभग गुप्तर आनेय । जसनिर्माण तीर्थकर धेम ॥
पुण्यप्रवृत्तिकी अडसठ वान । पापप्रवृत्ति अब कहों बस्तान ३८
सर्वपातियाकी इकवीस । देसपातियाकी छन्नीस ॥
ये सेतालिस प्रवृत्ती कही । बाकी और कहहुं जो रही ॥ ३९ ॥

प्रकृति असाता नीचकुल, नरकआयु गति दोय ।

पशु नारकि इन दुहुनकी, आनुपूर्वी जोय ॥ ४० ॥

चार जाति पंचेन्द्रो विना । पंचसंहनन प्रथम न गिना ॥

समचतुरसविन पंचअकार । वर्णादिक विंशति परकार ॥ ४१ ॥

बुरी चाल थावर उपधात । सूक्ष्म साधारण विस्म्यात ॥

अनादेय अपर्याप्त दशा । दुर्भग दुस्वर अशुभ अपजशा ४२

अधिरसमेत एकसो वान । ए सब पापप्रकृति परवान ॥

केती बंध उदय केतीक । तिनकी बात कहो अब टीक ॥ ४३ ॥

बोदा ।

चारबंध वरणादिमें, नाकी मोलह नाहि ।

एक बंधमिथ्यातमें, द्वै गर्भित इसमाहि ॥ ४४ ॥

तनबंधन सघानकी, प्रकृति पंचदश जान ।

पंच बंध दश बंध विन, ये अट्टाईस वान ॥ ४५ ॥

अट्टाईसको बंध नाहि, बंध एकसोबीस ॥

इनमें दोय बडादये, होहि उदयवावीस ॥ ४६ ॥

बीसाई ।

बंध उदय विशेष यह बात । एक मिथ्यान तीन मिथ्यात ॥

एई दोय अधिक परनर्द । प्रकृति एकसोबाधिम भर्द ॥ ४७ ॥

अब विनाक वरनो विधि चार । पुट्टल जीव क्षेत्र मय धार ॥

जे पुट्टलविनाककी वान । ते वामठविधि कहो बखान ॥ ४८ ॥

पंच शरीर संधर्मपान । अंग उपंग अठारह वान ॥
 एह मंडनन एहो मंडान । पर्णादिक गुन बीस वरान ॥४९॥
 धिर उदोन आनप निरमान । अधिर अगुरुन्धु अशुभ विधानः॥
 भाधारण प्रतेक उपपान । शुभ परपात सुवागठ पात ॥ ५० ॥
 जीव विपाक अठार गनी । त्रिविधि गोत्र द्वयविधि वेदनी ॥
 सर्वपान अरु देशविपात । गिताहीस प्रकृति विख्यात ॥५१॥
 तीर्थकर पाश्चर उष्याम । सूक्ष्म परजापत परकास ॥
 अपरजापति सुम्बर गेय । दुम्बर सनादेय आरेय ॥ ५२ ॥
 जग अपजस त्रय धापर वान । दुर्भग शुभग चाल द्वयजान ॥
 हन्त्री जानि पचविधि गद्दी । गति चारो एनी मय कद्दी ॥५३॥
 दोहा ।

जीवविपाकीकी कद्दी, प्रकृति अठार ठौर ॥
 क्षेत्रविपाकी अब कद्दी, भवविपाकिनी और ॥ ५४ ॥
 आनुपूर्वी चार विधि, क्षेत्रविपाकी जान ।
 चार आनुवन्की प्रकृति, भवविपाकिया वान ॥ ५५ ॥
 पानि अपानी त्रिविधि कद्दे, पुण्य पाप द्वय पाक ।
 पप उदय दोऊ कद्दे, घरने चार विपाक ॥ ५६ ॥
 अब इन आठो करनकी, दिति जपन्य उत्तरहृष्ट ।
 कद्दी वान सक्षेपसो, मुनो कान दे इष्ट ॥ ५७ ॥

बीनार्द ।

शानावरणीकी चिनि दीस । कोडाकोडीसागरतीस ॥
 यह उत्कृष्टदसा परवान । एकमुहूर्त जपन्य वरान ॥ ५८ ॥

द्वितीय दर्शनावरणीकर्म । धिनि उत्कृष्ट कहों मुन मर्म ॥
 कोडाकोडी तीस समुद्र । एकमुहुरतकी धिति धुद्र ॥ ५९ ॥
 तीजा कर्म वेदनी जान । कोडाकोडीतीस वसान ॥
 यह उत्कृष्ट महाधिति ज्ञेय । जघन मुहुरतवारह होय ॥ ६० ॥
 चौथा म्दानोह परधान । धिति उत्कृष्ट कही भगवान ॥
 सागरसत्तरकोडाकोडि । लघुधिति एकमुहुरत जोडि ॥ ६१ ॥
 पंचम आयु कही जगदीस । उत्कृष्टी सागर तेतीस ॥
 धिति जघन्य सुमुहुरतएक । यों गुरु कही विचार विवेक ॥ ६२ ॥
 छटा नामकर्मधिति कहों । कोडाकोडि बीस सरदहों ॥
 सागर यह उत्कृष्टविधान । आठमुहूर्त जघन्य वसान ॥ ६३ ॥
 गोत्रकर्म सातवां सरीस । उत्कृष्टी धिति सागम्बीस ॥
 कोडाकोडिकाल परमान । लघुधिति आठ मुहुरतमान ॥ ६४ ॥
 अष्टम अंतराय दुखदानि । उत्कृष्टी धिति कहों वसानि ॥
 सागरकोडाकोडी तीस । लघुधिति एकमुहुरत दीम ॥ ६५ ॥
 वरनी आठों कर्मकी, । धिति उत्कृष्ट जघन्य ॥
 पाकी मध्यम और धिति, । ते असम्बन्ध अन्य ॥ ६६ ॥
 अन वरनों पत्थोपमकाल । तथा मागरोपमकी चाल ॥
 कृपमरे जे रोम अपार । ते वरने नाना परकार ॥ ६७ ॥
 पत्थोपमके भेद अनेक । ताँने यहां न वरना एक ॥
 जोवन कृप रोमकी बाल । कही जैनमतमें विख्यान ॥ ६८ ॥

कृपकथा जैसी फातुं कही । सो पत्योपम कहिये सही ॥
पत्योपम दस कोड़ाकोड़ि । सब एकत्र कीविये जोड़ि ॥६९॥
एक सागरोपम सो काल । यह प्रमान जिनमतकी बाल ॥
यहै सागरोपमकी कथा । यदा गुनी मैं बरणी तथा ॥ ७० ॥

आठकर्म अटतालसों, प्रकृतिभेद विस्तार ।

कै जानै जिन केबली, कै जानै गनधार ॥ ७१ ॥

अल्पबुद्धि जैसी मुझ पादि । तैसी मैं बरनी इसमादि ॥
पंडित गुनी हंसो मत कोय । अल्पमती भाषाकवि होय ॥७२॥

कर्मकांड आगम भगम, यथाशक्ति मन जान ।

भाषा मैं रचना कही, बान्योपमें जान ॥ ७३ ॥

कल्पा-गीताछन्द.

यह कर्मप्रकृतिविधान अविचल, नाम ग्रन्थ सुहावना ।
इसमादि गर्भित सुपुत्रवेतन, गुप्त बारह भावना ॥
जो जान भेद बखान सरदहि, दान्द अर्थ विचारसी ।
सो होय कर्मविनाश निर्मल, शिवस्वरूप वनारसी ॥ ७४ ॥

होश ।

संयत् सत्रहसौ समय, पात्रगुणमास बसन्त ।

फातु शशिपासर सप्तमी, तब यह भयो सिद्धंत ॥ ७५ ॥

इति श्रीकर्मप्रकृतिविधान.

अथ कल्याणमन्दिरस्तोत्र भाषानुवाद.

दोहा

परमज्योति परमात्मा, परमज्ञान परवीन ।

बंदों परमानंदमय, घट घट अंतरलीन ॥ १ ॥

भाषार्थ । (१५ मात्रा.)

निर्भयकरन परम परधान । भवसमुद्र जलतारण जान ॥

शिवमन्दिर अपहरण अनिन्द । वन्दहुं पासचरणअरविन्द ॥२॥

कमठमानभंजन घरवीर । गरिमासागर गुणगंभीर ॥

सुरगुरु पार लहे नाहिं जासु । मैं अज्ञान ज्यों अस तामु ॥३॥

प्रमुखरूप अति अगम अघाह । क्यों हमसे इह होय निवाह ॥

ज्यों दिनभंघ उलझो पोत । कहि न सकं रविकिरनउदोत ४

मोहहीन जानै मनमाहि । तोउ न तुमगुण वरणें जाहिं ॥

प्रलयपयोधि करै जल धौन । प्रगटहि रतन गिनै तिहि कौन ५

तुम असंख्य निर्मलगुणस्नानि । मैं मतिहीन कहों निजबानि ॥

ज्यों बालक निज बांह पसार । सागरपरिमित कहे विचार ६

जो जोगीन्द्र करहि तप सेद । तउ न जानहि तुमगुणभेद ॥

भगतिभाव मुख मन अभिलास । ज्यों पंखी बोलहि निज भास ७

तुम जममहिमा अगम अपार । नाम एक त्रिमुवन आधार ॥

आव पवन पद्मसर होये । प्रीपमतपन निवारै मोय ॥ ८ ॥

तुम आवत भविजन मनमाहिं । कर्मनिबंध शिथिल हो जाहिं ॥
 ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर । दरहिं भुजङ्ग लगे चहुओर ॥९॥
 तुम निरस्तजन दीनदयाल । संकटते छूटहि ततकाल ॥
 ज्यों पशुपेर लेहिं निशिचोर । ते तत्र भागहि देखत भोर १०
 तू भविजन तारक किम होइ । ते चित धार तिरहि ले सोइ ॥
 यह ऐसैं करि जान समाउ । तिरै मसक ज्यों गर्भितदाउ ११
 जिन सब देव किये पदा याम । तैं छिनमें जीत्यो सो काम ॥
 ज्यों जल करै अभिकुलदानि । बड़वानल पीये सो पानि ॥१२॥
 तुम अनन्त गरुषा गुण लिये । क्योंकरभक्ति धरूं निजहिये ॥
 हे लघुरूप तिरहि संसार । यह प्रभुमाहिंमा अकथ अपार १३
 कोप निवार कियो मनचांति । कर्म गुमटजीते किहि भांति ॥
 यह पटतर देसहु संसार । नीलवृक्ष ज्यों दहं तुसार ॥ १४ ॥
 मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्धरूप समध्यावहिं सोहि ॥
 कमलकर्णिका विन नहि और । कमलबीज उपजनकी टौर १५
 जब तुह ध्यानधरै मुनि कोय । तब विदेह परमात्म होय ॥
 जैसें धातु शिलातन त्याग । कनकम्बरूप धरै जब आग १६
 जाफे मन गुम करहु निवास । विनस जाय क्यों विमद सात ॥
 ज्यों मदन्त विच आवै कोय । विमद मूढ निवारै सोय ॥१७॥
 करहिं विनुष जे आत्म ध्यान । तुम प्रभावते होय निदान ॥
 जैसें नीर मुषा अनुमान । पीवत विष विकारकी हान ॥१८॥

मनवांछित फल विनपदमाहि । मैं पूरव भव पूजे नाहि ॥

माया मगन किरचो अज्ञान । करहि रंकवन मुझ अपमान ३७

मोदतिमर छायो हग मोदि । जन्मान्तर देख्यो नहि तोदि ॥

तो दुर्जन मुझ संगति गहै । मरमछेदके कुबचन कहै ॥ ३८ ॥

मुन्यो कान जम पूजे पाय । नेनन देख्यो रूप अपाय ॥

भक्ति हेतु न भयो चित पाय । दुसदायक किरियारि न भाय ३९

महाराज शरणागत पाळ । पतिनउधारण दीनदमाळ ॥

मुमिरण करहु नाथ निज दीस । मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥ ४० ॥

कर्मनिहन्दनमटिमा सार । अशरणशरण मुखस शिमतार ॥

नहि सैये प्रभु तुमहे पाय । तो मुझ जन्म अकारण जाय ॥ ४१ ॥

सुगण बन्दिन क्या निधान । जगनागण जगपनि जगजान ॥

दुखमागरेने मोदि निहाय । निर्भयधान हेतु मुमगशि ॥ ४२ ॥

मैं तुम करणकमल गुन गाव । बहुविधि भक्ति करी मनदाव ॥

जन्मजन्म प्रभु पावहु नोदि । यह मेवा कल दीये मोदि ॥ ४३ ॥

सोवकाल वेगतीग्यर । बरवर.

इतिविधि श्रीमगरन, मुखस मे भविजन भावहि ।

ने निज पुण्य भंडार, मंच सिम्पान प्रजागहि ॥

मेमगेन हृदयनि अग, प्रभु गुणमनजावहि ।

मंगमफडा नृप, वेग प्रथम गति पावहि ॥

यह कल्याणमन्दिन हियो, हृदयधनुषी कुंदि ।

मया कहन बनारसी, कागल मर्षिहनुदि ॥ ४४ ॥

इति अष्टमस्कन्धसमाप्त

अथ साधुवन्दना लिख्यते.

श्लोकाः ।

धीजिनमापिन भारती, सुमरि आन सुसपाठ ।

कहौ मूल गुण साधुके, परमित्त विंशतिभाठ ॥ १ ॥

पंचमहामत आदरन, समति पंच परकार ।

प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, पट अवशिक आचार ॥ २ ॥

भूमिप्रापन मंजनतजन, वसनत्याग कचलोच ।

एकवार लगुअमन भिति—असन दंतवन मोच ॥ ३ ॥

चौपाई ।

यापर जन्तु पंच परकार । चार भेद जंगम मन धार ।

जो सब जीवनको रसपाल । सो मुसाधु बन्दहुं तिरकाल ॥ ४ ॥

संतत सत्य धवन मुख पट्टे । अथवा मौनविरत भर रट्टे ।

मृषावाद नहि बोले रती । सो जिन मारग सांचा जती ॥ ५ ॥

कौड़ी आदि स्तन परजंत । पटिन अपट धनभेद अनंत ॥

दण्ड अदण्ड न फरसे जोष । तारण तरण मुनीभर सोष ॥ ६ ॥

पशु पंसी नर दानव देव । इत्यादिक रमणी रति सेव ॥

तजदि निरन्तर मदन विकार । सो मुनि नमहुं जगत हितकार ७

द्विविधि परिमह दशाविधि जान । मंस असस अनन्त बरान ॥

ऽकल संगतस होष निरास । सो मुनि रुहै मोक्ष पदवाग ॥ ८ ॥

अधोदृष्टि मारग अनुसरै । प्राशुक भूमि निरख पग धरै ॥
 सदय हृदय साथै शिव पंथ । सो तपीश निरमय निर्मन्य ॥ ९ ॥
 निरभिमान निरवध अदीन । कोमल मयुर दोष दुस्त हीन ॥
 ऐसे मुखचन कहै स्वभाव । सो ऋषिराज नमहुं धरि भाव ॥ १० ॥
 उत्तम कुल आवक संचार । तामु गेह प्राशुक आहार ॥
 मुंजै दोष छियालिस टाल । सो मुनि बंदौ सुरति संभाल ॥ ११ ॥
 उचितवस्तु निजहित परहेत । तथा धर्म उपकरण अचेत ॥
 निरख जतनसों गहै जु कोय । सो मुनि नमहुं जोर कर दोय ॥ १२ ॥
 रोगविकृति पूरव आदान । नवदुवार मल अंग उठान ॥
 डारै प्राशुक भूमि निहार । सो मुनि नमहुं भगति उरधार ॥ १३ ॥
 कोमल कर्कश हरव समार । रुद्र सचिकण तपत तुसार ॥
 इनको परसन दुख सुखलहै । सो मुनिराज जिनेश्वर कहै ॥ १४ ॥
 आमल कटुक कपायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥
 इनहिं स्वाद रति अरति न वेव । सो ऋषिराज नमहि तिहुं देव ॥ १५ ॥
 शुभ सुगंध नाना परकार । दुस्सदायक दुर्गंध अपार ॥
 नामा विषय गनहिं समतूल । सो मुनि जिनशासनतरुमूल ॥ १६ ॥
 श्यामहरित मित लोहित पीत । वर्ण विवरण मनोहर भीत ॥
 ए निरसै तज राग विरोध । सो मुनि करै कर्ममल दोष ॥ १७ ॥
 नद कुनदहिं समरम साद । यवण सुनत नहिं हरष विषाद ॥
 मुनि निंदा दोऊं सम मुजै । सो मुनिराज परम पद मुणै ॥ १८ ॥

सामारक साधै तिहुं काल । मुकति पंथकी करै सैमाल ॥
 शत्रुनिजदोऊं सम गणै । सो मुनिराज करमरिषु हणै ॥ १९ ॥
 अर्हत सिद्ध सूरि उवक्षाय । साधु पंच पद परम सहाय ॥
 इनके चरणनमें मन लाय । तिस मुनिवरके बन्दों पाय ॥ २० ॥
 पावन पंचपरम पद इष्ट । जगतमाहि जानै उतकिष्ट ॥
 ठानै गुणधुति धारंसार । सो मुनिराज लहै भवपार ॥ २१ ॥
 ज्ञान किया गुणचारै चित्त । दोष बिलोक करै प्राणित्त ॥
 निव प्रतिकमणकियारसलीन । सो मुसाधु संजम परबीन ॥ २२ ॥
 भीजिनबचन रचन विसतार । द्वादशांग परमागम सार ॥
 निजमति मान करै सज्जांड । सो मुनिवर बंदहुं घर भांड २३
 काउसगामुद्रा पर निष्ठ । शुद्धस्वरूप विचारै चित्त ॥
 त्यागै त्रिविधिबोग ममकार । सो मुनिराज नमो निरपार २४
 प्राशुक्त शिला उचित मूसेत । अचल अंग समभाव सचेत ॥
 पश्चिमरैन अल्प निद्राल । सो योगीश्वर बंचै काल ॥ २५ ॥
 धर्मध्यान जुत परम विचित्र । अन्तर बाहिय सहज पवित्र ॥
 न्दान बिलेपन तबै त्रिकाल । बन्दों सो मुनि दीनदयाल ॥ २६ ॥
 लोफलाब्धविगलित भयहीन । विषयवासनारहित अदीन ॥
 नगन दिगम्बर मुद्रापार । सो मुनिराज जगत मुसकार ॥ २७ ॥
 सपन केश गर्भित मलच्छीच । वस असंख्य उतपति ठमुबीच ॥
 कच लुंच यह कारण जान । सो मुनि नमहुं खोरजुमपान २८

लुधा वेदनी उपशम हेत । रस अनरस समभाव समेत ॥
 एकवार लघु भोजन करै । सो मुनि मुक्ति पंथ पागधरै २९
 देह सहारौ साधन मोष । तबज्यो उचित कायबल पोष ॥
 यह विचार धिति लेहि अहार । सो मुनि परम परम धनधार ३०
 जहँ जहँ नवदुबारमलपाठ । तहँ तहँ अमित जीव उठपाठ ॥
 यह लल तजहि दंतवन काज । सो शिवपथसाधक कपिराज ३१
 ये अट्ठाविस मूल गुण, जो पालहि निरदोष ।
 सो मुनि कहत बनारसी, पावै अविचल मोष ॥ ३२ ॥

इति साधुवन्दना.

अथ मोक्षपेडी लिख्यते.

कोश ।

इह समय रुचिवंतनो, गुरु अक्लै मुनमल ।
 जो तुझ अंदरचेतना, बहै तुमाड़ी अल ॥ १ ॥
 ए जिनवचन मुदावने, सुन चतुर उपल ।
 अक्लै रोचकशिक्षनो, गुरु दीनदयल ॥
 इम बुझै बुध टटटटै, नहि रहै मयल ।
 इसदा मरम न जानई, सो द्विपद बयल ॥ २ ॥
 त्रिसदो गिरदा पेचसो, हिरदा कलनल ।
 त्रिमना संमै विमिरसो, सूझै जलनल ॥

सने जिन्दादी भूमिनी, कुशान बुदा ।
 सदज निन्दादा सदजसो, चित रई दुदा ॥ ३ ॥
 जिन्दा एक करमदा, दुविधा पद भाग ।
 एक अनिष्ट असोदधा, एक हाक समता ॥
 जिन्दा एक न सुमई, उपदेस अदा ।
 बंकफटाटे सोपना, ज्यो बंद गदा ॥ ४ ॥
 जिन्दा चित हसपारसो, गुरुबचन न जाता ।
 जिन्दा ज्यो कचन यो, ज्यो कोदो दता ॥
 बरसे पाहन भुम्भिमें, नदि होय बदा ।
 बोये बीज न ऊपर्ये, जल जाय बदा ॥ ५ ॥
 भेतन इस संसारमें, तू सदा इफा ।
 आवे रूप पिशाच, ई ते अप्पा छाता ॥
 आवे भुम्भा गिरि क्या, किमिदिधा दाता ।
 जिन्दसो मिटन विजोग दे, तिनसो क्या सता ॥ ६ ॥
 इस दुनियादी मोजसो, तू गरबगदा ।
 भया भार सान पुरुष, ज्यो छप्पर बिच पता ॥
 गुपनेदा गुर मान ते, अपना घर पता ।
 विरा भरमझी भौरमें, नू सदज बिलाता ॥ ७ ॥
 जोग अहंवर ते किया, कर अंवर माता ।
 अंग विमृति सगायके, छीनी भृग छदा ॥

है वनवासी तैं सजा, परवार महत्ता ।
 अप्पापर न पिछाणियां, सब झूठी गत्ता ॥ ८ ॥
 माया मिथ्या अग्रसोच, ये तीनों सत्ता ।
 तिहु बादी करतूतसों, जियदा उरसत्ता ॥
 ज्यों रथिरादी पुट्सों, पट दीसै लत्ता ।
 रथिरानरुहि परानिये, नहि होय उजत्ता ॥ ९ ॥
 जब लग सेरी समझमें, दोरी हल बत्ता ।
 सुमश बड़ाई लाभनो, करदा छर बत्ता ॥
 सबजग नू म्वाणा नही, क्या मारइ कत्ता ।
 मोर करदा पालजे, ज्यों शूरे लत्ता ॥ १० ॥
 द्विज तू जकरा सांछला, द्विज पकरा पत्ता ।
 निदमकग भौ डगसिया, उर जान उगत्ता ॥
 भेवन जइ शत्रोगमें, तैं दांका सत्ता ।
 गुरी गुहावहि आपछो, लग म्वा इकत्ता ॥ ११ ॥
 जो तैं कारिद मानिया, है टलमटलता ।
 भो तू मानहि मंगरा, भनि वामह गत्ता ॥
 भो तू ह्वा कंठगा, अर भोग मत्ता ।
 भो मय नाना रूप है, नाचे पुरलत्ता ॥ १२ ॥
 जो कृष्ण दुरदरुमा, जो रूप रगत्ता ।
 वे मया भनि जेवना, वृद्ध अर बत्ता ॥

लंब मझोला ठीगना, गोरा अरु फला ।
 सो सब नानारूप है, निहचै पुद्गला ॥ १३ ॥
 जो जीरण है झरपड़े, जो होय नवला ।
 जो मुरझावै मुकंदै, फुला अरु फला ॥
 जो पानीमें बह चले, पावकमें अला ।
 सो सब नानारूप है, निहचै पुद्गला ॥ १४ ॥
 एक कर्म दीसै दुधा, ज्यों तुलदा पला ।
 दलवै सन गुरवैतसो, अध ऊरप मला ॥
 अशुमरूप शुमरूप है, दुहु दिशिनो चला ।
 धैरे हुविधि विस्तार औ, बट विरस अटला ॥ १५ ॥
 पवन परे रे जो उटै, माटी बिच मला ।
 जो अकाशमें देखिये, चल रूप अचला ॥
 पानी पावक पीन भू, चहुंधामें रला ।
 सो सब नाना रूप है, निहचै पुद्गला ॥ १६ ॥
 सिषरोवे सिणमें हंसै, औ मदमत्तबला ।
 त्यों दुहुंवादी मौजसो, बेहोश संगला ॥
 ईकसनीच विनोद है, इकमें सलफला ।
 समदृष्टी सज्जन करै, दुहुंसो हलमला ॥ १७ ॥
 जाति दुहंकी एक औ, मणि पत्थर दला ।
 अल विचार सँकोच सो, कटिष्ट नदि नला ॥

उद्धत अलखरवाहमें, जौ भौर मुगुता ।
 त्यो इस कर्म विगाछे, विन ऊंचा सता ॥ १८ ॥
 हुहुंरा अधिर स्वमार है, नहिं कोई अटता ।
 ऊंच नीच इक सम करे, कलिछाउ पटता ॥
 अर उरप ऊरप अघो, पिति उभन पुथता ।
 अरहट हार विशारमें, क्या ऊपर सता ॥ १९ ॥
 पाया देगसरीरग्यो, नजनीर उछता ।
 मग पूरण कर वदि पया, फिर गन उघो दता ॥
 पुण्य पाप सिच भेद है, मद्य भेद न भता ।
 ज्ञान क्रिया निररोप है, जहं मोग महता ॥ २० ॥
 बननु तु माझ मोहमे, औ रोद रुदता ।
 विनि मगाण तुझ नो मया, मुग्धज्ञान दुदता ॥
 अच पट अनर पटगई, भन भीर पुत्रता ।
 पाप आह पागट मई, दिव राह गदता ॥ २१ ॥
 ज्ञान दिगाकर उनिबो, मनि दिग्य पदता ।
 हे ज्ञान भंड विट्टिया, भम निमर पदता ॥
 गन्य बनाने मरिया, दुगं गि दुदता ।
 अनि अंगोरे दर्शिया, जो गुरु पदता ॥ २२ ॥
 रोता ।

बह मनदुखी देखना, कुर आचार दीर्घि ।

सही देह मोनरी, कर्म काट उपरि ॥ २३ ॥

भव धिति जिनकी घटमई, तिनको यह उपदेश ।
कहत बनारसिदास यों, मूढ़ न समुझै लेन ॥ २४ ॥
हृषी धीमोक्षपैनी.

अथ कर्मछत्तीसी लिख्यते.

श्लोक ।

परम निरञ्जन परमगुरु, परमपुरुष परमान ।
बन्दहुं परमसमाधिगत, मयभञ्जन भगवान् ॥ १ ॥
जिनवाणी परमान कर, सुगुरु शीघ्र मन आन ।
कष्टहु जीव अरु कर्मको, निर्णय कहौ वसान् ॥ २ ॥
अगम अनंत अलोकनभ, तामें लोक अकाश ।
सदाकाल ताके उदर, जीव अजीव निवास ॥ ३ ॥
जीव द्रव्यकी द्वे दशा, संसारी अरु सिद्ध ।
पंच विकल्पअजीव के, अराय अनादि अविद्ध ॥ ४ ॥
गगन, काल, पुद्गल, परम, अह अर्धम अविधान ।
अब कष्ट पुद्गल द्रव्यको, कहौ विशेष विधान ॥ ५ ॥
परमरक्षितो प्रगट है, पुद्गल द्रव्य अनंत ।
जड़ लक्षण निजीव दल, रूपी मूर्तिवंत ॥ ६ ॥
जो त्रिभुवन धिति देसिये, धिर जंगम आधार ।
गो पुद्गल परवानको, है अनारि विचार ॥ ७ ॥

अब पुद्गलके वीसगुण, कहों प्रगट समुद्राय ।
 गर्भित और अनन्तगुण, अरु अनन्त परजाय ॥ ८ ॥
 श्याम पीत उज्ज्वल अरुण, हरित मिश्र बहु भांति ।
 विविधवर्ण जो देखिये, सो पुद्गलकी कांति ॥ ९ ॥
 आमल तिक्त कषाय कटु, क्षार मधुर रसमोग ।
 ए पुद्गलके पांचगुण, षट मानहिं सबलोग ॥ १० ॥
 तातो सीरो चीकनो, रुखो नरम कठोर ।
 हलको अरु मारीसहज, आठ फरस गुणजोर ॥ ११ ॥
 जो सुगंध दुर्गंधगुण, सो पुद्गलको रूप ।
 अब पुद्गल परजायकी, महिमा कहों अनूप ॥ १२ ॥
 शब्द, गंध, सूक्ष्म, सरल, लम्ब, बक्र, लघु धूल ।
 विद्युरन, मिदन, उदोत, तम, इनको पुद्गल मूल ॥ १३ ॥
 छाया, आकृति, तेज, द्रुति, इत्यादिक बहु भेद ।
 ए पुद्गलपरजाय सब, प्रगटहिं होय उच्छेद ॥ १४ ॥
 केई शुभ केई अशुभ, रुचिर, मयानक भेष ।
 सहज स्वभाव विभाव गति, अरु सामान्य विशेष ॥ १५ ॥
 गर्भित पुद्गलपिंडमें, अलस अमूरति देव ।
 फिरै सहज भवचक्रमें, यह अनादिकी देव ॥ १६ ॥
 पुद्गलकी संगति करै, पुद्गलहीसों प्रीति ।
 पुद्गलको आपा गये, यहै मरमकी रीति ॥ १७ ॥

जे जे पुद्गलकी दशा, ते निज मानै हंस ।
 याही भरम विभावसो, बटै करमको धंस ॥ १८ ॥
 ज्यों ज्यों कर्म विपाकबश, ठानै भ्रमकी मौज ।
 त्यों त्यों निज संपत्ति दुरै, जुरै परिग्रह फौज ॥ १९ ॥
 ज्यों वानर मदिरा पिये, बिच्यूरु हंकिता गात ।
 भूत लगे कौतुक करै, त्यों भ्रमको उत्पात ॥ २० ॥
 भ्रम संशयकी मूलसों, रुहै न सहज स्वकीय ।
 करम रोग समुझै नहीं, बह संसारी जीय ॥ २१ ॥
 कर्म रोगके द्वे चरण, विषम दुहंकी चाल ।
 एक कंप प्रकृती लिये, एक ऐंठि असुराल ॥ २२ ॥
 कंपरोग है पाप पद, अकर रोग है पुण्य ।
 शान रूप है आत्मा, दुहं रोगसों दान्य ॥ २३ ॥
 मूरख मिथ्यादृष्टिमें, निरखै जगकी रोग ।
 दरहि जीव सब पापसों, करहि पुण्यकी होम ॥ २४ ॥
 उपनै पापविकारसों, भय तापादिक रोग ।
 चिन्ता स्नेह बिषा बटै, दुखमानै सबलोग ॥ २५ ॥
 उपनै पुण्यविकारमें, निषयरोग विस्तार ।
 आरत रद बिषा बटै, सुख मानै संसार ॥ २६ ॥
 दोऊ रोग समान है, मूढ न जाने रीति ।
 कंपरोगसों भय करै, अकररोगसों प्रीति ॥ २७ ॥

भिन्न २ लक्षण लखे, प्रगट दुहुंकी मांति ।
 एक लिये उद्वेगता, एक लिये उपशान्ति ॥ २८ ॥
 कच्छपक्रीसी सकुच है, वक्र तुरगकी चाल ।
 अंधकारकोसो समय, कंपरोगके भाल ॥ २९ ॥
 बकरकूंदसी उमंग है, जकरबन्दकी चाल ।
 मकरचांदनीसी दिपै, अकररोगके भाल ॥ ३० ॥
 तमउदोत दोऊं प्रकृति, पुट्टलकी परजाय ।
 भेदज्ञान विन मूढ़ मन, भटक भटक मरमाय ॥ ३१ ॥
 दुहुं रोगको एक पद, दुहुंसों मोक्ष न होय ।
 विनाशीक दुहुंकी दशा, विरला वृक्ष कोय ॥ ३२ ॥
 कोऊ गिरै पहाड़ चढ़, कोऊ बूढ़ कूप ।
 मरण दुहुंको एक सो, फहियेको द्वै रूप ॥ ३३ ॥
 भववासी दुविषा घरे, तावै लसै न एक ।
 रूप न जानै जलधिको, कूप कोषको भेक ॥ ३४ ॥
 माता दुहुंकी वेदनी, पिता दुहुंको मोह ।
 दुहु वेड़ीसो बंधि रहे, कदवत कंचन लोह ॥ ३५ ॥
 जाति दुहुंकी एक है, दोय कहै जो कोय ।
 गहै आचरे सरदहे, सुरबडम है सोय ॥ ३६ ॥
 जाके चित जैसी दशा, ताकी तैसी दृष्टि ।
 पंडित भव संडित करै, मूढ़ बढावै सृष्टि ॥ ३७ ॥

इति कर्म उन्मोयो.

अथ ध्यानवत्तीसी लिख्यते.

श्लोकः ।

ज्ञान स्वरूप अनन्त गुण, निराबाध निरुपाधि ।
अविनाशी आनन्दमय, चन्द्रहुं प्रसन्नमाधि ॥ १ ॥
मातु उदय दिनके समय, चन्द्र उदय निशि होत ।
दोऊं जाके नाम मैं, सो गुरु सदा उदोत ॥ २ ॥

बीजार्थः । (सोळा भाषा)

चेतहु पाणी सुन गुरुवाणी । अमृतरूप सिद्धांत बसानी ।
परगट दोऊं नय समुझावै । मरमी होय मरम सो पावै ॥ ३ ॥
चेतन बड अनादि संजोयी । आपदि करता आपदि भोगी ।
सहज स्वभाव शक्ति जब जागै । तब निहचैके मारग लागै ४
फेरकै देहबुद्धि जब होई । नयव्यवहार कहावै सोई ।
भेदभाव गुन पंडित बूझै । जाको अगम अगोचर सूझै ॥ ५ ॥
अथमहि दान शील तब भावै । नय निहचै विवहार लखावै ।
परगुणत्यागबुद्धि जब होई । निहचै दान कहावै सोई ॥ ६ ॥
चेतन निज सभावमहँ आवै । तब सो निश्चयशील कहावै ।
कर्मनिर्जरा होय विशेषै । निश्चय तब कहिये इह छेपै ॥ ७ ॥
वेमलरूप चेतन अग्यासै । निश्चयभाव तहां परगासै ।
अब सदगुरु व्यवहार बखानै । जाकी महिमा सब जगजानै ८
अनवच्छेद शक्ति कहु दीजे । सो व्यवहारी दान कहीजे ।
अनवच्छेद सजै जब नारी । कहिये सोइ शील विवहारी ॥ ९ ॥

मनवचकाय कष्ट अब सहिये । तासों विवहारी तब कहिये ।
मनवचकाय लगनि ठहरावै । सो विवहारी भाव कहावै ॥ १० ॥

सोहा ।

दान शील तब भावना, चारों मुस्त दातार ।
निहचै सो निहचै मिलै, विवहारी विवहार ॥ ११ ॥
चौपाई ।

अब सुन चार ध्यान हितकारी । साधहि मुक्तिपथ व्यापारी ॥
मुद्रा मूर्ति छवि चतुराई । कलाभेन बलवेस बढाई ॥ १२ ॥
परस वरण रस गंध मुभासा । इह रूपस्यध्यानकी दासा ॥
इनकी संगति मनसा मापै । लगन सीस निज गुण आरापै ॥ १३ ॥
रहे मगन सो मूढ कहावै । अलस लसाव विचच्छन पावै ॥
अदंत आदि पंच पदलीजे । तिनके गुणको सुमरण कीजे ॥ १४ ॥
गुणको मोत्र करत गुण लहिये । परमपदस्यध्यान सो कहिये ॥
पंचरता तत्र वित निरोपै । ज्ञानदष्टि पदभन्तर सोपै ॥ १५ ॥
निज मित्र जड़ भेनन जोरै । गुण विनेच्छु गुणमादि समोरे ।
बह विद्वस्यध्यान मुमराई । कर्मनिरजरा देन उपारै ॥ १६ ॥
थाग मभार आपगों जोरै । परगुणगों सब जाना सोरै ॥
होने समाधि ब्रह्ममय होई । ज्ञानीन कहावै सोरै ॥ १७ ॥

सोहा ।

बह रूपस्यध्यानविधि, अत्र विद्वसरिचार ।
ज्ञानीन विद्विन मन, ध्यान चार परचार ॥ १८ ॥

चाँपाई ।

ज्ञानी ज्ञान भेद परकारै । ध्यानी होय सो ध्यान अभ्यासै ॥
 आर्त रौद्र कुध्यानहि त्यागै । धर्मशुक्लके मारग छागै ॥ १९ ॥
 आरत ध्यान चितवन कहिये । आकी संगति दुरगतिहिये ॥
 इष्टविजोग विकलता मारी । अरि अनिष्ट संजोग दुसारी ॥ २० ॥
 तनकी व्यथा मगन मन सूरै । अम सोचकर बाँडति पूरै ॥
 ए आरतके चारों पाये । महा मोहरससों न्यटायै ॥ २१ ॥
 अब मुन रौद्र ध्यानकी सैली । जहाँ पापसों मतिगति मैली ॥
 मनदछाहसों जीव विराधै । हिये हर्षपर चोरी साधै ॥ २२ ॥
 विकसित मूढबचन मुसभासै । आनंदितचितविषया रासै ॥
 चारों रौद्र ध्यानके पाये । कर्मबन्धके हेतु बनाये ॥ २३ ॥

दोहा ।

आरतरीद्र विचारतें, दुस्सचिन्ता अधिकार ।
 जैसे चैः तरंगिनी, महामेष जलपाय ॥ २४ ॥

चाँपाई ।

आर्त रौद्र कुध्यान बसाने । धर्मध्यान अब मुनहु सयाने ॥
 केवल भाषित बाणी मानै । कर्मनाशको उधम ठानै ॥ २५ ॥
 पूरकर्म उदय पदिचानै । पुराणाकार लोकधिति जानै ॥
 चारों धर्म ध्यानके पाये । जे समुझे ते मारग जाये ॥ २६ ॥
 अब मुन गुरु ध्यानकी बातें । मिटे मोदकी सखा जातें ।
 जोग साथ मिद्धान विचारै । आनम मुन परगुण निहारै ॥ २७ ॥

उपशम क्षपक श्रेणि आरोहै । श्रयक्त वितर्क आदि पद सो है ॥
 उपशम पंथ चढ़ै नहिं कोई । क्षपकपंथ निर्मल मन होई ॥ २८ ॥
 तब मुनि लोकालोकविकासी । रहहिं कर्मकी प्रकृति पचासी ॥
 केवल ज्ञान लहै जग पूजा । एक वितर्क नाम पद दूजा ॥ २९ ॥
 जिनवर आयु निकट जब आवै । तहां बहतर प्रकृति सापावै ॥
 सूक्ष्म निष्ठ मनोपल लीजा । सूक्ष्म क्रिया नाम पद तीजा ॥ ३० ॥
 शक्ति अनंत सहां परकाशै । तत्तलिन तेरह प्रकृति विनाशै ॥
 पंच लघूभर परमित बेरा । अष्ट कर्मको होष नियेरा ॥ ३१ ॥
 चरण चतुर्थ साध शिव पावै । विपरीत क्रिया निरुधि कहावै ॥
 गुह्य ध्यानके चारों पावै । मुक्तिपंचकारण समुपावै ॥ ३२ ॥
 गुह्य ध्यान औपधि लगे, मिटै कर्मको रोग ।
 कोइना छांड़ै काकिमा, होन अभिगंमोग ॥ ३३ ॥
 •यह परमारथ पंच गुन, अगम अनन्त बखान ।
 कहन बनारसि अज्यमनि, जघानकनि परवान ॥ ३४ ॥

इति ज्ञानवर्णनीति.

अथ अध्यानमयर्त्तसी लिख्यते.

शुद्ध वचन मदगूढ की, केवल भाषित अंग ।

श्रीकृष्णपदार्थमात्र मय, भेदद्वयानु उदंग ॥ १ ॥

• यह श्लोक "म., "न., प्र." में नहीं है.

घृतपटपूरित लोकमें, धर्म अधर्म अकास ।

काल जीव पुद्गल सहित, छहों दर्वको वास ॥ २ ॥

छहों दरब न्यारे सदा, मिले न कहा कोय ।

छीर नीर ज्यों मिल रहे, चेतन पुद्गल दोय ॥ ३ ॥

चेतन पुद्गल यों मिलें, ज्यों तिलमें खलि तेल ।

प्रगट एकसे देखिये, यह अनादिको सेल ॥ ४ ॥

यह धाके रससो रमै, यह वासों लपटाय ।

चुम्बक करयै लोहको, लोह समै तिहें धाय ॥ ५ ॥

जड़ परगट चेतन शुषठ, द्विविधा लसै न कोय ।

यह दुविधा सोई लसै, जो सुविचक्षण होय ॥ ६ ॥

ज्यों सुवास फल फूलमें, दही दूधमें घीब ।

पावक काठ पषाणमें, स्यों शरीरमें जीव ॥ ७ ॥

कर्मस्वरूपी कर्ममें, पटाकार पटमाहि ।

गुणप्रदेश प्रच्छन्न सब, यार्तें परगट नाहि ॥ ८ ॥

सहज शुद्ध चेतन वसै, भावकर्मकी ओट ।

द्रव्यकर्म नोकर्मसों, बँधी पिंडकी पोट ॥ ९ ॥

ज्ञानरूप भगवान शिव, भावकर्म चित भर्म ।

द्रव्यकर्म तनकारमन, यह शरीर नोकर्म ॥ १० ॥

ज्यों कोठीमें धान धो, चमी माहि कनबीच ।

चमी धोय कन रासिये, कोठी धोए कीच ॥ ११ ॥

कोटी सम नोक्कर्म मल, द्रव्य कर्म ज्यों धान ।

भावकर्ममल ज्यों चमी, कन समान भगवान् ॥ १२ ॥

द्रव्यकर्म नोक्कर्ममल, दोकं पुद्गल जाल ।

भावकर्म गति ज्ञान मति, द्विविधि ब्रह्मकी चाल ॥ १३ ॥

द्विविधि ब्रह्मकी चालसों, द्विविधि चक्रको फेर ।

एक ज्ञानको परिणमन, एक कर्मको घेर ॥ १४ ॥

ज्ञानचक्र अन्तर गुपत, कर्मचक्र मत्पक्ष ।

दोकं चेतनभाव ज्यों, शुकृपक्ष, तमपक्ष ॥ १५ ॥

निज गुण निज परजायमें, ज्ञानचक्रकी भूमि ।

परगुण पर परजायसों, कर्मचक्रकी धूमि ॥ १६ ॥

ज्ञानचक्रकी दरनिमें, सज्जंग मांति सब ठौर ।

कर्मचक्रकी नींदसों, मृषा स्वप्नकी दौर ॥ १७ ॥

ज्ञानचक्र ज्यों दरदानी, कर्मचक्र ज्यों अंध ।

ज्ञानचक्रमें निर्जरा, कर्मचक्रमें बंध ॥ १८ ॥

ज्ञानचक्र अनुसरणको, देव धर्म गुरु द्वार ।

देव धर्म गुरु जो लखें, ते पावें भवपार ॥ १९ ॥

भववासी जानै नहीं, देवधरमगुरुपेद ।

परधो मोहके फन्दमें, करै मोक्षको सेद ॥ २० ॥

उदय मुक्कर्म कुक्कर्मके, रहै चतुर्गति माहि ।

निरस्त्रे बाहिजदाष्टिमों, तहें शिवमारग नाहि ॥ २१ ॥

देवधर्म गुरु है निकट, मूढ़ न जानै ठौर ।

बैधी दृष्टि मिथ्यातसों, लसै औरकी और ॥ २२ ॥

भेषभारिको गुरु कहै, पुण्यवन्तको देव ।

धर्म कहै कुल रीतिको, यह कुकर्मकी टेव ॥ २३ ॥

देव निरंजनको कहै, धर्म बचन परमान ।

साधु पुरुषको गुरु कहै, यह सुकर्मको शान ॥ २४ ॥

जानै मानै अनुभवै, करै भक्ति मन साथ ।

परसंगति आसब सधै, कर्मबन्ध अधिकार ॥ २५ ॥

कर्मबंधतैं भ्रम धरै, भ्रमतैं लखै न बाट ।

अंधरूप चेतन रहै, बिना सुमति उदघाट ॥ २६ ॥

सहजमोह जब उपशमै, रुचै सुगुरु उपदेश ।

तब विभाव भवधिति धरै, जयै ज्ञान गुण लेश ॥ २७ ॥

ज्ञानलेश सो है सुमति, लसै मुक्तिकी लीक ।

निरखै अन्तरदृष्टिसों, देव धर्म गुरु ठीक ॥ २८ ॥

ज्यों सुपरीक्षित जौहरी, काच डाल मणि सेव ।

त्यों सुबुद्धि मारग गहै, देव धर्म गुरु सेव ॥ २९ ॥

दर्शन धारित ज्ञान गुण, देव धर्म गुरु गुह ।

परसै आत्म संपदा, तबै सनेह विरुद्ध ॥ ३० ॥

अरचै दर्शन देवता, चरचै धारित धर्म ।

दिह परचै गुरुज्ञानसों, यहै सुमतिको कर्म ॥ ३१ ॥

सुमतिकर्मते शिव सधै, और उपाय न कोय ।

॥ शिवस्वरूप परकायसों, आवागमन न होय ॥ ३२ ॥

सुमतिकर्म सम्यक्त्यों, देव धर्म गुरु द्वार ।

॥ कहत बनारसि उत्तव यह, लहि पावैं भवपार ॥ ३३ ॥

इति श्रीभगवान्महात्माजी.

अथ श्री ज्ञानपञ्चीसी लिख्यते.

सुरनर तिर्यग योनिमें, नरक निगोद भवंत ।

महा मोहकी नींदसों, सोये काल अनंत ॥ १ ॥

जैसे ज्वरके जोरसों, भोजनकी रुचि जाइ ।

तैसे कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाइ ॥ २ ॥

लगे भूख ज्वरके गये, रुचिसों लेय अहार ।

अशुभ गये शुभके अगे, जानै धर्मविचार ॥ ३ ॥

जैसे पवन झंझोरतें, जलमें उठे तरंग ।

त्यो मनसा चंचल भई, परिगृहके परसंग ॥ ४ ॥

तहां पवन नहि संचरै, तहां न जल कतोल ।

त्यो सब परिगृह त्याग्यों, मनसा होय अटोल ॥ ५ ॥

ज्यों काहू विषधर डमै, रुचिसों नीम चपाय ।

त्यो तुम ममतासों मंदे, मगन विषयमुन्म पाय ॥ ६ ॥

नीम रसन परसै नही, निर्विष तन अब होय ।

मोह पटे ममता मिटै, विषय न बाँछै कोय ॥ ७ ॥

ज्यों सलिल नौका चढ़े, बूझइ अंध अदेस ।

त्यो तुम भयजलमें परे, विन विवेक धर भेस ॥ ८ ॥

जहां अस्त्रंडित गुण लगे, खेवट शुद्धविचार ।

आत्म रुचि नौका चढ़े, पावहु भय जल पार ॥ ९ ॥

ज्यों अंकुश मानै नहीं, महामण गजराज ।

त्यो मन तृष्णामें किरै, गणै न काज अकाज ॥ १० ॥

ज्यों नर दाव उपावकें, गहि आनै गज साधि ।

त्यो या मनयज्ञ करनको, निर्धूल ध्यान समाधि ॥ ११ ॥

तिमिररोगसो नैन ज्यों, लसे ओरकी और ।

त्यो तुम संशयमें परे, मिथ्या मतिकी दीर ॥ १२ ॥

ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिट जाय ।

त्यो सतगुरुउपदेसार्थे, संशय बेग विनाय ॥ १३ ॥

जैसे सय जादय अरे, द्वारावतिकी आग ।

त्यो मायामें तुम परे, कदा जाहुगे भाग ॥ १४ ॥

दीपायनसो ते बचे, जे सपसी निर्मन्थ ।

सज माया समता गहो, थई मुक्तिको पंथ ॥ १५ ॥

ज्यों कुधातुके फेटसो, पटवइ कंपनकांति ।

पापपुण्य कर त्यो मये, मृदातम बहु भांति ॥ १६ ॥

कंचन निज गुण नहिं तबै, वैनहीनके होत ।

घटघट अंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥ १७ ॥

पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ।

त्यो प्रगटै परमात्मा, पुष्पपापमलस्तोय ॥ १८ ॥

पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर सोम छविछीन ।

संगति पाय कुसायुकी, सज्जन होहिं मलीन ॥ १९ ॥

निचादिक चन्दन करै, मलयाचलकी वास ।

दुर्जनतैं सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥

जैसैं ताल सदा भरै, जल आवै-चहुं ओर ।

तैसैं आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१ ॥

ज्यों जल आवत मंदिरे, सूत्रै सरवर पानि ।

तैसैं संवरके क्रिये, कर्म निर्जरा जानि ॥ २२ ॥

ज्यों बूटी संजोगतैं, पारा मूर्छित होय ।

त्यो पुद्गलसों तुम मिले, आत्मशक्ति समोय ॥ २३ ॥

मेल सटाई मांजिये, पारा परगट रूप ।

शुद्धध्यान अम्यासतैं, दर्शनज्ञान अनूप ॥ २४ ॥

कहि उपदेश बनारसी, चेतन अथ कलु चेतु ।

आप बुझावत आपको, उदय करनके हेतु ॥ २५ ॥

इति श्रीज्ञानपदीमी.

अथ शिवपञ्चीसी लिख्यते.

होरा ।

ब्रह्मविलास विकाशधर, चिदानन्द गुणठान ।

बन्दो सिद्धसमाधिमय, शिवस्वरूप भगवान् ॥ १ ॥

मोह महातम नाशिनी, ज्ञान उदधिकी सीब ।

बन्दो अगतविकाशनी, शिवमहिमा शिवनीव ॥ २ ॥

चौपाई ।

शिवस्वरूप भगवान् अघाची । शिवमहिमा अनुभवमति सांची ॥

शिवमहिमा जाके घट भासी । सो शिवरूप हुवा अविनासी ३

जीव और शिव और न होई । सोई जीवस्तु शिव सोई ॥

जीव नाम कहिये व्यवहारी । शिवस्वरूप निहचै गुणधारी ४

करै जीव जय शिवकी पूजा । नामभेदतैं होय न दूजा ॥

विधि विधानसो पूजा ठानै । तय शिव आप आपको जानै ५

तन मंडप मनसा अहैं बेदी । शुभलेदया गह सहज सफेदी ॥

आतमरचि कुंडली यस्यानी । तहां जलहरी गुरुकी बानी ६

भावलिंग सो मूरति थापी । जो उपाधि सो सदा अव्यापी ॥

निर्गुणरूप निरंजन देवा । सगुणस्वरूप करै विधिसेवा ॥ ७ ॥

समरस जल अभिषेक करावै । उपशम रसचन्दन घसि लावै ॥

सहजानन्द पुष्प उपजावै । गुणगर्भित जयमाल चढावै ॥ ८ ॥

ज्ञानदीपकी शिखा संवारे । स्वाद्याद घंटा झुनकारै ॥

अमम अध्यात्म चौर हुलावै । क्षायक धूप स्वरूप जगावै ॥ ९ ॥

निहचै दान अर्पविधि होवै । सहजशील गुण अक्षत दोवै ॥
तप नेवज काँदै रस पावै । विमलभाव फल राखइ आगै ॥ १० ॥

जो ऐसी पूजा करै, ध्यानमगन शिवलीन ।

शिवस्वरूप जगमें रहै, सो साधक परवीन ॥ ११ ॥

सो परवीन मुनीश्वर सोई । शिवमुद्रा मंडित जो होई ॥

सुरसरिता-करुणारसवाणी । मुमति गौरि अर्द्धरत्न बखानी ॥ १२ ॥

त्रिगुणभेद जहँ नयन विशेषा । विमलभावसमकित्त शशिलेखा ॥

सुगुरु शीख सिंगी उर बांधै । नयविबहार बाधम्बर काँधै ॥ १३ ॥

कबहुँ तन कैलाश कलोले । कबहुँ विवेकबैल चंद्र डोले ॥

हंडमाल परिणाम त्रिमंगी । मनसा चक्र फिरै सरबंगी ॥ १४ ॥

शक्ति विभूति अंगछवि छाजै । तीन गुपति तिरछूल विराजै ।

कंठ बिभाव विषम विष सोहै । महामोह विषहर नहिँ पोहै ॥ १५ ॥

संजम जटा सहज सुख भोगी । निहचैरूप दिगम्बर जोगी ॥

प्रस समाधिध्यान गृह साजै । तहाँ अनाहत दमरू बाजै ॥ १६ ॥

पंच भेद शुभज्ञान गुण, पंच वदन परधान ।

ग्यारह प्रतिमा साधतै, ग्यारह रुद्र समान ॥ १७ ॥

मंगल करन मोक्षपद ज्ञाता । यातै शंकर नाम विख्याता ॥

जब मिय्यामत तिमर विनाशै । अंधकहरण नाम परकाशै ॥ १८ ॥

ईश महेश अक्षयनिधिस्वामी । सर्व नाम जग अंतरजामी ॥

त्रिमुवन त्याग रमै शिवठामा । कहिये त्रिपुरहरण सब नामा ॥ १९ ॥

अष्टकर्मसो भिदे अकेला । महारुद्र कहिये तिहि बेला ॥
 मनकामना रहै नहि कोई । कामदहन कहिये सब सोई ॥ २० ॥
 भवदासी भवनाम धरावे । महादेव यह उपमा पावे ॥
 आदि अन्त कोई नहि जाने । संभुनाम सब जगत यसाने २१
 मोहहरण हर नाम कहीजे । शिवस्वरूप शिवसाधन कीजे ॥
 तज करनी निधयमें आवे । सब जगभंजन विरद कहावे २२
 विश्वनाथ जगपति जग जाने । मृत्युंजय तम मृत्यु न माने ॥
 शुरु ध्यान गुण जब आरोहै । नाम कपूरगौर सब सोहै ॥ २३ ॥
 इदिविधि जे गुण आदरे, रहै राखि जिहें छैव ।

जिहें जिहें मारग अनुसरै, ते सब शिवके नाँव ॥ २४ ॥

नाँव जयामति कल्पना, कहूं मगट कहूं गूढ़ ।

गुणी विचारै बस्तु गुण, नाँव विचारै मूढ़ ॥ २५ ॥

मूढ़ मरम जानै नहीं, करै न शिवसों मीति ।

पंडित लसै बनारसी, शिवमहिमा शिवरीति ॥ २६ ॥

इति शिवपञ्चीसी.

अथ भवसिन्धुचतुर्दशी लिख्यते.

जैसें काह पुरुषको, पार पहुँचवे काज ।

मारगमाहि समुद्र तहाँ, कारणरूप अहाज ॥ १ ॥

तैसें सम्पकवंतको, और न कष्ट इलाज ।

भवसमुद्रके तरणको, मन अहाजसों काज ॥ २ ॥

मनजहाज घटमें प्रगट, भवसमुद्र घटमाहि ।

मूरख मर्म न जानहीं, बाहिर खोजन जाहि ॥ ३ ॥

मूरखहूके घटविषे, जलजहाज अरु पौन ।

दृगमुद्रित मालीम तहँ, लसै सँभारै कौन ? ॥ ४ ॥

कर्मसमुद्र विभाव जल, विषयकृपाय तरंग ।

षडबागानि तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सरबंग ॥ ५ ॥

भरमभँवर तामें फिरै, मनजहाज चहुँ ओर ।

गिरै खिरै बूढ़े तिरै, उदय पवनके जोर ॥ ६ ॥

जब चेतन मालिम अगै, लसै विपाक नजूम ।

डारै समता गृंखला, धकै भँवरकी घूम ॥ ७ ॥

मालिम सहज समुद्रको, जाने सब विरतंत ।

शुभोपयोग तहँ रत्न सम, अशुभ भाव जलजंत ॥ ८ ॥

जन्तु देख नहिं मय करै, रत्न देख उच्छाह ।

करै गमन शिवदीपको, यह मालिमकी चाह ॥ ९ ॥

दिशि परसै गुणजंत्रसों, फेरै शक्ति मुस्तान ।

धरै साथ शिवदीपमुख, बादवान शुभध्यान ॥ १० ॥

चहै शुद्ध उद्धत पवन, गहै क्षिपक दिशिलीक ।

लहे खर शिवदीपकी, रहै दृष्टिगति ठीक ॥ ११ ॥

मनजहाज इहिविधि चले, गहै सिंधुजलवाट ।

आवै निज संपत्तिनिकट, पावै केवल घाट ॥ १२ ॥

मालिम उत्तर जहाजसों, करै दीप को क्षौर ।

सहां न जल न जहाज गति, नहिं करनी कछु औरा ॥ १३ ॥

मालिमकी कालिममिटी, मालिम क्षौर न क्षौर ।

यह भयसिन्धुचतुर्दशी, मुनिचतुर्दशी होय ॥ १४ ॥

इति सिन्धुचतुर्दशी

अथ अध्यात्म फाग लिख्यते.

अध्यात्म विन क्यों पाइये हो, परमपुरुषको रूप ।

अपट भंग पट मिल रघो हो, महिमा अगम अनूप ॥

भला अध्यात्मविन क्यों पाइये ॥ १ ॥

विषम विषय पुरो मयो हो, आयो सहज वसंत ।

मगटी मुरुचि मुगंधिता हो, मन मधुकर मयमंत ॥

भला अध्यात्मविन क्यों पाइये ॥ २ ॥

सुमति कोकिला गह गही हो, बही अपूरब बाउ ।

भरम कुहर बादरफटे हो, पट जाडो जड साउ ॥

भला अध्यात्मविन क्यों पाइये ॥ ३ ॥

मायारजनी लघु भई हो, समस्त दिवसशिखीत ।

मोहपंककी धिति पटी हो, संशय शिशिर व्यतीत ॥

भला अध्यात्मविन क्यों पाइये ॥ ४ ॥

शुभ दल पहलव लहलहे हो, होहि अनुभ पतसार ।

मलिन विषय रति मालती हो, विरति बेहिविस्तार ॥

भला अध्यात्मविन क्यों पाइये ॥ ५ ॥

सत्तिरीरेक निर्मल भयो हो, बिना अभिय शरीर ।

कैली शक्ति मुचन्द्रिका हो, पगुरिग नेन पछोर ॥

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ ६

गुग्गुलि अष्टावर्गमनिन अमी हो, समकित भागु अमर ।

हरपदमर शिकुमिग भयो हो, पगुर मुजस मकरन्द ।

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ ७

रिड कपाड दिगमिग मने हो, गरी निगोरा ओर ।

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ ८

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ ९

रिड कपाड दिगमिग मने हो, गरी निगोरा ओर ।

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १०

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ ११

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १२

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १३

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १४

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १५

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १६

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १७

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १८

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ १९

भक्त अष्टावर्गमनिन कथो पाइये ॥ २०

दया मिटाई रसभरी हो, तप मेधा परधान ।

शील सलिल अति सीयलो हो, संजम नागर पान ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १३ ॥

गुपति अंग परगासिये हो, यह निलज्जता रीति ।

अकम कथा मुक्तभास्विये हो, यह गारी निरनीति ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १४ ॥

उदत गुण रशिया मिले हो, अमल विमल रसप्रेम ।

सुरत तरंगमोह एकि रहे हो, मनसा याचा नेम ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १५ ॥

परम ज्योति परगट भई हो, लगी होलिका आग ।

आठ काठ सब जरि बुझे हो, गई तताई भाग ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १६ ॥

महति पचासी लगी रही हो, भल लेख है सोय ।

न्हाय धोय उज्ज्वल भये हो, फिर तहें खेल न कोय ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १७ ॥

सहज राकि गुण खेलिये हो, चेत बनारसिदास ।

सगे सखा ऐसे कहे हो, मिटे मोहदधि फास ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १८ ॥

इति अध्यातमध्यायः.

अथ सोलह तिथि लिख्यते.

चौपाई ।

परिवा प्रथम फला घट जागी । परम प्रतीतिरीति रसपागी ॥
 प्रतिपद परम प्रीति उपजावे । बहै प्रतिपदा नाम कहावे ॥ १ ॥
 दूज दुहंधी दृष्टि पसारे । स्वपराविवेकपारणा धारे ॥
 दर्वित भावित दीसै दोई । द्वय नय मानत द्वितीया होई ॥ २ ॥
 तीज त्रिकाल त्रिगुण परकासै । त्रिविधिरूप त्रिभुवन आमासै ॥
 तीनों शस्त्र उपाधि उछेदै । त्रिधा कर्मकी परिणति भेदै ॥ ३ ॥
 चौथ चतुर्गतिको निरवारे । कर चक्रपूर चौदरी चारे ॥
 चारों वेद समुक्ति घर आवे । तब सुभनंत चतुष्टय पावे ॥ ४ ॥
 पांचे पंच सुचारित पाँके । पंचज्ञानकी मुरति संमाने ॥
 पाँचों इन्द्रिय करे निरासा । तब पाँच पंचमगति दासा ॥ ५ ॥
 छट छहकाय स्वांग घर सोवे ॥ छह रस मगन ॥ आहूति होवे ॥
 बस छहदरननमें न अरुओ । तब छ दशगो न्यारो सुखे ॥ ६ ॥
 साने मानों प्रहृति निगवे । सागमंग नयमों मन लावे ॥
 स्वांग मान व्यसनविधि जेनी । निर्मय रंदे सान भवगेनी ७
 आठे आठ महामद भंडे । अष्टमिदिग्गिनी नहिं रंजे ॥
 अष्टकर्ममलमूत्र बहावे । अष्टगुणात्म निद्रा कहावे ॥ ८ ॥
 नौनी नवगमने रम बेवे । तौ ममद्विन भर नवद गेरे ॥
 दरे द्वाद्विधि नव पाकाग । निर्गमे नवनयनमो ग्याग ॥ ९ ॥

दशमी दशदिशिगो मन मोरे । दश प्राणनमो नाता तोरे ॥
 दशविधि दान अभ्यंतर साधे । दशलच्छण मुनिधर्म अराधे ॥ १० ॥
 ग्यारस ग्यारह प्रकृति विनाशे । ग्यारह प्रतिमापद परकाशे ॥
 ग्यारह रुद्र कुलिग पराने । ग्यारह विद्या जोग जिन माने ॥ ११ ॥
 बारस बारह विरति बराधे । बारह विधि तपसो मन ताधे ॥
 बारहभेद भाषना भाधे । बारह अग जिनागम गाधे ॥ १२ ॥
 तेरह तेरह क्रिया भेदांले । तेरह विपन काठिया टांले ॥
 तेरहविधि संजय अवधारै । तेरह धानक जीव विचारै ॥ १३ ॥
 बीस बीस विद्या माने । बीस गुणधानक पटिषाने ॥
 बीसह मारगना मन आने । बीसहरगुजु लोक परवाने ॥ १४ ॥
 पन्द्रह पन्द्रह निधि गनिनीजे । पन्द्रह पात्र परगि धन दीजे ॥
 पन्द्रह जोगरहित जो धरणी । सो पट पदम अमायग वरणी ॥ १५ ॥
 पूनो पूरण प्रसविलागी । पूर गुण पूरण परमासी ॥
 पूरण प्रभुता पूरणमासी । पंदे गाधु तुलसी बनवासी ॥ १६ ॥

इति शेषस्तोत्रविषयः

अथ तेरह काठिया लिख्यते.

जे पटपारे बाटमें, करदि उपद्रव ओर ।

तिन्हें देता गुजरानमें, करदि काठियाओर ॥ १ ॥

त्यो यह तेरह काठिया, करहि धर्मही दानि ।
 ताने कजु इनही कथा, कटहुं विशेष वसानि ॥ २ ॥
 जूआ आत्म जोके भेष, कुकथा कौतुक कोई ।
 कृपणबुद्धि अज्ञानता, भंम निर्दो मंद मोई ॥ ३ ॥

प्रथम काठिया जूआ जान । जामे पंच वस्तुही दान ।
 प्रभुता दरे पारे शुभ कर्म । मिटि मुजस सिनते धनधर्म ॥ ४ ॥
 द्वितीय काठिया भाज्यमाण । जागु उरष नाशे विरगाव ॥
 कादिनि निविज होदि गव भंग । भंनर धर्मसागना भंग ॥ ५ ॥
 तृतीय काठिया भोज्यमाण । जागु उरष त्रिष करे रिजाव ॥
 गृह पावक निदि पर होय । धर्मदिया तह रई न कोय ॥ ६ ॥
 प्रथम काठिया वगान । जाके उरष होय वरदान ॥
 उर को नदि कुं उपाय । मर गुणमंडपन मिट जाय ॥ ७ ॥
 तृतीय काठिया वदनाद । निग्यापाड मवा पानिनाद ॥
 वरही जीव मगन इगमादि । मवही धर्म बागना मदि ॥ ८ ॥
 चोतुर्थ काठिया । अनविद्यामगो हरे दिवा ॥
 भूषा वस्तुनिर्माण पर ध्यान । निनिज जाय मन्त्राय ज्ञान ॥ ९ ॥
 चोप काठिया हे मानना । अमि मनान जही भ्रामक ॥
 भय न दह, भेद हो दह । तही मनोविषे वचन दे ॥ १० ॥
 कृपणबुद्धि भजन वदनाद । अने धनद जोन अदिह ॥
 नैव मदि मगन वदनाद । मगन करे मनोही नाद ॥ ११ ॥

नवमा टग आशान अगाथ । जानु उदय उपजै अपराध ॥
जो अपराध पाप दे सोय । जहां पाप तहां धर्म न होय १२
दशम काठिया भ्रम विच्छेप । भ्रमसों अशुभ करमको लेप ॥
अशुभ कर्म दुरमतिकी सानि । दुरमति करे धर्मकी हानि १३
एकादशम काठिया नींद । जानु उदय जिय वस्तु न बींद ॥
मन बच काय होय जड़रूप । बूढ़े धर्म कर्मघनकूप ॥ १४ ॥
टग द्वादशम अष्टमद् भार । जायें अकररोग अधिकार ॥
अकररोग अरु विनयविरोध । अहं अविनय तहें धर्मनिरोध १५
तेरम चरम काठिया मोह । जो विवेकसों करे विछोह ॥
अविवेकी मानुष तिरजंच । धर्मधारणा धरे न रंच ॥ १६ ॥
येही तेरह करम टग । लेहि रतन प्रय छीन ॥
याते संसारी दशा । कहिये तेरह तीन ॥ १७ ॥
शिव मयोरस काठिया.

अथ अध्यात्म गीत लिख्यते.

राग गीता.

मनका प्यारा जो मिले । मेरा सहज सनेही जो मिले ॥ टेक ॥
मे अजोध्या आत्म राम । सीता मुमति करे परणाम ॥
मेरा मनका प्यारा जो मिले, मेरा सहज ० ॥ १ ॥
कत मिलनको चाव । समता सखीसों बदे इसभाव ॥
मेरा मनका प्यारा जो मिले, मेरा ० ॥ २ ॥

मैं विरहिन पियके आधीन । यों तन्फों ज्यों जल बिन मीन
मेरा मनका प्यारा जो मिले, मेरा० ॥ ३ ॥

बाहिर देखू तो पिय दूर । घट देखे घटमें भर पूर ॥
मेरा० ॥ ४ ॥

घटमहि गुप्त रहै निरधार । वचनअगोचर मनके पार ॥
मेरा० ॥ ५ ॥

अलख अमूरति वर्णन कोय । कबधों पियको दर्शन होय ॥
मेरा० ॥ ६ ॥

सुगम सुपंथ निकट है ठौर । अंतर आड विरहकी दौर
मेरा० ॥ ७ ॥

जउ देखों पियकी उनहार । तन मन सर्वस डारों वार ॥
मेरा० ॥ ८ ॥

होहुं मगन में दरशन पाय । ज्यों दरियामें बूंद समाय ॥
मेरा० ॥ ९ ॥

पियको मिलों अपनपो खोय । ओला गल वाणी ज्यों होय ॥
मेरा० ॥ १० ॥

मैं जग ह्रंद फिरी सब टोर । पियके पटतर रूप न ओर ॥
मेरा० ॥ ११ ॥

पिय जगनायक पिय जगत्तार । पियकी महिमा अगम अपारा ॥
मेरा० ॥ १२ ॥

पिय सुनिरत सब दुखमिट जाहि । मोरनिरस ज्यो चोर पलाहि

मेरा० ॥ १३ ॥

भयभंजन पियको गुनवाद । गजगजन ज्यो केहरिनाद ॥

मेरा० ॥ १४ ॥

भागइ भरम करत पियध्यान । फटइ तिमिर ज्यो जगत भान

मेरा० ॥ १५ ॥

दोष दुरइ देखत पिय ओर । नाग डरइ ज्यो बोलत मोर ॥

मेरा० ॥ १६ ॥

वसों सदा मैं पियके गाँउ । पियतज और कहाँ मैं जाँउ ॥

मेरा० ॥ १७ ॥

जो पिय जाति जाति मम सोइ । जातहि जात मिले सब कोइ

मेरा० ॥ १८ ॥

पिय मोरे पट, मैं पियमहि । जलतरंग ज्यो द्विविधा नाहि ॥

मेरा० ॥ १९ ॥

पिय मो करता मैं करतूति । पिय शानी मैं शानविभूति ॥

मेरा० ॥ २० ॥

पिय सुखसागर मैं सुखसीव । पिय शिवमन्दिर मैं शिवनीव ॥

मेरा० ॥ २१ ॥

पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम । पिय माधव मो कमला नाम ॥

मेरा० ॥ २२ ॥

पिय शंकर मैं देवि भवानि । पिय जिनवर मैं केवलवानि ॥

मेरा० ॥ २३ ॥

पिय भोगी मैं मुक्तिविशेष । पिय जोगी मैं मुद्रा मेप ॥

मेरा० ॥ २४ ॥

पिय मो रसिया मैं रसरीति । पिय ब्योहारिया मैं परतीति ॥

मेरा० ॥ २५ ॥

जहां पिय साधक तहाँ मैं सिद्ध । जहां पिय टाकुर तहाँ मैं रिद्ध ॥

मेरा० ॥ २६ ॥

जहां पिय राजा तहाँ मैं नीति । जहँ पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति ॥

मेरा० ॥ २७ ॥

पिय गुणग्राहक मैं गुणपांति । पिय बहुनायक मैं बहुमांति ॥

मेरा० ॥ २८ ॥

जहँ पिय तहँ मैं पियके संग । ज्यों शशि हरिमें ज्योति अमंग ॥

मेरा० ॥ २९ ॥

पिय सुमिरन पियको गुणगान । यह परमारथपंथ निदान ॥

मेरा० ॥ ३० ॥

कहइ ब्यवहार बनारसिनाब, चेतन सुमति सटी इकठॉब ॥

मेरा० ॥ ३१ ॥

इति चेतनमुपसृतिगीत.

अथ पंचपदविधान लिख्यते.

सोदा.

नमो ध्यानपर पंचपद, पंचगु शान अराधि ।

पंचगुचरण चितारचित, पंचकरनरिपुमावि ॥ १ ॥

चौपाई (१५)

बन्दो श्रीअरहंत अभीष्ट । बन्दो स्वयंनिष्ठ जगदीश ॥

बन्दो आचारज उवशाय । बन्दो साधुगुरुके पाव ॥ २ ॥

एई पंच इष्ट आधार । इनमें देव एक गुरु चार ॥

सिद्ध देव परमिद्ध उदार । गुरु अरहंतादिक अनगार ॥ ३ ॥

निद्ध सोई जग करे न बोह । भयो कदाच न कबहू टोह ॥

अग्य असंहित अविचलधाम । निर्मल निराकार निरनाम ४

अब गुरु कहों चार परकार । परम विधान धरमधनधार ॥

गरमवंत शुभ कर्म गुआन । त्रिभुवनमाहिं पुरुष परधान ॥५॥

प्रथम परमगुरु श्रीअरहंत । द्वितीय परमगुरु गुरि महन ॥

तृतीय परमगुरु भीउवशाय । चौथे परम गुरुगु गुनिराय ॥६॥

परम ज्ञान दर्शनभंडार । बाणी गिरे परम शुभकार ॥

परम उदारिक तनपारत । परम गुरुगु बहिये अररन ॥ ७ ॥

धर्मध्यान धारे उत्तरिष्ट । भाषे धर्मदेसना सिष्ट ॥

धर्मनिधान धर्मगो प्रेम । धर्म गुरुगु आधारज एम ॥ ८ ॥

ओइह पुरुष ग्यारह अव । पटे गरम जान सारदंग ॥

परबो मर्म बटे सगुशाय । बाते परम गुरुगु उवशाय ॥ ९ ॥

षट् आवश्यक कर्म नित करें । त्रिविधि कर्मममता परिहरें ॥
 विपुल करम साथें समकित्ती । परम सुगुरु सामानिक जती १०
 पंच मुपद कीजइ चित्तौन । दुरित हरन दुख दारिद दौन ॥
 यह जप मुख्य और जप गौन । इस गुण महिमा बरणै कौन ११
 दोहा ।

महामंत्र ये पंचपद. आराधै जो कोय ।

कहत बनारसिदास पद, उलट सदाशिव होय ॥ १२ ॥

इति धीपंचपद विधान.

अथ सुमतिके देव्यष्टोत्तरशतनाम.

नमौ सिद्धिसाधक पुरुष, नमौ आत्माराम ।

वरणों देवी सुमतिके, अष्टोत्तरशत नाम ॥ १ ॥

तोइक छन्द ।

सुमति समुद्धि सुधी सुबोधनिधिसुता पुनीता ।

शशिषदनी सेमुषी शिवमती धिषणा सीता ॥

सिद्धा संजमवती स्यादवादिनी विनीता ।

निरदोषा नीरजा निर्मला जगत असीता ॥

शीलवती शोभावती, शुचिधर्मा रुचिरीति ।

शिवा सुभद्रा शंकरी, मेधा दृढपरतीति ॥ २ ॥

यष्माणी ब्रह्मजा ब्रह्मरति, ब्रह्मअधीता ।

पद्मा पद्मावती वीतरागा गुणगीता ॥

शिवदायिनि शीतला राधिका, रमा अजीता ।

समता सिद्धेश्वरी सत्यभामा निरनीता ॥

कल्याणी कमला कुशलि, भवभजनी भवानि ।

लीलावती मनोरमा, आनन्दी सुखस्तानि ॥ ३ ॥

परमा परमेश्वरी परम पंडिता अनन्ता ।

असदाया आमोदवती अमया अपहंता ॥

ज्ञानपती गुणवती गौमती गौरी गंगा ।

लक्ष्मी विद्याधरी आदि सुंदरी असंगा ॥

चन्द्राभा चिन्ताहरणि, चिद्विद्या चिद्वेलि ।

चेतनवती निराकुला, शिवमुद्रा शिवकेलि ॥ ४ ॥

चिदयदनी चिद्रूप कला समुमती विवित्रा ।

अर्धगी अक्षरा जगत्जननी जगमित्रा ॥

अविकारा चेतना चमत्कारिणी चिदंका ।

दुर्गा दर्शनवती दुरितहरणी निकलंका ॥

धर्मधरा धीरज धरनि, मोहनाशिनी वाम ।

जगत् विकाशिनि भगवती, भ्रमभेदनी नाम ॥ ५ ॥

वसन्तमन्द

निपुणानवनीता, नित्यविनीता, सुप्रसा भवसागरतरणी ।

निगमा निरबानी, दयानिधानी, यद् सुबुद्धिदेवी वरणी ॥ ६ ॥

इति धीगुमतिदेविस्तव.

अथ शारदाष्टकं लिख्यते.

वस्तु छन्द.

नमो केवल नमो केवल रूप भगवान् ।
 मुस ओंकारधुनि मुनि अर्थ गणधर विचारे ॥
 तनि आगम उग्रदिसै भविक जीव संशय निशारे ॥
 सो सत्पारथ शारदा तागु, भक्ति उर आन ।
 छन्द भुगंगमपानमै, अष्टक कही बखान ॥ १ ॥

भुगंगमपान.

त्रिनादेशजाता त्रिनेन्द्रा रिपुघाता ।
 त्रिशुद्धमपुद्गा नमो लोहमाना ॥
 दुर्गाचा दुर्नेदरा शंकरानी ।
 नमो देवि मागेधरी जैनानी ॥ २ ॥
 गुणगमैगमावनी धर्मसाया ।
 गुणनामनिर्नाशनी मेघमाया ॥
 महामोहनि वननी मोघदानी ।
 नमो देवि मागेधरी जैनानी ॥ ३ ॥
 अभेदप्रदाया अनीतानिघाता ।
 कया मन्हुना माहुना देशमाता ॥
 विद्वन्मन्त्र-वृणन्मन्त्री राजधानी ।
 नमो देवि मागेधरी जैनानी ॥ ४ ॥

समाधानरूपा अनूपा अलुदा ।

अनेकान्तधा स्यादवादाऽमुदा ॥

त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी वस्तानी ।

नमो देवि बागेश्वरी जैनवानी ॥ ५ ॥

अकोपा अमाना अदंभा अलोभा ।

श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञानशोभा ॥

महापावनी भावना भय्यमानी ।

नमो देवि बागेश्वरी जैनवानी ॥ ६ ॥

अतीता अजीता तदा निर्विकारा ।

विपैकाटिकारखंडिनी राक्षधारा ॥

पुरापापविशेषकर्तृ कृपाणी ।

नमो देवि बागेश्वरी जैनवानी ॥ ७ ॥

अगाधा अबाधा निरंघ्रा निराशा ।

अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥

निशंका निरंका चिदंका भयानी ।

नमो देवि बागेश्वरी जैनवानी ॥ ८ ॥

अशोका मुदेका विवेका विधानी ।

अगञ्जन्तुमित्रा विवित्रावसानी ॥

समसायलोका निरम्मानिदानी ।

नमो देवि बागेश्वरी जैनवानी ॥ ९ ॥

જગુષ્ઠંદ.

જૈનરાત્રી જૈનવાત્રી મુનદિ જે જીવ ।

જે આગમ રુનિષરે જે પ્રતીતિ મન માદિ આનદિ ।

અરુપારદિ જે પુરુષ સમર્થ પર અર્થ જાનદિ ॥

જે દિલેહેવુ ધનારમી, દેદિ ધર્મે ઉપદેશ ।

તે મત્ર પાત્રદિ પરમ મુગ્ધ, તત્ર સંગાર કલેષ ॥ ૧૦ ॥

હી જાણાવક

અથ નવદુર્ગાવિધાન લિખ્યતે.

કવિત.

પ્રથમદિ સમકલિતરૂપ સ્થિતિ આપાવર,

પરકો મુખ્ય ત્યાગી આવ મદહેવુ દે ।

વર્ણવિશેષક મુખ્યમાત્રક અરુપા મેર,

માત્રક દે વિદિધિપરકો મુદાદિ દેવુ દે ॥

સાંસ્કૃતમુગ્ધાન આદિ છીનમોદ પ્રવન,

નવમુગ્ધાન નિર્નિત માત્રકકો મેનુ દે ॥

મધ્યમ વિદ્યન વિના માત્રક મુખ્યમાત્ર,

ત્રી ત્રી વસ્તુક કો ત્રી મેધ્યમ મુખ્યુ દે ॥ ૧ ॥

ત્રી કહ મુખ્યકો કલ્પ કલ્પ વન,

કલ્પ મુખ્યકો મદ મુખ્યકો મુખ્યુ દે ।

ત્રી માત્રક દેવ કેરક મુખ્ય વિન,

માત્રક મુખ્યુ દેદિધિ વિદિધિ દે ॥

ज्ञानकी अवस्था दोऊ निश्चय न भेद कोऊ,
 ध्यरहा भेद देव देवी यह व्यग है ।
 ऐगो साध्य साधक स्वरूप गूढ़ो भोग्यपथ,
 संतनको सत्पारथ मूढनको टिंग है ॥ २ ॥

जाको भोनभवकृप मुकुट विवेकरूप,
 अनाचार रासभ आरुद्धुनि गूरी है ।
 जाके एक दास परमारथ कलश दूजे,
 दास त्याग दासनि मोहारी सिंधि बंधी है ।

जाके गुणधपण विचार यहै दागी भोग,
 औषन भगतिग्गरागसो अरुणी है ॥
 मो है देवी दीनन्या गुमनि गुप्त संतनको,
 दुरबुद्धि भोगनको रोगग्र गूरी है ॥ ३ ॥

कूपसो निकम जबभूपर उदोन भई,
 तब और ज्योति गुग ऊपर बिगजी है ।
 भुजा भई श्रीगुणी दासनि भई सौगुणी,
 हजार गण श्रीगुणी रजायहिनि दासी है ॥

गुंगसो प्रगल्भो नूर, रागभसो भयो नूर,
 रूप भयो लजसो पुटारी रास रात्री है ।
 ऐसन को रंगसो सो कचनरो अग भयो,
 लजपति नामभयो दासी रीति साजी है ॥ ४ ॥

होहा ।

जाके परसत परममुक्त, दरसत दुख भिट जादि ।

यहे मुमति देवी प्रगट, नगर कोट घटमादि ॥ ५ ॥

कवित्त ।

यहे संप्रपञ्चस्वरूप मानरंरी भरे,

यह हे अनरी विरानेद अनुमरणो ।

यह ध्यान अमनि प्रगट भये ग्यान्नामुम्भी,

यहे चंडी मोट मदिसागुर निररणी ॥

यहे अष्टमुत्री अष्टकभेदी शक्ति भेते,

यहे काठबंजनी उलंघे काठकरणी ।

यहे भवता बनी दिगजे विभुवन राणी,

यहे देती गुमानि अनेकमानि वरणी ॥ ६ ॥

यहे कामनादिनी कविता कश्मिं कहावे,

यहे ब्रह्मचारिणी कुमारी हे अपरणी ।

यहे भर्गानि यहे दुर्गा दुर्गेने जाही,

यहे लवणी मुख्यापनादनी ॥

यहे लम्प्यानी महत्त्व नीना मनी,

यहे अहि मुदगी विरोधमिदवनी ।

यहे प्रमत्ता बन्धुदण्डा देनिवरी,

यहे देती मुक्ति अनेकमानि वरणी ॥ ७ ॥

यहै सरस्वती हंसवाहिनी प्रगट रूप,
 यहै भवभेदिनी भवानी शंभुधरनी ।
 यहै ज्ञान लच्छनमों लच्छमी विनोदियन,
 यहै गुणरत्नमंडार भारभरनी ॥
 यहै गंगा त्रिविधि विचारमें त्रिषध गौनी,
 यह मोखसाधनको सीरयकी धरनी ।
 यहै गोपी यहै राधा रांध भगवान भाँद,
 यहै देवी गुमनि अनेकभाँति वरनी ॥ ८ ॥
 यहै परमेश्वरी परम आदि शिदि गाथे,
 यहै जोग माया व्यवहार दार दगनी ।
 यहै परमावनी पद्म उयो अनेप रहै,
 यहै शुद्ध शक्ति मिश्यातकी कनरनी ॥
 यहै जिनमहिमा बखानी जिनशासनमें,
 यहै असंहित शिष्यमहिमा अमरनी ।
 यहै रामभोगनी वियोगमें वियोगिनी है,
 यहै देवी गुमनि अनेकभाँतिवरनी ॥ ९ ॥

हरी धीनबहुधां विधान

अथ नामनिर्णयविधान लिख्यते.

शेषः ।

काह् दिन काह् समय, कृष्णभाह् समेन ।

गुणक नामनिर्णय कहे, भविक जीव दिनहेतु ॥ १ ॥

जीव द्विगुण ममात्मन, अविभक्त्य विभक्त्य ।

अविभक्त्येत्तन्मयी भाव्य, विभक्त्येत्तन्मय अनुभू ॥ २ ॥

कविः (३३ वर्ग)

जो हे अविनाशी वस्तु नाहो अविनाशी नाम,

विनाशीक वस्तु जाहो नाम विनाशीक हे ।

ज ज मी बाग हीने मीने समस्तीतान,

सोह मी बाह जीव मी बाह दीक हे ॥

अनादि अनन ममानहो गुणन नाम,

अनादि नामन नामन नष्टीक हे ।

अनादि मी जो नष्ट नष्ट दिष्ट दिष्ट वेद,

अनादि गुणन नाम नाहो अनादि हे ॥ ३ ॥

कविः ।

हि न मी नष्ट नाम कहे, नष्ट कहे नष्टेन ।

मन नष्ट निश्चयन मी, समन मी विवेक ॥ ४ ॥

कविः

अने निश्चय मी हीन अन कहे हे महीन,

अने नष्ट मी नष्ट हे अने वेदना ।

अने नष्ट मी नष्ट मी नष्ट मी नष्ट मी,

मो नष्ट मी नष्ट मी नष्ट मी नष्ट मी ॥

बार बार कहै मोह भागवंत बनवंत,
मेरा नाव जगतमें सदाकाज रहेगा ।
याही ममतामों गदि आयो है अनन्त नाम,
आगे योनियोनिमें अनन्त नाम गईगा ॥ ५ ॥

रोहा ।

बोल उठै चित चाँकि नर, गुनन नामकी टाँक ।
वहै दाऊद मतगुरु कहै, है भमकृप धमाक ॥ ६ ॥

वर्णितः ।

जगतमें एक एक जनके अनेक नाम,
एक एक नाम देगिये अनेक जनमें ।
या जन्म और या जनम और आगे और,
फिरता रहै ये याकी धिक्ता न तनमें ॥
कोई कल्पना कर ओई नाम धरे जाफो,
गोई जीव गोई नाम माने तिहूँ वनमें ।
ऐसो विरक्त लख संतमों गुरु कहै,
तेरो नाम भ्रम तु विचार देल मनमें ॥ ७ ॥

रोहा

नाम अनेक समीप तुझ, अंग अंग सब दौर ।
जासो तू अवनो कहै, सो भगलपी और ॥ ८ ॥

वर्णितः ।

बेरा हीन भाव मोह बरणी पचक नैन,
गोलक कपोल मंड मारता गुम भौन है ।

रोगी दाद्रीषीडित पुरुष, वृद्ध नारि रसगृद्धचित ।

एते विडम्ब्य संसारमें, इन सब कहैं विकार नित ॥ ६ ॥

प्रात धर्म चिन्तवै, सहजहित मंत्र विचारै ।

चैर चलाय चहुं ओर, देशपुर प्रजा संहारै ॥

राग द्वेष हिय गोप, वचन अप्रत सम बोलै ।

समय ठौर पहिचान, कठिन कोमल गुण खोलै ॥

निज जतन करै संचय रतन, न्यायमित्र अरि सम गनै ।

रणमें निशंक है संचरै, सो नरेन्द्र रिपुदल हनै ॥ ७ ॥

कृपण बुद्धि यश हनै, कोप दृढ़ प्रीति बिछोरै ।

दंभ विध्वंसै मत्य, क्षुधा मर्यादा तोरै ॥

कुव्यमन धन छय करै, विपति धिरता पद टारद ।

मोह मरोरै ज्ञान, विषय शुभ ध्यान बिडारइ ॥

अभिमान बिछेदै विनय गुण, पिगुनकर्म गुरुता गिनै ।

कुक्कलाभभ्यास नामदि सुषय, दारिदसों आदर टनै ॥ ८ ॥

नियबल मोवन समय, साधुबल शिष्यथ मंथर ।

नृपबल तेज प्रताप, दुष्टबल वचन अटम्बर ।

निर्धनबल मुमिलाप, दानिमेवा याचकबल ।

याजिजबल व्यवहार, ज्ञानबल वरविशेकदल ॥

विद्या विनय उदारबल, गुणवमूह प्रभुबल दरब ।

परिवार स्वबल मुविचार कर, होदि एक ममता गरब ॥ ९ ॥

नरपतिमंडन नीति, पुरुषमंडन मनपीग्व ।

पटितमंडन विनय, तान्त्रमर्ममंडन नीरज ॥

कुन्तलियमंडन न्यज, वचनमंडन प्रमत्तमुग ।

मनिमंडन कवि धर्म, माधुमंडन गमाधियुग ॥

भुजबन्धसमर्थ मंडन लम्बा, गृहपति मंडन विपुल धन ।

मंडन मिद्वान्त रुचि मन्त्र कटे, कायामंडन लवेन धन ॥ १० ॥

ज्ञानवन्त दृढ गर्दे, निश्चय परिवार वशादे ।

विधवा करे गुमान, धनी गेवह दे पार्व ॥

बृद्ध न समझे धर्म, नारि मता अपमाने ।

पटित क्रिया विहीन, राय दुर्बुद्धि प्रमाने ॥

कुलवेन पुरुष कुलविधिमाने, धेनु न माने संभुटिन ।

एव्यासधार धन समदे, ए जगमे सुगम विदिन ॥ ११ ॥

इति धीमतराज वदित

अथ अष्टप्रकारजिनपूजन लिख्यते.

सोता ।

जलधारा चन्दन पुटुपे, अक्षत अरु नेवेद ।

दीप धूप फल अर्घ्यगत, जिनपूजा वसुभेद ॥ १ ॥

जल-मलिन धानु उज्ज्वल करे, यद स्वभाष जलमादि ।

जलसो जिनपद पूजते, हृन्तकेन्द्र दिट जाति ॥ २ ॥

चन्दन-तप्तस्मृ शीतक करे, चन्दन शीतक अत ।

चन्दनमो विन पूजने, मिटे मोक्षमेवा ॥ ३ ॥

गुण्य-गुण्य चैतय्य गुण्यार, भारे मनमथ बीर ।

माने पूजा गुण्यकी, हरे मदनगररीर ॥ ४ ॥

अज्ञान-तन्दुल पत्र पवित्र अति, नाम मु अश्वन ताग ।

अज्ञानमो विन पूजने, अज्ञान गुण्यारकाग ॥ ५ ॥

नेत्र-वस्त्र अत्र नेत्रेय विधि, शुभाहरण तन पोष ।

जिह्वाज नेत्रमो, जिह्वादि शुभादिह दोष ॥ ६ ॥

दीपक-भाला पर देगे गच्छ, निशिमि दीपक होय ।

दीपकमो विन पूजने, निमज्जानापोष ॥ ७ ॥

पूज गच्छ दरे गुणनिष्ठो, पूज कदापि मोष ।

मेवय पूज विनेयको, कर्म दहन छर होय ॥ ८ ॥

कण्ठ जो नेगी कर्मी करे, सो नेगा कर्म लेव ।

कर्म पूजा निन्देयकी, निमज्ज निवर्त्तन देव ॥ ९ ॥

अग्नि-यह विन पूजा अर्चति, कीरे कर श्रुति अन ।

वर्त्तमान दशमो, दीने अग्नि पश्ये ॥ १० ॥

इति मन्थरत्राकरे

अथ दशदानविधान निष्कर्षने.

सो मुदरे दाने दान, मर मुदरे दान ।

मुदरे दाने दान, मर मुदरे दान ॥ १ ॥

१ मुदरे दाने दान, मर मुदरे दान ।

अथ इनको विवरण कहें, भावितरूप बसानि ।

अलसरीति अनुभवकथा, जो समझें सो दानि ॥ २ ॥

चाँपाई ।

गो कहिये इन्दी अभिषाना । बहुरा उमँग भोग पय पाना ॥

जो इसके रसमाहि न राखा । सो सबच्छ गोशानी सौँचा ॥ ३ ॥

फनक सुरंग मु अक्षर बानी । तीनों शब्द सुवर्ण कहानी ॥

ज्यों त्यागें तीनटुंकी सावा । सो कहिये सुवरणको दाता ॥ ४ ॥

पराधीन पररूप गरासी । यों दुर्बुद्धि कहावे दासी ॥

ताकी रीति तबै जब ज्ञाता । तब दासीदातार विख्याता ॥ ५ ॥

सनमन्दिर चेतन परवासी । ज्ञानदृष्टि पट अन्तरभासी ॥

समक्षे यह पर है गुण मेरा । मन्दिरदान होहि तिहि बेरा ॥ ६ ॥

अष्ट महामद धुरके साथी । ए कुकर्म कुदशाके साथी ॥

इनको त्याग करे जो कोई । गम्यदातार कहावे सोई ॥ ७ ॥

मनसुरंग चढ़ जानी दीरह । लरी सुरंग अंतरमे जीरह ॥

निज दगकी निजरूप कहावे । सो सुरंगको दान कहावे ॥ ८ ॥

गविनाशी कुलके गुण गावे । कुल कल्पि सद्बुद्धि कहावे ॥

बुद्धि अतीत धारणा कैली । परे कल्पदानकी सैली ॥ ९ ॥

ब्रह्मविलास तेल सल्लि माया । मिथविड तिल नाम कहाया ॥

पिटरूप गदि द्विविधा मानी । द्विविधा तबै सोइ तिलशरीर ॥ १० ॥

जो व्यवहार अवस्था होई । अन्तरभूमि कहावे सोई ॥

तब व्यवहार जो निध्य माने । भूमिदानकी विधि सो जाने ॥

शुक्ल ध्यान रथ चढ़े सयाना । मुक्तिपन्थको करै पयाना
रहे अजोग जोगसों यागी । वहै महारथ रथको त्यागी ॥ १ ॥

ये दशदान जु मैं कहे, सो शिवभासनमूल ।

ज्ञानवन्त सूक्ष्म गहै, मूढ़ विचारै धूल ॥ १३ ॥

ये ही हित चित जानको, ये ही अहित अजान ।

रागरहित विधिसहित हित, अहित आनकी आन ॥ १४ ॥

इति दशदानविधान.

अथ दश बोल लिख्यते.

चाँपार्ह.

जिनकी मांति कहों समुझार्ह । जिनपद कहा सुनो रे भार्ह
धर्म स्वरूप कहावे ऐसा । सो जिनधर्म बखानौ जैसा ॥ १ ॥

आगम कहो जिनागम सांचा । बरणों बचन और जिन वाच
मत भाषहुं जिनमत समुझावहुं । ये दश बोल अचारथ गावहुं

जिन-दोहा ।

सहज वन्धवदक रहित, सहित अनन्तचतुष्ट ।

जोगी जोगव्रतीत मुनि, सो जिन आत्म मुष्ट ॥ ३ ॥

जिनपद ।

विधि निषेध जानै नहीं, जहँ अस्मंद रम वान ।

विमल अवम्या जो धरै, सो जिनपद परमान ॥ ४ ॥

धर्म ।

सहिये वस्तु अवस्तुमें, यथा अवस्थिन जोय ।

जो म्बमाव जामे मयै, धर्म कहावे सोय ॥ ५ ॥

त्रिनयनं ।

गुरुरा प्रमाण पदपदा, वचन बीज विभाज ।

धैर अर्धकी अगमना, यह आगमकी दार ॥ ६ ॥

त्रिनयनम ।

जदा द्रष्टा पर मत्त मय, लोकलोष्ट विचार ।

विचार कर अनंत मय, सो त्रिन आगम गार ॥ ७ ॥

वचन ।

बहु अक्षर मुद्रा धैर, कर्त अनक्षर भाग ।

गुना सत्य अनुभव उभय, वचन सार परदार ॥ ८ ॥

त्रिनयनम ।

जाकी दत्ता निरक्षरी, मटिगा अक्षर मय ।

स्यादक्षरद्वय सत्यमय, सो त्रिनयन अनुर ॥ ९ ॥

मत ।

यापि निज मतकी विषा, निर्दे परामर्शनि ।

मुखाचारसो बंधि रटे, यह मतकी चर्चानि ॥ १० ॥

त्रिनयन ।

अर्ध देव गुणाधु गुन, दया धर्म अर्ध होय ।

बे वच भाषित बीति अर्ध, कर्तिये त्रिनयन होय ॥ ११ ॥

इति द्वाविंश

प्रश्न-शब्द अगोचर वस्तु है, क्यूँ कहाँ अनुमान ।

जैसी गुरु आगम कही, तैसी कही नुज्ञान ॥ ७ ॥

उत्तर-शब्द अगोचर कहत है, शब्दमाहि पुनि सोय ।

स्यादवाद शैली अगम, विरला वृत्त कोय ॥ ८ ॥

प्रश्न-वह अरूप है रूपनै, दुरिके कियो दुराव ।

जैसे पावक काठमें, प्रगटे होत लत्ताव ॥ ९ ॥

उत्तर-हुतो प्रगट फिर गुप्तमय, यह तो ऐसो नाहि ।

है अनादि ज्यों सानिमै, कंचन पाहनमाहि ॥ १० ॥

इति प्रश्नोत्तर दोहा.

अथ प्रश्नोत्तरमाला लिख्यते.

नमस्त शीत गोविन्दसो, उद्धव पण्डित एव ।

कै विधि यम कै विधि नियम, कहा यथावत जेम ॥ १ ॥

समता कैसी दम कहा, कहा तितिक्षा माय

धीरज दान जु तप कहा, कहा मुमट विवसाव ॥ २ ॥

कहा सत्परति है कहा, शौच त्याग धन इष्ट ।

यश दक्षिणा बलि कहा, कहा दया उनकिष्ट ॥ ३ ॥

न कहा लज्ज विषा कहा, लज्जा लक्ष्मी गूढ ।

अरु दुस्त देखे क कहा, को पंडित को मूढ ॥ ४ ॥

इगधे कर्मों ने कहा, स्वर्ग नरक चितौन ।

यह बल्ला दे, अरु गूढ कहा, धनी दरिद्री कौन ॥ ५ ॥

फौन पुरुष कहिये कृपण, को ईश्वर जग माहि ।

ये सब प्रश्न विचार मन, कही मधुष हरिपाहि ॥६॥

नारायण उत्तर कहै, गुन उद्भव मन लाय ।

द्वादश यम द्वादश नियम, कहें तोहि रामुझाय ॥७॥

दया सत्य धिरता रुमा, अभय अर्थाय सुमीन ।

लाज असंग्रह अस्मित, संग त्याग तियवीन ॥ ८ ॥

हरि पूजा संतोष गुरु, भक्ति होम उपहार ।

जप तप तीरथ द्विविधि शुचि, मद्रा अतिथि अहार ९

सोरस ।

कहे भेद बीबीस, भित २ यम नियमके ।

रहे प्रश्न बीबीस, तिनके उत्तर अब गुनहु ॥ १० ॥

समता ज्ञान गुणारस बीजे । दम इन्द्रियको निग्रह बीजे ॥

संकटसदन तिनिका धीरज । रसना मदन जीतबो धीरजा ॥ ११ ॥

दान अभय जहें दंड न दीजे । तप कामनानिरोध कहीजे ॥

अन्तरविजयगूरता सांघी । सत्यप्रज्ञ दशेन निरवाची ॥ १२ ॥

रतु अनशरी ध्वनि जहें होई । करम अमाव शौचविध सोई ।

त्याग परम सन्यास विधाना । परम परम धन हए निधाना ॥ १३ ॥

भुव धारणा यज्ञकी करनी । हित उपदेश दक्षिणा वरनी ॥

प्राणायाम बोधवत् अज्ञा । दया अशेष जन्तुकी रसा ॥ १४ ॥

लाभ भावभुभगनिपरकाशा । विद्या सो जु अदिद्यानासा ॥

लाज पुष्पे गिन्यानि कदाई । लक्ष्मी नाम निरासा पावै ॥ १५ ॥

सुखदुःखत्यागबुद्धि सुखरेखा । दुःख विषयारस भोगविशेषा ॥
 पंडित बंध मौक्ष जो जानै । मूरख देहादिक निज मानै ॥ १६ ॥
 मारग श्रीमुख आगम भाषा । उनपथ कुधी कुमन अभिजाता ॥
 मुकृतिवासना स्वर्गविलासा । दुग्ति उछाह नर्क गतिवासा ॥ १७ ॥
 बंधव हिनु म्वर्ग मुख दाना । गृह मानुषी दगीर विख्याता ॥
 पनी सो जु गुणस्वभंडारी । सदा दरिद्री कृष्णाधारी ॥ १८ ॥
 कृपण सो जु विषयारसलोभी । ईश्वर त्रिगुणातीत अछोभी ॥
 बहुत कहां लगे कहों विचक्षण । गुण अरु दोष दोहुके लक्षण १९
 दोहा ।

दृष्टि सुगुन अरु दोषकी, दोष कहांवि मोय ।
 गुण अरु दोष जहां नहीं, जहां गुन परगट होय ॥ २० ॥
 हनि प्रभोत्तरमात्रिका, उद्धवदर्शिन्याद ।
 भाषा कहत बनारसी, भानुगुणरत्नमाद ॥ २१ ॥
 हनि प्रभोत्तरमात्रिका,

अथ अवस्थाष्टक लिख्यते.

दोहा ।

चेतनज्ञान नियननय, सरे जीर इक्ष्णार ।
 मूढ़ विचक्षण परमगो, त्रिविधि रूप व्यवहार ॥ १ ॥
 मूढ़ आनमा एह विधि, त्रिविधि विचक्षण जान ।
 त्रिविधि भाव परमानमा, वत्त्रिविधि जीर बमान ॥ २ ॥

विधि निषेध जानै नहीं, हित अनहित नहिं सूझ ।
 विषयमग्न तन छीनता, यहै मूढकी वृत्त ॥ ३ ॥
 जो जिनभाषित सरदहै, अम संशय सब रोज ।
 समकितवंत असंजमी, अधम विचक्षण सोय ॥ ४ ॥
 बैरागी त्यागी दमी, स्वपर विवेकी होय ।
 देशसंजमी संजमी, मध्यम पंडित दोय ॥ ५ ॥
 अममाद गुण धानतों, क्षीणमोहलों दार ।
 श्रेणिधारणा जो धरै, सो पंडित दारमौर ॥ ६ ॥
 जो केवल पद आचरे, चढ़ि सयोगिगुणधान ।
 सो जंगम परमात्मा, मक्कासी भगवान ॥ ७ ॥
 निदिपदमें सपपद मगन, ज्यों जलमें जल बुन्द ।
 सो अविचल परमात्मा, निराकार निरुन्द ॥ ८ ॥

रति अवरधाटक.

अथ पददर्शनाष्टक लिख्यते.

शिष्यमत बौद्ध रु वेदमत, नैयायिक मतदक्ष ।
 मीमांसकमत जैनमत, पददर्शन परतक्ष ॥ १ ॥

शैवमत ।

देव रुद्र जोगी मुगुरु, आगम शिवगुण भास ।
 गनै कालपरणति धरम, यह शिवमतकी सास ॥ २ ॥

बौद्धमत ।

देव बुद्ध गुरु पाषट्ठी, जगत वस्तु छिन औघ ।
शून्यवाद आगम भजै, चारवाक मत बौध ॥ ३ ॥

वेदान्तमत ।

देव ब्रह्म अद्वैत जग, गुरु वैरागी भेष ।
वेद ग्रन्थ निश्चय धरम, मत वेदान्तविशेष ॥ ४ ॥

न्यायमत ।

देव जगतकरता पुरुष, गुरु सन्यासी होय ।
न्याय ग्रन्थ उद्यम धरम, नैयायिक मत सोय ॥ ५ ॥

मीमांसकमत ।

देव अलस दरवेश गुरु, माने कर्म गिरंथ ।
धर्म पूर्वकृतफलउदय, यह मीमांसक पंथ ॥ ६ ॥

जैनमत ।

देव तीर्थंकर गुरु यत्ती, आगम केवलि जैन ।
धर्म अनन्त नयातमक, जो जानै सो जैन ॥ ७ ॥
ए छहमत छै भेदसों, भये छूट कछु और ।
प्रतिषेड्स पाखंडसों, दशा छयानवे और ॥ ८ ॥

इति षट्दर्शनाश्च

अथ चातुर्वर्णं लिख्यते.

जो निश्चय मारग गहै, रहै ब्रह्म गुणलीन ।
ब्रह्मदृष्टि मुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन ॥ १ ॥

जो निश्चय गुण जानकै, करै शुद्ध व्यवहार ।
 जीतै सेना मोदकी, सो सखी भुजमार ॥ २ ॥
 जो जाने व्यवहार नय, दृढ व्यवहारी होय ।
 शुभ करणीसों रम रहै, वैश्य कहावै सोय ॥ ३ ॥
 जो मिथ्यामत्त आदरे, रागद्वेषकी खान ।
 विनविदेह करणी करै, शूद्रवर्ण सो जान ॥ ४ ॥
 चार भेद करतूतिसों, ऊंच नीच कुलनाम ।
 और वर्णसंकर सबै, जे मिश्रित परिणाम ॥ ५ ॥

इति चातुर्वर्ण

अथ अजितनाथजीके छंद.

गोयमगणहरषय नमो, गुमरि मुगुरु रविचन्द्र ।
 गरमुति देवि प्रसादलहि, गार्ङ्ग अजित जिनन्द ॥ १ ॥

छन्द

भीमबध्यापुर देस मुहावाजी ।
 राजै सहै जितसबू रायाजी ॥
 राया शुधर्म निधान सुन्दर, देवि विजया तनु परै ।
 तनु उदर विजय विमान सुरवर, स्वप्न सुखित अषट्ठरे ॥
 तब जन्म उत्सव करहि बासव, मधुर धुनि गावहि गुरी ।
 आनन्द त्रिभुवन जन बनारसि, भग्य भीमबध्यापुरी ॥ २ ॥
 मदियल राखिउ अजित जिनंदाजी ।
 गज बर लच्छन निर्मल चंद्राजी ॥

चन्द्रा उदित इक्ष्वाक वंशहि, कुमनि तिमर विनासिये ।
 सय साठ चार मुचाप परिमित, देह कंचन भासिये ॥
 दिद पालिराज सु गहिय संजम, मुकति पय रथ साजियो ।
 उत्पन्न केवल सुख बनारसि, अजित महियल राजियो ॥ ३ ॥

गढ़ योजनमहि रचें सुदेवाजी ।

अष्ट प्रतीहार करहिं सु सेवाजी ॥

सेवाहिं अशोक प्रसून वरसत, दिव्यधुनि तहें गाजही ।

चामर सिंहासन प्रभामंडल, छत्र तीन विराजही ॥

नवदेव दुंदभि समा वारह, चौतिसों अतिशय सही ।

सुर अमुर किन्नरगण बनारसि, रचित गढ़ योजन मही ॥ ४ ॥

लक्ष बहन्तरि पूरय आया जी ।

भोग सु जिनवर शिवपद पायाजी ॥

शिवपद विनायक सिद्धि दायक, कर्म महारिपु भंजनो ।

वरणे शिषैरायाद मंडन, भविक जनमनरंजनो ॥

सोलैसै सत्तर समय आश्वनि, मास सितपल बारसी ।

बिनयत दुहं कर जोर सेवक, मिरीमाल बनारसि ॥ ५ ॥

इति श्रीभजित नाथके छन्द.

अथ शान्तिनाथजिनस्तुति.

बाबीमहम्मद ग्वाले के चंदबाबी दास ।

सहि एरी ! दिन आज सुहाया मुस भाया आया नाहि घरे ।
 सहि एरी ! मन उदधि अनन्दा मुस, कन्दा चन्दा देह घरे ॥
 चन्द त्रिपां मेरा बहय सोहै, नैन चकोरहि मुनस करै ।
 जगज्योनि सुहाई कीरनेआई, बहु दुस तिमरबितान हरे ॥
 साहु कालविनानी अमृतधानी, अरु मृगका लाँछन कहिय ।
 भीशान्ति त्रिनेशनरोत्तमको प्रभु, आज मिला मेरी सहिय ! १
 सहि एरी ! तू परम सयानी, सुरझानी रानी राजप्रिया ।
 सहि एरी ! तू भति सुकुमारी, बरन्यारी प्यारी प्राणप्रिया ॥
 प्राणप्रिया लसि रूप अचंभा, रनि रंभा मन लाज रही ।
 कलधौत कुरंग कीलं करि केसरि, ये सँरि तोहि न होहि कही ॥
 अनुराग सुहाग भाग गुन आगरि, नागरि पुन्यहि लहिये ।
 मिलि या तुस कन नरोत्तमको प्रभु, धन्य सयानी सहिये ! २

शेषः ।

विधसेन गुलकमलरवि, अचिरा उर अवतार ।

धनुष सु चाटिस कनकतन, बन्दहुं शान्ति कुमार ॥ ३ ॥

त्रिमयी छन्द (१०, ८, ८, ९)

गङ्गापुर अवतारं, शान्ति कुमार, शिवदातारं, सुखाकारं ।

निरुपम आकारं, रचिराचारं, जगदाधारं, जितमोरं ॥

कृतअरिसंहारं, महिमापारं, विगतविकारं, जगसारं ।

परहितसंसारं, गुणविस्तारं, जगनिस्सारं, शिवधारं ॥ ४ ॥

सकल सुरेश नरेश अरु, किन्नरेश नागेश ।

तिनिगणवन्दित चरणजुग, वन्दहुं शान्ति जिनेश ॥ ५ ॥

श्रीशान्तिजिनेशं, जगतमहेशं, विगतकलेशं, भद्रेशं ।

भविकमलदिनेशं, मतिमहिशेशं, मदनमहेशं, परमेशं ॥

जनकुमुदनिशेशं, रुचिरादेशं, धर्मधरेशं, चक्रेशं ।

भवजलपोतेशं' महिमनगेशं, निरुपमवेशं, तीर्थेशं ॥ ६ ॥

करत अमरनरमधुष जमु, वचन सुधारसपान ।

वन्दहुं शान्तिजिनेश्वर, वदन निशेश समान ॥ ७ ॥

वररूप अमानं, अरितममानं, निरुपमज्ञानं, गतमानं ।

गुणनिकरस्थानं, मुक्तिवितानं, लोकनिदानं, सध्यानं ॥

भवतारनयानं, कृपानिधानं, जगतप्रधानं, मतिमानं ।

प्रगटितकल्याणं, वरमहिमानं, शिवपद्दानं, मृगजानं ॥ ८ ॥

भवसागर भयभीत बहु, भक्तलोकप्रतिपाल ।

वन्दहुं शान्ति जिनाधिपति, कुगतिलताकरवाल ॥ ९ ॥

भंजितभवजालं, जितकलिकालं, कीर्तिविशालं, जनपालं ।

गतिविजितमरालं, अरिकुलकालं, वचनरसालं, वरमालं ॥

मुनिजलजमृणालं, भवमयशालं, शिवडरमालं, मुकुमालं ।

भवितरुपतमालं, त्रिमुचनपालं, नयनविशालं, गुणमालं ॥ १० ॥

बहस-उत्पद्य ।

हीर हिमालय हंस, कुन्द सगदम निशाकर ।

कीर्तिकान्तिविस्तार, सार गुणगणरसाकर ॥

दुःकृति मंताति धाम, कामविद्वेषिविदारण ।

मागमतेगजमिह, मोदतरदलन सुधारण ॥

धीनान्तिदेव जय जितमदन, यानारसि यन्दन चरण ।

भवतापहारिहिमकर यदन, शान्तिदेव जय जितकरण ॥ ११ ॥

इति धीनान्तिनाथ श्रितश्रुति

अथ नयसेनाविधान लिख्यते.

बेसती छन्द ।

प्रथमदि पति नाम दल लेन । तासो त्रिगुण कहाँवे मेन ॥

सेन त्रिगुण सेनागुग टीक । सेनागुसगो त्रिगुण अनीक ॥ १ ॥

कीजे त्रिगुण बाहिनी सोइ । बाहनि त्रिगुण समूदल दोइ ॥

त्रिगुण बरूयनि दल परचट । मागो त्रिगुण कहाँवे दट ॥ २ ॥

दोहा ।

दंड कटक दशगुण बरहु, तर अछौंदिनी जान ।

दशगय रथ पायक सहित, ये सब कटक बखान ॥ ३ ॥

बलि ।

एक मतेगज एक रथ, तीन सुरंग प्रधान ।

सुभट सब पायक सहित, पति कटक परखान ॥ ४ ॥

सेना । चौपाई.

नव तुरंग रथ तीन सुभायक । हस्त्री तीन पंचदश पायक ।
यल चतुरंग और नहिं लेन । यह परवान कहवि सेन ॥ ५ ॥
सेनामुख ।

सचाईस घोड़े नव हाथी । पैतालिस पायकनर साथी ।
नवरथ सहित कटक जो होई । दल सेनामुख कहिये सोई ६
भनीकनी ।

मत्त मतङ्ग सात अरु बीस । पवन बेग रथ सचाईस ।
अनुग एकसौ पैतिस ठीक । हय इक्यासी सहित अनीक ॥ ७ ॥
बाहिनी । आभाजक छन्द ।

इक्यासी गजराज घोरघन गाजने ।

इक्यासी परमान महारथ राजने ॥

तीन अधिक चालीस तुरगम दोयसो ।

अनुग चारसोपच बाहिनी होय सो ॥ ८ ॥

चमू । गीता छन्द ।

गज दोयसैतेताल रथवर, दोयसौ तेताल ।

है सातसो उन्तीस परंमित, जातिवन्त रसाल ॥

जहँ सुभट बारह सौ सुपायक, अधिक दश अरु पंच ।

सो चमूदल चतुरंग शोभित, सहित नर विरजंच ॥ ९ ॥

विरुथिनी ।

रथ सातसै उन्तीस कुंजर, सातसै उन्तीस ।

हय एक विंशति सै सतासी, चपल उन्नत सीस ॥

छत्तीससौ बन्वन्त पायक, अधिक पैंतान्नीस ।

सो द्वे चरुयनि कटक दुर्दर, चटक मुन्दर दीन ॥ १० ॥

द्व-शेला ।

कुंजर द्यौय हजार एक सौ अमी मान गनि ।

जेते गज तेते प्रमान रघुराज रहे बनि ॥

नवसौ पैंतिस दशहजार पायक प्रचंड बल ।

पैंसठसै इकसठ तुरंग यह दंड नाम दल ॥ ११ ॥

अश्वोद्दिनी-छन्द ।

गज इकवीस हजार, आठ सौ सत्तर सज्जति ।

रथ इकवीस हजार, आठ सौ सत्तर सज्जति ॥

एक हजार अरु नवहजार नर सुभट सुभायक ।

तिस ऊपर तीनसौ अधिक पंचान सुपायक ॥

सोहन तुरंग पैंसठ सहस्र, छगौ अधिक दश और न्ये ।

इदिविधि अभंग चतुरंग दल, अश्वोद्दिनी प्रमाण किय ॥ १२ ॥

इति मन्त्रसेना विधान.

अथ नाट्यसमयसारसिद्धान्तके आठान्तर
फलशौक भाषानुयाद.

अक्षर ।

प्रथम अशानी जीव पंदे मे सरीव एक,

दूसरो न और मे ही करता करमको ।

अन्तर विवेक आयो जापापर भेद पायो,
 मयो बोध गयो मिट मारत भरमको ॥
 भासे छद्म द्रव्यनके गुण परजाय सब,
 नाशे दुख लक्ष्यो मुख पूरण परमको ।
 करमको करतार मान्यो पुदगल पिंड,
 आप करतार मयो आत्म घरमको ॥ १ ॥
 दोहा ।

जीव चेतना संजुगत, सदाकाल सब ठौर
 तातैं चेतनभावको, कर्ता जीव न और ॥ २ ॥
 नीतिहा ।

जे पूर्वकर्मउदयविषयरस, भोगमगन सदा रहैं ।
 आगम विषयमुख भोग बांछहिं, ते न पंचमगति लहैं ॥
 जिस हिये केवल वृक्ष अंकुर, शुद्ध अनुभव दीप है ।
 किरिया सकल तज होहिं समरस, तिनहिं मोक्ष समीप है ॥ ३ ॥
 कोऊ विचक्षण कहै मो हिय, शुद्ध अनुभव सोहये ।
 मैं भावि नथ परिमाण निर्मल, निराशी निरमोहये ॥
 समध्यान देवल माहि केवल देव परगट भासहीं ।
 कर अष्टयोग विभावपरिणति, अष्ट कर्म विनाशहीं ॥ ४ ॥

इति नाटक कलश भाषानुवाद.

अथ मिथ्यामतवाणी.

ममहर ।

नारायण देवको कहें कि परनारी रत,
 ब्रह्माको कहें कि इन कन्या निज बरी है ।
 सिद्धको कहें कि फिर फिर अवतार धरे,
 शंकरको कहें याची मारी सृष्टि मरी है ।
 अचला कहावै शूनि सो कहें पताल गई,
 अनन्त वाराटरूप धरिके उद्धरी है ।
 देसी मिथ्यामतवाणी मूढ़नके मनमानी,
 पापकी कहानी दुस्सदानी दोषमरी है ॥ १ ॥
 संतान उपजै नर देवके संजोगमेसी,
 कनककी लंका कहें अगनिमों जरी है ।
 शास्वतो सुमेरु सो उस्तारि कहें मथ्यो तिगु,
 इन्द्रको कहत गौतमकी नारि बरी है ॥
 भीम हारे दाधी ते अकाशमें फिर मदीर,
 वायस भुजुंड अजिनाजी काया करी है ।
 देसी मिथ्यामतवाणी मूढ़नके मनमानी,
 पापकी कहानी दुस्सदानी दोषमरी है ॥ २ ॥
 मैलकी बनाई मुद्रा सो कहें गणेश भयो,
 सरिताको कहें सरजसों अबनरी है ।

द्रोपदी सतीको कहें याके पंच भरतार,
कुन्तीहूको कहें पांच वार व्यभिचरी है ॥

रामसे विवेकीको कहें मुगध अवतार,
डामको सँवारो सुत नाम कुशहरी है ।

ऐसी मिथ्यामतवानी मूढ़नके मनमानी,
पापकी कहानी दुखदानी दोषभरी है ॥ ३ ॥

गाथा

कुगहगहगहियाणं मृतो जो देइ घम्मउवएसो ।
सो चम्मासी कुकर वयणंमि स्तोइ कप्पूरं ॥ ४ ॥

इति मिथ्यामनसायी.

अथ प्रास्ताविक फुटकर कविता लिख्यते.

CELESTIAL

पूरब कि पश्चिम हो उत्तर कि दक्षिण हो,
दिशि हो कि विदिश कहउ तहां पाइये ।

पठिये पढ़ाइये कि गठिये गढ़ाइये कि,
नाचिये नचाइये कि गाइये गवाइये ॥

नहाये विन साइये कि नहायकर साइये कि,
साय कर नहाइये कि नहाइये न साइये ।

जोग कीजे भोग कीजे दान दीजे छीन लीजे,
त्रिहि विधि जाने जाहू सो विधि बनाइये ॥ १ ॥

दिशि औ विदिशि दोऊ जगनधी भरजाद,

परिये रावद रात्रिये गु जइ गात्र है ।

गात्रिये गुनिष धपनाय गादये गुपुनि,

गादये गुजन गुनि गादये गुनात्र है ॥

परको संजोग सुतो योग विरै स्वाद भोग,

दीजे लीजे मायामो तो मरमको फात्र है ।

इनते असीत कोऊ भेतनको पुंज सोमें,

साके रूप जानयेको जानबो इलात्र है ॥ २ ॥

होमयन्त मानुष औ भोगुण अनन्त तामें,

जाके दिवे दुष्टता सो पापी परपीन है ।

जाके गुम्य मल्यबानी सोई तपको निधानी,

जाकी मनमा पवित्र सो तीरथयान है ॥

जामें सज्जनही रीति ताकी मयहीमो प्रीति,

जाकी भटी मदमा सो आभरणयान है ।

जामें है सुविषा सिद्धि साही के अट्टकृद्धि,

जाको अपमस गो सो मृतक समान है ॥ ३ ॥

फंचनभंडार पाय रंच न मगन हूजे,

पाय नवयोयना न हूजे जेवनारसी* ।

य पुनश्चमें बीचके दो पार लेते हैं—

* ऐसी अतिवारा बालपवनके बीचपटी,

धारा त्रिवीरूप बीच पटी जु बनारसी ।

काल असिधारा जिन जगत बनाए सोई,
 कामिनी कनक मुद्रा दुहुंको बनारसी ॥
 दोऊ विनाशी सदीव तूहै अविनाशीजीव,
 या जगत कृपवीच ये ही डोयनारसी ।
 इनको तू संगत्याग कृपसो निकसि भाग,
 माणी मेरे कहे लग कहत बनारसी ॥ ४ ॥
 (पादान्तपत्रक).

जीवके दधैया यामविद्याके सधैया दावा,
 नलके दधैया वन आसेटक करमी ।
 जुआरी लवार परपनके हरनहार,
 चौरीके करनहार दारीके अशरमी ॥
 मांसके मलैया सुरापानके चलेया,
 परबधूके ललेया जिनके हिये न नरमी ।
 रोषके गहैया परदोषके कहेया भेते,
 पापी नर नीच निरदे महा अधरमी ॥ ५ ॥
 मत्तमवन्द ।

सम्यक ज्ञान नहीं उर अन्तर, कीरतिकारण भेष बनाये ।
 मौन तजें वनशम गहै मुख, मौन रहै सगमों तन जायें ॥
 जोग अजोग कटू न विचारत, मूर्ख लोगनको भरमायें ।
 फैल करे बहु जैन कथा कहि, जैन विना नर जैन कहायें ॥ ६ ॥

भारेंउ दासगुन कुटुंबक ओछ मज,
 इनके ममवधे तू सागरे बनारसी ।

धीरज तात क्षमा जननी, परमारथ मीत महारुचि मासी ।
 ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रबधू समता अतिभासी ॥
 उपम दास विवेक सहोदर, बुद्धि कलत्र शुभोदय दासी ।
 भाव कुटुंब सदा त्रिनके दिग, यों मुनिको कहिये गृहवासी ॥७॥

ममहर ।

मानुष जन्म लखो सम्यक दरश गद्यो,
 अजहं विपै विलास त्याग मन बावरे ।
 संपति विपति आवे हरष विषाद छोड़,
 ताही ओर पीठ ओढ़ जैसी रहे बावरे ॥
 भौधिति निकट आई समता गुयाह पाई,
 गयो है निपटि जल मिथ्यात दुबावरे ।
 हूँटैगो करम पास हूँटैगो जगत बास,
 केवल उदै समीप आयो परेबा बरे ॥ ८ ॥

(सादान्तधर्मक)

जामें सदा उत्पत्त रोगनसो छीजै गात,
 कछु न उपाय छिन छिन आयु रापनो ।
 कीजै बहु पाप औ नरक दुग्य चिन्ता ध्याप,
 आपदा कलापमें विलाप साप सपनो ॥
 जामें परिगढ़को विषाद मिथ्या बकवाद,
 विषभोग सुखको सवाद जैसो सपनो ।
 ऐसो है जगतवास जैसो चपला विलास,
 तामें तूं मगन भयो त्याग धर्म अपनो ॥ ९ ॥

मत्तगबंद ।

पुण्य सँजोग जुरे रथ पायक, मोठे मतंग तुरंग तवेले ।
मान विमौ अँग यो सिरभार, कियो विसतार परिग्रह ले ले ॥
बँध बढ़ाय करी धिति पूरण, अंत चले उठ आप अकेले ।
हारि हमालकी पोटसी डारिके, और दिवारकी ओट द्यै खेले १०

छप्पव श्ल.

धान यान मिष्टान, मोम मादक नबनिजै ।
लवण हिंगु घृत तैल, बनजकारण नहिं लिजै ॥
पशुमाट्टा पशुवणिज, शस्त्र विक्रय न करिजै ।
जहाँ निरन्तर अग्नि करम, सो वणिज न किजै ॥
मधु नील लास्य विष वणिज सब, कूप तलाव न सोलिये ।
लहिये न धरम गृह वासवस, हिसक जीव न सोलिये ॥११॥

मुफ्ताको स्वामी चन्द मंगानाथ महोनन्द

गोमेदक राजा राहु लीलापति धनी है ।

केतु लहसुनी सुरपुष्प राग देव गुरु,

पन्नाको अधिप बुध शुक्र हीरा धनी है ॥

याही क्रम कीजे घेर दक्षिणावस्त फेर,

माणिक सुमेरवीच प्रभु दिन मनी है ।

आठों दल आठ ओर, करणिका मध्य ठोर

कौलकेसे रूप नौ गृही अनूप बनी है ॥ १२ ॥

बालक दशाब्दी मरजाद दश वरस लों,

बीम लों बढ़ति तीसलों मुलवि रही है ॥

चालीस लो चतुराई पंचास लो धूलताई,
 साठ लय लोचनकी दृष्टि रहस्यही है ॥
 सत्तर लो श्रवण जसी लो पुरुषत्व निर्या-
 नवे लग इंद्रियनकी शक्ति उमही है ।
 सौलौ चित्त चेत एक सौ दमोदरलौ आयु,
 मानुष जनम साकी पूरीथिति कही है ॥ १३ ॥
 चौदह विद्याभोंके नाम यथा—

कल्प्य ।

ब्रह्मज्ञान चानुरीवान, विद्या दय वाहन ।
 परम परम उपदेश, चातुर्बल बल अवगाहन ॥
 सिद्ध रसायन करन, साधि सप्तमसुर गावन ।
 घर संगीत प्रमान, नृत्य शक्तित्र मन्त्रावन ॥
 व्याकरण पाठ मुख वेद धुनि, ज्योतिष चक्र विचारवित ।
 वैद्यक विधान परवीनता, इति विद्या दमचार मित ॥ १४ ॥
 द्वासीस चीन (जाति) के नाम कवित.

शीतलगर दरजी संभोली रंगबाल ग्वाल,
 बड़ई संगतरास तेली थोनी धुनियों ।
 पंदोई कहार काठी कुन्दाल कलाल माली,
 कुंदीगर फागदी किसान पटवुनियों ॥
 चित्तेरा बिपेरा बारी लल्लेग ठठेग राज,
 पटुया छप्परबंध माई भारमुनियों ।

मुनार लोहार सिकलीगर हवाईगर,
धीवर चमार ण्ही छत्तीस पवुनियो ॥ १५ ॥

एक सौ अट्ठालीस ग्रहनि
ससु छन्द.

सत्तुष्टहि सत्तुष्टहि तुरीय गुण_गान ।
तहं तीन न्युच्छतिमई नवठाण छत्तीस जानहु ।
दशमें पुनि एक लोम बारमें सोलह सिपानहु ।
बहत्तर तेरम नसै, तेरह चौदम ण्वि ।
एम पैडि अट्ठाल सौ, होय सिद्ध तोडेवि ॥ १६ ॥

छप्पय ।

एक जान द्वै तोरि, तीन रम चार न भासहु ।
पंच जीत षट्तरास, सात तज आठ बिनाशहु ॥
नव संभारि दश धारि, म्यारमाहि बारह भावहु ।
तेरह तिर चौदहें चड्ढत, पन्द्रह बिलगावहु ॥

सोलहन भेटि सत्रह भजहु, अट्ठारह कहं करहु छय ।
सम गणि उनीस बीसहिं विरचि, पानारसि आनंद मय १७

तात्पर्य—श्लोका ।

शुद्ध आत्मा एक जिन, राग द्वेष द्वय बंध ।
तीन शुद्ध ज्ञानादि गुण, चारों विक्रया भंष ॥ १८ ॥
प्रबल पंच इन्द्री सुमट, षट विधि जीवनिकाय ।
जुआ आदि सातों व्यसन, अष्टकर्म समुदाय ॥ १९ ॥

अध्वर्युकी शक्ति नव, दश मुनिधर्मविचार ।

ग्यारह मतिमा आवकी, बारह भावन सार ॥ २० ॥

तेरह दानक जीव के, चौदह गुण ठानाइ ।

पन्द्रह जोग शरीरके, सोलह भेद कहाइ ॥ २१ ॥

सषट् विधि संयम सही, जीव समाम उनीस ।

दोष अठारह जान सब, पुद्गलके गुण बीस ॥ २२ ॥

इति प्रथमिक पुस्तक समाप्त ।

अथ गोरखनाथके वचन.

कहाई ।

जो भग देव भामिनी मानै । तिरु देस जो पुरुष प्रमानै ॥

जो बिन बिद नपुंसक जोया । कह गोरख तीनों पर सोया ॥ १ ॥

जो घर त्याग कहावे जोगी । परवासीको कहै जु भोगी ।

अन्तरमाय न परसै जोई । गोरख बोले गुरुस सोई ॥ २ ॥

पद प्रवर्द्धि जो ज्ञान बसानै । पवन साथ परमारथ मानै ।

परम सत्यके होई न मरसी । कह गोरख सो महाअपनी ॥ ३ ॥

माया जोर कहै मैं ठाकर । माया गये कहावे चाकर ।

माया त्याग होय जो दानी । कह गोरख तीनों अज्ञानी ॥ ४ ॥

कोमल पिंड कहावे चेला । कठिन पिंडसों ठेला पेला ।

जूना पिंड कहावे बूढ़ा । कह गोरख ए तीनों मूढ़ा ॥ ५ ॥

बिन परिचय जो वस्तु विचारै । ध्यान अमि विनतन परजारै ।
 ज्ञानमगन बिन रहै अबोला । कह गोरखसो बाबा मोटा ॥६॥
 मुनरे बाबा चुनियो मुनियो । उलट बेधसों उलटी दुनियां ।
 सतगुरु कहै सहजका धंधा । वाद विवाद करै सो अंधा ॥७॥

इति गोरखनाथके वचन ।

अथ वैद्य आदिके भेद.

वैद्यलक्षण.

कर्म रोगकी प्रकृती पावै । यथायोग्य औषधि करमावै ।
 उदय नादिकाकी गति जानै । सो मुवैद्य मेरे मन मानै ॥१॥

ज्योतिषीलक्षण.

नवरस रूप गिरह पहिचानै । धारह राशि मावना मानै ॥
 सहज संक्रमण साधे जोई । ज्योतिषराय ज्योतिषी सोई ॥२॥

वैष्णवलक्षणदोहा ।

तिलक तोष माला विरति, मति मुद्रा धुनि छाप ।

इन लक्षणसो वैष्णव , समुझै हरि परताप ॥ ३ ॥

जो हरि पटमें हरि लसे, हरि बाना हरि बोध ।

हरि छिन हरि मुमरन करै, विमल वैष्णव सोह ॥४॥

मुमलमानलक्षण.

जो मन मूँने आरनो, साद्विके रुख होय ।

ज्ञान भुमला गढ़ टिके, मुमलमान है सोय ॥ ५ ॥

माया, लाया एक है, घटे बड़े छिनमाहि ।

इनकी संगति जे लगे, तिनहि कहीं सुख नाहि ॥ १६ ॥

जे मायांसो राचिके, मनमें राखहि बोज ।

कै तो तिनसों खर भलो, कै जंगलको रोझ ॥ १७ ॥

इस माया के कारणे, जेर कटावहि सीस ।

ते मूरख क्यों कर सकें, हरिमकनकी रीस ॥ १८ ॥

लोभ मूल सब पापको, दुखको मूल सनेह ।

मूल अजीरण व्याधिको, मरणमूल यह देह ॥ १९ ॥

जैसी भति तैसी दशा, तैसी गति तिह पाहि ।

पशु मूरख भूपर चलहि, सग पंडित नभमाहि ॥ २० ॥

सभ्यकदष्टी कुकिया, करै न अपने बख ।

पूरव कर्म उदोत है, रस दे जाहि अवश्य ॥ २१ ॥

जो महंत है ज्ञानविन, किरै कुलाये गाल ।

आप भक्त और न करै, मो कलिमाहि कलाल ॥ २२ ॥

ज्यों पावक विन नहि सार, करै यदपि पुर दाह ।

त्यों अदराधी मित्रकी, होय भवनको चाह ॥ २३ ॥

कर्त्ता जीव सदाव है, करै कर्म स्वयमेव ।

यह तम कृत्रिम देहरा, तामे चैनन देव ॥ २४ ॥

केवलज्ञानी कर्मको, नहि कर्त्ता विन प्रेम ।

देह अकृत्रिम देहरा, देव निरंजन प्रेम ॥ २५ ॥

भूमि मान धन धान्य गृह, भाजन कुप्य अपार ।
 सयनासन चौपद द्विपद, परिगृह दस परकार ॥ २६ ॥
 स्नान पान परिधान पट, निद्रा मूत्र पुरीत ।
 ये पट कर्म सर्वाहं करे, राजा रंक सरीत ॥ २७ ॥
 उचित वसन मुखचित असन, सलिल पान सुग्न सैन ।
 मही नीति लघुनीतिसों, होय सबनको चैन ॥ २८ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

विगे दरब तेंबोल पट, झील मचित खान ।
 दिशि अहार पान रु पुदुप, सयन विन्येपन मान ॥ २९ ॥
 झीलबन्त मटे न सन, अपि पद गटे न गंत ।
 पिताञ्जल न हनें पिता, सनी न मारदि कत ॥ ३० ॥
 कामी तन मंडन पंर, दुष्ट गटे अपिकार ।
 जारजात मारदि पिता, अस्तति हनें भरहार ॥ ३१ ॥
 शानदीन करणी करे, यो निजमन आमोद ।
 ज्यों तेरी निज सुगदिनें, छुरी निकामे मोद ॥ ३२ ॥
 राजभ्रात्रि सुख भोगवें, ऐसे मूढ़ अमान ।
 महा सतिपाती करदि, जैसे शरवत पान ॥ ३३ ॥
 जहें आषा तहें आपदा, जहें संशय तहें सोय ।
 सतगुरु विन भागें नही, दोऊ जानिम रोय ॥ ३४ ॥
 जे आशाके दास ते, पुरष जगतके दास ।
 आशा दासी जात की, जगत दास दे तास ॥ ३५ ॥

संसारी उद्धार तत्र, धरै रोक पर प्यार ।
 शानी रोक न आदरे, करै दरम उद्धार ॥ ३६ ॥
 कारण कात्र न जो लसै, भेद अभेद न जान ।
 यस्तुरूप समुझै नहीं, सो मूरार परधान ॥ ३७ ॥
 देव धर्म गुरु ग्रन्थ मत, रत्न जगतमें चार ।
 साधे सीजे परलिके, हाटे दीजे डार ॥ ३८ ॥
 अज्ञारद्वेषगरहित, देव मुगुरु निरग्रंथ ।
 धर्म दया पूर्यअपर,—मतअविरोधि मुग्रन्थ ॥ ३९ ॥
 मुनिके वाणी जेनकी, जैन धरे मन ठीक ।
 जैनधर्म धिन जीवकी, जे न होय तदकीक ॥ ४० ॥
 उपजे उर सन्नुष्टता, दग गुष्टता न होय ।
 बिदे मोदमरगुष्टता, मदज गुष्टता सोय ॥ ४१ ॥

इति वैष्णवशुभादि प्रस्ताविक कविता ।

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते ।

एह जीवद्वय नाके अनन्य गुण अनन्य वर्णोप, एह
 एह गुणके अगव्याप्त प्रवेश, एह एह प्रवेशनिमित्त अनन्य
 वर्णवर्णना, एह एह वर्णवर्णानिमे अनन्य अनन्य गुणवर्णना
 एह एह गुणवर्णना अनन्य गुण अनन्य वर्णवर्णनादि
 लिख्यते, एह एह वर्णवर्णना जे । निरुद्धी भवता,
 कहीवर्ण अनन्य जीवद्वय स्वीकृत्य जानैत. एह जीव द्वय

अनंत अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि संयोगित (संयुक्त) मानने ।
ताको ब्यौरो,—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परनति; अन्य अन्यरूप
पुद्गलद्रव्यकी परनति, ताको ब्यौरो—

एक जीवद्रव्य जा मांतिकी अवस्थालिये नानाकाररूप
परिनर्नै सो मांति अन्य जीवसों मिलै नाहीं । याकी और
मांति । आहीमांति अनंतानंत स्वरूप जीवद्रव्य अनन्तानंत
स्वरूप अवस्थालिये वर्तहि । काहु जीवद्रव्यके परिणाम
काहु जीवद्रव्य औरसो मिलै नाहीं । याही मांति एक
पुद्गल परवान् एक समयमाहि जा मांतिकी अवस्था धरे, सो
अवस्था अन्य पुद्गल परवान् द्रव्यसों मिलै नाहीं । तातें
पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी ।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक छेप्रावगाही अनादिका-
लके, तामें विशेष इतनो जु जीवद्रव्य एक, पुद्गलपरवान्
द्रव्य अनंतानंत बलाचलरूप आगमनगमनरूप अनंताकार
परिणमनरूप बंधमुक्तिमुक्तिलिये वर्तहि ।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्त अवस्था तामें तीन अवस्था
मुख्य यापी । एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप
निष्ठ अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था संसारी
जीवद्रव्यकी । संसारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये ।

अथ तीनहुं अवस्थाधौ विचार—एक अशुद्ध निष्ठया-

त्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य । अशुद्धनिश्चय द्रव्यको सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यको सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यको सहकारी शुद्धव्यवहार ।

अथ निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते ।

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव । परन्तु विशेष इतनी जु यावत्काल संसारावस्था सावत्काल व्यवहार कहिये । सिद्ध व्यवहारातीन कहिये, याने जु संगार व्यवहार एकत्वा दिनायो, संगारी सो व्यवहारी, जगदारी सो गगारी ।

अथ तीनों अवस्थाको विवरण लिख्यते ।

यावत्काल निश्चयाव्य अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी । सम्भारही होय माय भगुण गुणभानहमौ । द्वादशम गुणभानचरणेन मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी । केव ज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्धव्यवहारी ।

अथ निश्चय सो द्रव्यको लक्षण, व्यवहार संगार

विस्थित भाव, ताको विवरण कहै है,—

निश्चयही जीव जानी स्वल्प माही ज्ञानी माने पर-
स्वल्पही भगन होय कहि कह्ये मानु है मा कह्ये करी
होय अशुद्धव्यवहारी कहिये । सम्भारही जानी स्वल्प
वशेष अनन्यही भगनवपु है । परमता परस्वल्पही भ

पनां कार्य नाही मानती संती जोगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप किया करतु है, ता कार्य करती मिथ व्यवहारी कदिष्ट. केवलज्ञानी यथास्थानचारित्रिक बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है ताते शुद्धव्यवहारी कदिष्ट. जोगारूढ अवस्था विद्यमान है ताते व्यवहारी नाम कदिष्ट । शुद्धव्यवहारकी सरदह त्रयोदशम गुणस्थायी लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यंत जाननी । अगिद्वत्परिणमनत्वात् व्यवहारः ।

अथ तीनहुं व्यवहारको स्वरूप कहे हैं—

अशुद्ध व्यवहार शुभानुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोपयोगमिश्रित स्वरूपाचरनरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरनरूप । परन्तु विशेष इनको इतनी जु कोऊ फटकि—शुद्धाचरणाचरणात्म ती सिद्धहविष छती है. उहां भी व्यवहार संशय कदिष्ट—सो बी नाहीं—जाने संसारी अवस्थापर्यंत व्यवहार कदिष्ट । संसागरवस्थाके मिदत व्यवहार भी बिटी कदिष्ट । इहां मद धापना बीनी है ताते सिद्धव्यवहागतीत कदिष्ट । इति व्यवहारविचार समाप्तः ।

अथ आगमअध्यात्मको स्वरूप कछ्यते ।

आगम—श्रुतिको जु स्वभाव सो आगम कदिष्ट । आगाको जु अधिकार सो अध्यात्म कदिष्ट । आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने । ते दोऊभाव संसार अवस्थाविषे विकलबर्ती मानने । ताको ज्योरी—आनन्दरूप

कर्मपद्धति, अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति । ताकाँ शौरी-
कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप
पुद्गलपरिणाम, भावरूप पुद्गलाकारआत्माकी अशुद्धपरि-
णतिरूप परिणाम-से दोऊपरिणाम आगमरूप मापे । अर
शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा
भावरूप । द्रव्यरूप सो जीवत्वपरिणाम-भावरूप ज्ञान-
रक्षण सुरादीये आरि अनन्तगुणपरिणाम, से दोऊ परिणाम
अध्यात्मरूप जानने । आगम अध्यात्म दुहुं पद्धतिविषे
अनन्तता माननी ।

अनन्तता कहा ताको विचार—

अनन्तताको स्वरूप हृद्यन्तकरि विगारणु दे जेने—
बटपुत्रको बीज एक हाथाने लीने. ताको विचार बीजे
हथियो कीने मो वा बटके बीजविने एक बटको वृक्ष हे.
मो वृक्ष जेगो कटु भाविकान्त होनदाह दे जेगो विचारविने
विगारणु बाँने बाँझरूप एगो हे. अनेक सागा प्रगाभा
पप पुत्रकलागुक्त हे कटु कर्जविने अनेक बीज होदि । वा
नानिदी अथवा एक बटके बीजविने विचारि । भी और
गुप्तकर्ज बीजे तो जे जे वा बट पुत्रविने बीज दे ते ते
अनेकानेन बटपुत्रगुक्त होदि । वादीनाँ एह रविने अनेक
अनेक बीज, एक एक बीज विने एक एक बट, माछो विचार
कीने तो भविष्यपरिवर्तन न बटपुत्रनिही मवाँदा कहए

न बीजनिकी मर्यादा पाइए । याही भांति अनंतताको स्वरूप जाननौ । सा अनंतताके स्वरूपको केवलशानी पुरुष भी अनन्तही देखै जायै कहै—अनन्तको ओर अंत है ही नाही जो ज्ञानविषै भासै । तातैं अनंतता अनंतहीरूप मति भासै, या भांति आगम अध्यात्मकी अनंतता जाननी. तामें विशेष इसनौ जु अध्यात्मको स्वरूप अनंत आगमको स्वरूप अनंतानंतरूप, यथापना प्रयानकरि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित । आगम अनंतानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित । इन दुहुँको स्वरूप सर्वथा प्रकार तौ केवलमोचर, अंशमात्र मतिधृतज्ञानमाद्य तातैं सर्वव्यापकार आगमी अध्यात्मी तौ केवली, अंशमात्र मतिधृतज्ञानी, ज्ञातादेशमात्र अवधिज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी, ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने । मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है । काहेतैं यातैं जु कथन मात्र तौ प्रत्यपाठके बलकरि आगम अध्यात्मको स्वरूप उपदेशमात्र कहै परन्तु आगम अध्यात्मको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानैं नहीं । तातैं मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात् ।

अथ मूढ तथा ज्ञानी जीवको विशेषणणी और भी सुनी.—

ज्ञाता तौ मोक्षमार्ग साधि जानै. मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै काहे—यातैं सुनौ—मूढ जीव आममपद्धतिको व्यवहार कहै अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातैं आगम

अंग पृकान्तपनौ साधिके मोक्षमार्ग दिस्तावे अध्यात्म अंगको व्यवहार न जाने यह मूढदृष्टीको समाव, बाहि माही भांनि मूझे काहेतै !—यार्त—जु आगम अंग वासकियारूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप माधिवो मुगन । ता वासकिया करनौ संतो आपहुं मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरंगमिनि जो अध्यात्मरूप क्रिया सो अंतरदृष्टिमाद्य है सो क्रिया मूढजीव न जाने । अन्तरदृष्टिके अभावसौ अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाहीं, ताँनै निष्पारदृष्टी जीव मोक्षमार्ग साधिके अतमथे ।

मय सम्बन्धदृष्टीको विचार गुनी—

सम्बन्धदृष्टी कहा सो गुनो—संशय विमोह विभग ए तीन भाव जाने नाहीं सो सम्बन्धदृष्टी । मत्तव विमोह विभग कहा नाको मत्तव दृष्टान्तकरि दिमावणु है सो गुनो—जैमि प्यार पुरन काहु पदस्थानछमि टां । निन्द पाहिहूँ अंगे एक गीतछे मंड छिनही और पुरनने जानि दिमावो । प्रयेक प्रयेकें प्रथ कीनी छियह कहाटे गीत देकें रूपो दे. प्रथमही एक पुरन मंडकायो कोल्यो—छन्द मुख नाहीन कम, छिगो गीत दे छिगो रूपो दे सोगी दृष्टिनि पाछो निम्बार होन मादिने । नी दुखो पुरन विमोहकायो कोल्यो छि—छन्द मोदि यह गुं । नाही छि सुम गीत कोनयो कहनु दे रूपो कोनयो कहनु दे मेरे दृष्टिनि छन्द आवनु नही ननि हम मादिने मानन छि

तू कदा कदा है अथवा जुप है रहे सोले नाही गहरूपमा ।
 भी तीसरो पुरुष विभ्रमवानो बोल्हो कि—यह तो म-
 त्पक्षप्रमाण रूपो है याको सीप फोन कहै मेरी दृष्टिविधै सो
 रूपो मूसतु है ताते सर्वथाप्रकार यह रूपो है । सो तीनो
 पुरुष तो वा सीपको स्वरूप जान्यो नाही । ताते तीनों मिथ्या-
 वादी । अब चौथो पुरुष बोल्हो कि यह तो मत्पक्ष प्रमाण
 सीपको खंड है यामें कदा धोमो, सीप सीप सीप, निरधार सीप,
 याको जु कोई और बस्तु कहै सो मत्पक्षप्रमाण आमक अथवा
 अंध. तैसे सम्यग्दृष्टीको स्वरूपस्वरूपविधै न संसे न विमोह
 न विभ्रम यथार्थ दृष्टि है ताठें सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि
 मोक्षपदति साधि जानै । बाह्यभाष बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो
 निमित्त नानारूप, एक रूप नाही. अन्तरदृष्टिके प्रमाण मो-
 क्षमार्ग साधै. सम्यक्ज्ञान म्यरूपाचरणकी कनिष्ठा जागे मोक्ष-
 मार्ग सांचै । मोक्षमार्गको साधिवो बंद व्यवहार, शुद्धद्रव्य
 अक्रियारूप सो निर्धै । अंसे निधय व्यवहारको स्वरूप सम्य-
 ग्दृष्टी जानै. मूढ जीव न जानै न मानै । मूढ जीव बंधपदति-
 को साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात झूठा मानै नाही । काहेत
 यानि जु बंधके साधते बंध सधै, मोक्ष सधै नाहें । जाता
 जब कदाचित बंधपदति विचारै तब जानै कि या पदतिहो
 मेरो द्रव्य अनादिको मन्यरूप चल्हो आयो है—अब या पद-
 तिहो मोक्षहोरे कहै तो या पदतिको राग पूर्वकी लो है

नर काहे करौ ? । छिन मात्र भी बन्धपद्धतिविषे मगन होव नाहीं सो ज्ञाता अपने स्वरूप विचारे अनुभवे प्याये माये मान करे नवधामति तप किया अपने शुद्धस्वरूपके सम्मुख होइकरि करे । यह ज्ञाताको आचार, माहीको नाम मिथ्यजगदार ॥

अथ हेयश्रेयउपादेयक्य ज्ञाताकी ध्याताको विचारलिकथने-

हेय-त्यागक्य तो अपने द्रव्यकी अशुद्धता, श्रेय-विचारक्य अन्यपद्धतको स्वरूप, उपादेय-आचरण क्य अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको ज्ञाते-गुणस्थानक समान हेयश्रेयउपादेयक्य शक्ति ज्ञाताकी होइ । ज्यों ज्यों ज्ञाताकी हेय श्रेयउपादेयक्य शक्ति बर्द्धमान होगे त्यों त्यों गुणस्थानककी बरकती बढ़ी है. गुणस्थानकमयान ज्ञान गुणस्थानक समान किया । नामे विज्ञेय इनको नु एक गुणस्थानककी अनेक जी । होइते तो अनेक रूपको ज्ञान कदिण, अनेक वादी जिया कदिण । निज निजगणाके समानकरि एकता निवे नाही । एक एक जीव द्रव्यविशे अन्य अन्य क्य उरी । क नाव होइति निज उदीकनावानुगामी ज्ञानकी अन्य अन्यवा बननी । १/३ विज्ञेय इनको नु कोइ शक्तिको ज्ञान जेगो न होइ नु समानवदननी है होइछि मोत्रमाणे वाशान करे कहेते अस्मत्प्रदान परममनवदन है । ज्ञानको परममनवकी परमानता न करे । जो ज्ञानहोव सो परममनवदन.

शीली होइ ताको नाउ ज्ञान । ता ज्ञानकी सहकारभूत निमित्तरूप माना प्रकारके उदीकभाव होहि । तिन्ह उदीकभावनको ज्ञाता तमासगीर । न कर्षा न भोक्ता न अवलंबी ताते कोऊ यों कहै कि या भांतिके उदीकभाव होहि सर्वथा तौ कलानौ गुणस्थानक कहिये सो सूछो । तिनि द्रव्यकी स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यो नाही । काहेतैं—यातैं जु और गुणस्थानक निफी कौन बात चलावै केवलीके भी उदीकभावनिफी नानात्वता जाननी । केवलीके भी उदीकभाव एकसे होय नाही । काहू केवलीकी दंड कपाटरूप किया उदै होय काहू केवली कौ नाही । तौ केवलीविषे भी उदैकी नानात्वता है तो और गुणस्थानक की कौन बात चलावै । तातैं उदीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाही ज्ञान स्वराविप्रवान है । स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति शायक प्रमान ज्ञान स्वरूपावरनरूप पारित्र यथा अनुभव प्रमान यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनौ । इन बातनको ज्यौरो कहाताई लिखिये कहाताई कहिए । बचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातैं यह विचार बहुत कहा लिखहि । जो ज्ञाता होइगो सो थोरी ही लिख्यो बहुतकरि समुझैगो जो अज्ञानी होयगो सो यह चिट्ठी मुनैगो सही परन्तु समुझैगा नहीं यह—वचनिका यथाका यथा मुमतिप्रवान केषलिबचनानुमारी है । जो यादिसुनैगो समुझैगो सरदैगो ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण ।

इति परमार्थवचनिका ।

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यते—

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताको व्योरो—निमित्त तो संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति । ताको व्योरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान, ताको व्योरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुणभेदकल्पना । पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना । ताकी चौमंगी. प्रथम ही गुणभेद कल्पनाकी चौमंगीको विस्तार कहाँ सोकेसैं,—ऐसैं—सुनौ—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुण, सब गुण असहाय स्वाधीन सदाकाल । सामें दोय गुण प्रधानमुख्य भापे, तापर चौमंगीको विचार एक तो जीवका ज्ञानगुण दूसरो जीवकी चारित्र्यगुण ।

ए दोनों गुण शुद्धरूप भाव जानने । अशुद्धरूप भी जानने यथायोग्य स्थानक मानने ताको व्योरो—इन दुहकी गति न्यारी न्यारी, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, मत्ता न्यारी न्यारी ताकी व्योरो,—ज्ञानगुणकी तो ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जानि, द्रव्यप्रमाण मत्ता, परंतु एक विशेष इननो जु ज्ञानरूप जानिको नाश नाहीं, मिथ्यात्वरूप जानिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यन्त, यह तो ज्ञान गुणको निर्णय भयो । अब चारित्र्य गुणको व्योरो कहे दे,—गंठजेग

विशुद्धरूप गति, धिरता अधिरता शक्ति, मंदी तीमरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता । परंतु एक विशेष जु मंदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानपर्यन्त । तीमताकी स्थिति पंचम-गुणस्थानक पर्यन्त । यह सौ दुहुकी गुण भेद न्यारौ न्यारौ कियौ । अरु इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्रके आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन । दोऊ असहाय रूप यह सौ मर्यादा बंध ।

अथ धौर्भगीको विचार—ज्ञानगुण निमित्त चारित्रगुण उपादान रूप ताको न्यारौ—

एक सौ अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान । तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको न्यारौ—सूक्ष्मदृष्टि देहकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी समुच्च-यरूप मिथ्यात्व सम्यक्त्वकी बात नाहीं बलायनी । काहू समै जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु ज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान संकलेस रूप चारित्र, काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान संकलेस चारित्र, जा समै अज्ञानरूप गति ज्ञानकी, संकलेसरूप गति चारित्रकी तासमै निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध । काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमै अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान । काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान संकलेसरूप चारित्र तासमै शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान । काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान

विगुद रूप चारित्र तासमें गुद निमित्त गुद उपादान या मांति
 अन्य २ दशा जीवकी सदाकार अनादिरूप, ताकी व्याप्ति—जान
 रूप ज्ञानकी गुदता कहिए विगुदरूप चारित्रकी गुदता
 कहिए । अज्ञान रूप ज्ञानकी अगुदता कहिए संश्रेय रूप चारि-
 त्रकी अगुदता कहिये । अब ताकी विचार सुनो—
 भिग्याण अण्णा रिं क्हाहं समं जीवधो ज्ञान गुण ज्ञान
 रूप हे तव क्हाहं जानुं हे ! ऐसो जानुं हे—कि लक्ष्मी
 गुण कण इत्यादि मोक्षो न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण । हो
 मरुगो ए इहो ही रहेंगे तो जान सु दे । अथवा ए जादिगे,
 हो रहगो, कोई कान इन्द्रियों मोदि एक दिन विजोग है
 ऐसो जानानो भिग्याणहीको होनुं है तो तो गुदता क-
 हिए, पण्णु मण्णक गुदता नाही मर्भिनगुदता तव
 वणुंछो लक्षण जाने तव मण्णक गुदता तो संविमेर विना
 होई नाही पण्णु मर्भिन गुदता गो भी अद्याप निर्भंग है
 कही जीवधो क्हाहं समं ज्ञान गुण अज्ञान रूप हे मरुत्तव,
 ताकी केवद वी है, नाही मांति निवण्ण अण्णा
 रिं क्हाहं समं चारित्र गुण विगुदता है ताकी चारित्राणं
 कर्मे मद हे । ता मरुत्तवर्त्ति निर्भंग है । क्हाहंमे चारित्र
 रूप मरुत्तवर्त्तव है ताकी केवद जीवधो है । वा मांति
 वरुं जिया अण्णक रिं अण्णे अण्णक ज्ञान हे ओं विगु-
 दता कहीव है ता समं निर्भंग है । अण्णे अज्ञानक

ज्ञान है संकलेश रूप चारित्र है तासमें बंध है तामें विशेष
इतनी जु अल्प निर्जरा बहु बंध, तातें मिय्यात अवस्थाविषै
केवल बन्ध कसो । अल्पकी अपेक्षा जैतै—काह पुरुषकों
नको थोढ़ो टोढ़ो बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए । परंतु
बंध निर्जरा विना जीव काह अवस्थाविषै नाही । दृष्टान्त
ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तो एकेन्द्री जीव नि-
गोद अवस्थासौं व्यवहारराशि कौनके बल आवसौ? उहां तौ ज्ञान
गुन अज्ञानरूप गहलरूप है अशुद्धरूप है तातें ज्ञानगुन-
को ता बल नाही । विशुद्धरूप चारित्रके बलकरि जीव व्यवहार
राशि चढतु है, जीवद्रव्यविषै कपाड़की मंदता होतु है ताकरि
निर्जरा होतु है । बाही मंदता प्रमान शुद्धता जाननी । अब
और भी विस्तार सुनो—

जानपनी ज्ञानको अह विशुद्धता चारित्रकी दोऊ मोक्ष-
मार्गानुसारी है तातें दोऊविषै विशुद्धता माननी । परन्तु
विशेष इतनी जु गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाही । इन दुहं
गुणकी गर्भित शुद्धता जबताई प्रथिभेद होय नाही तबताई
मोक्षमार्ग न सधै । परन्तु ऊरधताको करहि अवश्य करि ही ।
ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जब प्रथिभेद होइ तब इन
दुहंकी शिखा फूटै तब दोऊं गुन धाराप्रवाहरूप मोक्षमार्ग-
कों चलहि । ज्ञानगुनकी शुद्धताकरि ज्ञान गुण निर्मल हो-
हि । चारित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुन निर्मल होइ ।
यह केवल ज्ञानको अंकूर, यह अथास्यातचारित्रको अंकूर ।

इहां कोऊ उठकना करतु है,—कि तुम कसो तु शानको
जाणतौ भरु बारिषकी निगुदता दुहुम्यो निर्जरा है तु
शानके जाणतौ सो निर्जरा यह हम मानी । बारिषकी निगु-
दतामों निर्जरा कैसे? यह हम माहीं समुझी—ताको समाधान,—

गुनि भैया ! निगुदता बिरतारूप पणिनामसो कदिमे सो
बिरत जगत्प्राप्तको भेज है ताने निगुदतामें गुदता आई ॥
भी यह उठकनागारो कोण्यो—तुम निगुदतामों निर्जरा
करी, हग कहतु है कि निगुदतामों निर्जरा नाहीं गुमक्य है—
ताको समाधान,—कि तुम भैया यह सो तु सांको, निगुदतामों
गुमक्य, संकेजनामों भगुमक्य, यह सो हग भी मानी पण
भोर भेर मांमि दे मो गुनि—भगुमक्यनि अपोमनिको प-
चमन दे गुमक्यनि उद्वेगनिको वानमन दे ताने अपोचम
मा उद्वेग मोपचमन पचमि, गुदता नामें आई मानि मानि,
त नें मोर्न नाहीं है । निगुदता मरा काय मोसुको मांमि दे
पण्ण मन्मन्त रित्त गुदतामों भोर चवन माहीने । जे
५ = गुमक्य नहीने गुमक्य मांमि कि जे उद्वेग न नैन मो-
रमा उद्वेग ना गुमक्य नौका भाव जग्य सो कर्मा मांमि गुमक्य
है नन नि रैन मांमि निकहे ! चर्चा जे चर्चा मांमि, चर्चा
मांमि चर्चा जे चर्चा चर्चा मांमि, जे निगुदताकी मो
५ = चर्चा । ना कर्मा मांमि गुदता कही । यह मांमि
गुदता मांमि चर्चा जे चर्चा मांमि चर्चा । चर्चा मांमि

करि बद्धमानरूप भई तब पूर्ण अद्यात्म्यान् प्रगट कढायो ।
विशुद्धताकी जु ऊर्द्धता बहे बाकी शुद्धता ।

और मुनि अहां मोक्षमार्ग साध्यों कहा कही कि 'सम्य-
ग्दर्शनज्ञानचारिणाणि मोक्षमार्गः' और यों भी कही कि
“ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः” ताको विचार—चतुर्थ गुणस्थानकर्म्युं
लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कही ताकी
ध्याती, सम्यक्स्वरूप ज्ञानपारा विशुद्धस्वरूप चारित्र्यपाग होऊ
पारा मोक्षमार्गको बली सु ज्ञानसी ज्ञानकी शुद्धता क्रियाभी
क्रियाकी शुद्धता । जो विशुद्धतामें शुद्धता है सो अद्यात्म्यान्
रूप होत है । जो विशुद्धतामें ता न होती सो ज्ञान गुण
शुद्ध होतो क्रिया अशुद्ध रहती केवनी बिबे, सो यों नो
गही बायें शुद्धता हवी ताकरि विशुद्धता भई । इहां बोह
बहेगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यों
नाही । कोऊ गुण काहू गुणके सारे गही तब अगहाय रूप
है । और भी मुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होनी
सो अशुद्धताकी एसी शक्ति बाही जु मोक्षमार्गको बने ताके
विशुद्धतामें अद्यात्म्यान्को अंत है ताके बह अंत बस बस
पूरण भयो । ए भइया उटकवावारे—ते विशुद्धतामें शुद्धता
मानी कि नाहीं । जो सो ते मानी सो बहुत और कटिबेकी
कार्य बाही । जो ते नाहीं मानी सो तेरो द्रव्य बाहीभक्तिको
पानयो है हम कहा करि है जो मानी सो स्वभाव । दर
ता द्रव्याधिककी भीमेगी पूरन भई ।

निमित्त उपादान शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायाधिककी चौमंगी मुनौ एक तौ बक्का अज्ञानी, थोता भी अज्ञानी, सो तौ निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध । दूसरो बक्का अज्ञानी थोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध । तीसरो बक्का ज्ञानी थोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध । चौथौ—बक्का ज्ञानी थोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध २ उपादान भी शुद्ध । यह पर्यायाधिककी चौमंगी साधी ।

इति निमित्तउपादान शुद्धाशुद्धविचार बखनिह ।

अथ निमित्तउपादानके दोहे लिख्यते ।

दोहा ।

गुरुउपदेश निमित्त विन, उपादानबलहीन ।

उयों नर दूजे पांव विन, चलयेको आधीन ॥ १ ॥

हौं जानि था एक ही, उपादानसौं काज ।

मई सदाईं पौन विन, पानीमाहि जहाज ॥ २ ॥

सोभो सोहोका बत्तर,

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार ।

उपादान निहये जहों, सहै निमित्त व्योहार ॥ ३ ॥

उपादान निज गुण जहों, सहै निमित्त पर होय ।

भेद ज्ञान परवान विधि, मिरला मूझे कोय ॥ ४ ॥

उपादान बल जहँ तहँ, नहि निमित्तको दाव ।

एक चक्रसौ रथ चलै, रविको यहै स्वभाव ॥ ५ ॥

सपै बस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कोन ।

ज्यों जहाज परबाहमें, तिरै सहज बिन पौन ॥ ६ ॥

उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेस ।

बसै जु जैसे देशमें, करै सु तैसे भेस ॥ ७ ॥

इति निमित्त उपादानके बोधे.

अथ अध्यात्मपदपंक्ति लिख्यते.

(१)

राग शैरष

या चेतनकी सब मुधि गई ।

ध्यापत मोहि विकलता भई, या चेतनकी० टेक
है जडरूप अपायन देह ।

तासौं रासै परमसनेह, या चेतनकी० ॥ १ ॥

आइ मिले जन स्वारथबंध ।

तिनहि कुरंग कहै आ बंध ॥

आप अकेला जनमै मरै ।

सकल लोककी ममता धरै, या चेतनकी० ॥ २ ॥

१ राग रागमेंसे टेक निहाल दी जावे तो सारी १५ मात्राकी
रचनाई हो जाती है ।

होत विमृति दानके दिये ।

यह परपंच विचारै हिये ।

मरमत फिरै न पावइ ठौर ।

ठानै मूढ औरकी और, या चेतनकी० ॥ ३ ॥

बंध हेतको करै जुसेद ।

जानै नहीं मोक्षको भेद ।

मिटै सहज संसार निवास ।

तब मुस लहै बनारसिदास, या चेतनकी० ॥ ४ ॥

(२)

राग रामकली—

चेतन तू तिहुकाल अकेला,

नदी नावसंजोग मिलै ज्यों, त्यों कुटंबका मेला, चेतन० ॥ टेक ॥

यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन सेला ।

मुखसंपति शरीर जलबुदबुद, बिनशत नाहीं बेला, चेतन० ॥ १ ॥

मोहमगन आतमगुन भूलत, परी तोहि गलजेला ।

मैं मैं करत चहुं गति डोळत, बोळत जैसे छेला, चेतन० ॥ २ ॥

कहत बनारसि मिथ्यामत तज, होय मुगुरुका चेला ।

तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज मुरसेला, चेतन० ॥ ३ ॥

(३)

राग रामकली ।

मगन है आराधो साधो ! अलस पुरुष प्रभु ऐसा ॥ टेक ॥
 जहाँ जहाँ जिस रससौं राखै, तहाँ तहाँ तिस भेसा, मगन० ॥१॥
 सहजप्रधान प्रवान रूपमें, संसैमें संसैसा ।
 धैरे चपलता चपल कहावै, लै बिधानमें लै सा, मगन० ॥ २ ॥
 उषम करत उषमी कहिये, उदयसरूप उदै सा ।
 व्यवहारी व्यवहार करममें, निहचंमें निहचै सा, मगन० ॥ ३ ॥
 पूरण दशा धैरे संपूरण, नय बिचारमें तैसा ।
 दरावित सदा असै मुखसागर, भावित उत्पति सैसा, मगन० ४ ॥
 नाहीं कहत होइ नाहीं सा, है कहिये तौ है सा ।
 एक अनेक रूप है बरता, कहीं कहीं लो कैसा, मगन० ॥ ५ ॥
 बह अपार ज्यों रतन अमोलक, मुधि विवेक ज्यों पैसा ।
 कल्पित वचन विलास 'बनारसि' बह जैसेका तैसा, मगन० ॥ ६ ॥

(४)

रोहा—

जिनप्रतिमा जिनसारसी, कही जिनागम भाहिं ।
 पै जाके दूषण लगै, बंदनीक सो भाहिं ॥ १ ॥
 भेटी मुद्रा अवधिसौं, कुमती कियो कुदेव ।
 विपन अंग जिननिबन्धी, तयै समबिती सेव ॥ २ ॥

(५)

राग विलावल ।

इहि विधि देव अदेवकी, मुद्रा लसलीजे,
 गुन लच्छन पहिचानके, पद पूजा कीजे ॥ टेक ॥
 पट भूषन पहरे रहै, प्रतिमा ओ कोई ।
 सो गृहस्थ मायापयी, मुनिरात्र न होई ॥ २ ॥
 जाके तिय संगति नहीं, नहिं यसन न भूषन ।
 सो छवि है सर्वशकी, निर्मल निरदूषन ॥ ३ ॥
 वाम भंग जाके त्रिया, अथवा अरधंगी ।
 सो तो प्रगट कुनेव है, विषयी रसरंगी ॥ ४ ॥
 निरवृत्ती निरपरिगृही, जोगातन प्यानी ।
 सो है मूर्ति मिदकी, कै केवनशानी ॥ ५ ॥
 ओ मर्षद आगुष लिये, कर ऊरध बाह ।
 प्रगट विनोदी देवता, मारेगा काह ॥ ६ ॥
 ओ न कटू कानी करे, नहिं आगुष पानी ।
 सो प्रतिमा भगवन्की, निरवेर निशानी ॥ ७ ॥
 ओ वगुम्मी वगुम्मी, वगुवाहनपारी ।
 ने मय अगु अवेदनी, निरवय संगारी ॥ ८ ॥

(६)

राग विनायक ।

ऐने क्यों प्रभु पादवे, मुन मान माननी ।
 ऐने निम्न महीविद्या, मृग मानन पानी । ऐने ॥ १ ॥

वनारसीविनासः

ज्यों पकवान पुरेछका, विषयारस त्यों ही ।

साके साळव तू फिरे, भ्रम भूझन यों ही, ऐमें० ।

देह अपावन सेटछी, अपनी करि मानी ।

भाषा मनसा करमछी, तें निग्रहर जानी । ऐमें० ।

नाव कहावति लोछछी, सो सौ नहिं मूँदे ।

जाति जगतकी कल्पना, तामें तू मूँदे । ऐमें० ॥

माटी भूमि पदारछी, गुह संपनि मूँदे ।

मगट पदेसी मोदछी, तू तऊ न मूँदे । ऐमें० ॥

तें कषा निग्र गुनविषे, निग्रहरति न दीनी ।

पराधीन परबन्धुमों, अपनायन कीनी, ऐमें० ॥ ६

ज्यों गुणनाभि तुबास मो, टूटत बन होरे ।

स्यो तुझमें तेरा धनी, तू सोमंत भीरे, ऐमें० ॥ ७

करता भरता भोगता, पर सो परमाही ।

ज्ञान बिना सद्गुरु बिना, तू सगुस्त माटी । ऐमें० ॥

२७-११

(७)

राम विनायक ।

ऐसें यों मधु पारये, गुन रंजित मानी ।

ज्यों सवि मारम बाढिये, सवि भेलि मधानी, ऐमें० ।

ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधे ।

स्यो परमें परमारपी, परमारध साधे, ऐमें० ॥ ८

जैमै बैद्य विद्या लहे, गुन दोष विचारै ।

सैमै पंडित पिडकी, रचना निरवारै, ऐमै० ॥ ३ ॥

पिंडस्वरूप अचेन हे, प्रभुरूप न कोई ।

जानै मानै रमि रहै, घट व्यापक सोई, ऐसै० ॥ ४ ॥

भेनन लच्छन हे धनी, जइ लच्छन काया ।

चंदन लच्छन विष है, भ्रम लच्छन माया, ऐसै० ॥ ५ ॥

जगज्जन भेद विवेच्छको, गु विवच्छन बेरै ।

गगगगग द्विषे धीरे, भ्रमरग उछेरे, ऐमै० ॥ ६ ॥

ग्यो रप्रगोपे न्यायिना, धन सौ मनकी मे ।

ल्यो मुनिहर्म शिवाहर्म, अगने रग सीजे, ऐमै० ॥ ७ ॥

भाज लभे प्रब भाजको, दुग्धिपावर मेटे ।

संगह गादिव ण्ड है, तब को छिहि मेटे । ऐमै० ॥ ८ ॥

(८)

सोम जागवती ।

तु मानव गुन जानि रे जानि,

मातु वचन मानि जानि रे जानि, तु आत्म० ॥ १ ॥

मान प्रवर्तनि वदमैंद मानि,

मानना माननि लही समानि, तु आत्म० ॥ २ ॥

प्रमद वदमैंद मनो मनेन,

मन चरन रि। वदो सोन, तु आत्म० ॥ ३ ॥

राखन समकित भयो उदोत,

सब बांज्यो तीर्थकर गीत, तू आत्म० ॥ ४ ॥

सुकल ध्यान धरि गयो मुकुमान,

पहुँच्यो देवमगति तिहँ काल, नू आत्म० ॥ ५ ॥

दिड प्रहारकरि हिसाचार,

गये मुक्ति निजगुण अवधार, तू आत्म० ॥ ६ ॥

देखहु परसछ भुंगी ध्यान,

करत कीट भयो साहि समान, तू आत्म० ॥ ७ ॥

कहत 'बनारसि' बारंवार,

और न तोहि सुझावनहार, तू आत्म० ॥ ८ ॥

(९)

राम आतापरी ।

रे मन ! कर सदा सन्तोष,

जातै मिटत सब दुखदोष, रे मन० ॥ १ ॥

बहुत परिगृह मोह बाहुत, अधिक तृपना होति ।

बहुत इंधन जरत जैसेँ, अगनि ऊंची जोति, रे मन ॥ २ ॥

लोभ लालच मूढजनसो, कहत कंचन दान ।

फेरत आरत नहिं विचारत, धरम धनही हान, रे मन० ॥ ३ ॥

गारकनोके पाइ सेवत, सकुच मानत संक ।

गानकरि भूँसै 'बनारसि' को नृपति को रंक, रे मन० ॥ ४ ॥

(१०)

राम बरवा ।

बालम तुहें तन चितवन गागारि फूटि ।
 अंनरा गौ फहराय सरम गे छूटि, बालम ॥ १ ॥
 हं तिक रहं जे सजनी रजनी घोर ।
 घर करकेउ न जानै चहुदिसि चोर, बा० ॥ २ ॥
 पिउ सुधियावत वनमें पैसिउ पेलि ।
 छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि, बा० ॥ ३ ॥
 संवरौ सारदसामिनि औ गुरु मान ।
 कछु बलमा परमारथ करौ बखान, बा० ॥ ४ ॥
 काय नगरिया भीतर चेतन भूप ।
 करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप, बा० ॥ ५ ॥
 दर्शन ज्ञान चरणमय चेतन सोय ।
 पियरा गरुव सर्चाकन कंचन होय, बा० ॥ ६ ॥
 चेतन चित अवधार सुगुरु उपदेश ।
 कछु इक जागलि ज्योति ज्ञान गुन लेस, बा० ॥ ७ ॥
 अभिरूप सब देखिसि छिन बेराग ।
 चेतन आपुहि आप बुझावे लाग, बा० ॥ ८ ॥
 चेतन तुहु जनि सोबहु नींद अधोर ।
 चार चौर पर मूंमहि सरवम तोर, बा० ॥ ९ ॥
 चेतन तुहं वनमावज कोलकिरात ।
 निसिदिन कर अहेर अचानक घात, बा० ॥ १० ॥

चेतनहो तुहं चेतहु परम पुनीत ।
 तजहु कनक अरु कामिनि होहु नचीत ॥ ११ ॥
 परेहु करमवस चेतन ज्यों नटकीस ।
 कोउ न तोर सहाय छाडि जगदीस ॥ १२ ॥
 चेतन बूझि विचार धरहु सन्तोष ।
 राग दोष दुर बंधन छूटत मोष ॥ १३ ॥
 मोहजालमें चेतन सय जग जानि ।
 तुहु कुबाज तुहु बासहु सकत भुलान ॥ १४ ॥
 चेतन भयेहु अचेतन संगति पाय ।
 घकमकमें आगी देखी नहि जाय ॥ १५ ॥
 चेतन तुहि लपटात मेमरस फांद ।
 अस राखल धन तोषि विमलनिशिचांद ॥ १६ ॥
 चेतन सोहि न भूल नरक दुख बास ।
 अगनि धंभ छरसरिता करवत पास ॥ १७ ॥
 चेतन जो तुहि तिरजग जोनि फिराड ।
 बांध पांच ठग बेग तोर अब दाउ ॥ १८ ॥
 देवजोनि सुख चेतन सुरग बसेर ।
 ज्यों विन नीब धौरहर खसत न वेर ॥ १९ ॥
 चेतन नर तन पाय सोष नहि तोषि ।
 पुनि तुहु का गति होइहि अपरज मोहि ॥ २० ॥
 आदि निगोद निकेतन चेतन तोर ।
 भव अनेक फिरि आवेहु कतहु न ओर ॥ २१ ॥

विषय महारस चेतन विष समतूल,
 छाडहु बेगि विचारि पापतरुमूल ॥ २२ ॥
 गरमवास तुहुं चेतन ऊरष पांव,
 सो दुस्र देस विचार धरमचित लाव ॥ २३ ॥
 चेतन यह भवसागर धरम जिहाज,
 तिह चढ बेठो छोड लोकक्री लाज ॥ २४ ॥
 दह या दुहु अव चेतन होहु उचाट,
 कह या जाउ मुक्तिपुरि संजम बाट ॥ २५ ॥
 उपवागाय सुनायेहु चेतन चेत,
 कहत बनारसि धान नरोचम हेत ॥ २६ ॥

(११)

राग धनाभी ।

चेतन उलटी चाल चले, जड़संगततैं जड़ता व्यापी निज
 गुन सकल टले, चेतन० टेक ॥ १ ॥ हितसों विरचि-
 ठगनिसों राचे, मोह पिसाच छले । हंसि हंसि फंद सवारि आ-
 प ही, मेलत आप मले, चेतन० ॥ २ ॥ आये निकसि निगोद
 सिधुतें, फिर तिह पंथ टले । कैसें परगट होय आग जो
 दबी पहारतले, चेतन० ॥ ३ ॥ मूले भवभ्रम बीचि बनारसि'
 तुम सुरज्ञान मले । धर शुमध्यान ज्ञाननौका चढि, बैठे ते
 निकले, चेतन० ॥ ४ ॥

(१२)

पुनः राग धनाभी ।

चेतन तोहि न नेक संसार, नख सिसलौं दिदबंधन बेदे

कौन करे निरवार, चेतन० ॥ १ ॥ जैसे आग पपान काठमें
लसियं न परत लगार। मदिरापान करत भतवारो, ताहि न कछू
विचार, चेतन० ॥ २ ॥ ज्यों गजराज पसार आप तन, आ-
प हि डारत छार। आप हि उगलि पाटको कीरी, तनहि ल-
पेटत तार, चेतन० ॥ ३ ॥ सहज कबूतर लोटनको सो, खु-
लै न पेच अपार। और उपाय न बनै 'बनारसि' सुमरन भ-
जन आधार, चेतन० ॥ ४ ॥

(१३)

राम सारंग ।

दुविधा कब जै है या मनकी दु०। कब निजनाथ निरंजन
सुमिरीं, तज सेश जन जनकी, दुविधा० ॥ १ ॥ कब रुचि-
सौ पीवै दृगघातक, बूंद अखमपद पनकी। कब शुभध्यान,
परी समता गहि, कंठ न ममता तनकी, दुविधा० ॥ २ ॥
कब घट अंतर रहै निरन्तर, दिदता सुगुरु वचनकी। कब
सुख लहै भेद परमारथ, मिटै धारना पनकी, दुविधा० ॥ ३ ॥
कब घर छोड़ दोहुं एकाकी, लिये लालसा बनकी। ऐसी दशा
होय कब मेरी, हौं मलिनलि या छनकी, दुविधा० ॥ ४ ॥

(१४)

राम सारंग ।

हम बैठे अपनी मौनसौं। दिनदशके गहिमान जगत जन

१ रेशमका कीड़ा चलेके नीचेसे तार निगल कर उससे अपने
शरीरके चारों ओर पोशा बनाकर आप बन्द हो जाता है ।

बोलि विगारि कौनसौ, हम बैठे० ॥ १ ॥ गये
 वादर, परमारथपथपौनसौ । अब अंतरगत
 परचे राधारौनेसौ, हम बैठे० ॥ २ ॥ प्रघटी
 महिमा, मन नहि लागै बौनेसौ । छिन न सु
 फीके, रुचि साहिवके लौनसौ, हम बैठे० ॥ ३ ॥
 पाय सुखसंपत्ति को निकसै निज भौनसौ । सहज
 रुकी संगति, मुखौ आवागौनसौ, हम बैठे० ॥

(१५)

राग मारंग हुंरावनी ।

जगतमें सो देवनको देव । जासु चरन प
 होय मुक्ति भवमेव, जगतमें० ॥ १ ॥ जो न तु
 न ममाकुल, इन्द्रीविषय न बेय । जनम न हे
 ध्याये, मिटी मरनकी देव, जगतमें० ॥ २ ॥ जा
 पाद नहि बिम्बय । नहि भाठौ अहमेय । राग
 नहि जाके, नहि निद्रा परसेवै, जगतमें० ॥ ३ ॥
 राग न धम नहि बिना, दोष अटारद भेष । भित
 ना प्रमुकी, करत 'वनारसि' रोष, जगतमें० ॥

(१६)

पुनः राग मारंग हुंरावनी ।

गिगने गमायण पटमादि । मरमी होय मरा

१ मन्त्रमन्त्री राकारययमे. २ वमन-छाँट.

३ लोच-पगोना.

मूर्त्त माने नादि, विराजै रामायण० ॥ १ ॥ आनम राम ज्ञान
 गुन लछपन सीता सुमनि समेत । शुभपयोग वानरदल
 मंडित, यर विवेक रणस्वेत, विराजै० ॥ २ ॥ ध्यान धनुष
 टंकार शोर सुनि, गई विषयदिनि भाग । भई भग्न भिग्या-
 मत लंका उठी धारणा आग, विराजै० ॥ ३ ॥ जरे अज्ञान
 भाव राक्षसकुल, लो निकांठिन मुर । जूझे रागद्वेष मे-
 नापनि सोंरी गढ़ चक्रपुर, विराजै० ॥ ४ ॥ विलग्नत बुंभकरण
 भवविभ्रम, पुनरिज मन दरयाव । चकिन उदार बीर घटि-
 रावण, सेतुबंध समभाय, विराजै० ॥ ५ ॥ मूर्त्तन मंझे-
 दरी दुगगा, सजग चरै न हनुमान । पटी चतुर्गति पर-
 णति रेखा, गुटे छपकगुण वान, विराजै० ॥ ६ ॥
 निरखि सकति गुन चमगुदर्शन उदय विभीषण दीन ।
 किंर करंध मदी रावणकी, माणभाय छिरदीन, विराजै०
 ॥ ७ ॥ इद बिधि गहल गाधुपटअंतर, दोष सहज मी-
 प्राय, यह विषटाग्रहि रामायण, बेचन निधय नाम,
 विराजै० ॥ ८ ॥

(१७)

आनाथ, होहा ।

ओ दातार दयान ई, देव दीनको भीख ।

तयो गुरु कोवल भावसो, बई गुरुको सीख ॥ १ ॥

१ सुदेवता गच्छती । २ गाम्बर्जादि

बोलि विगारैं कौनसौ, हम बैठे० ॥ १ ॥ गये विलाय मरमके
 वादर, परमारथपथपौनसौ । अब अंतरगति मई हमारी,
 परचे राधारौनसौ, हम बैठे० ॥ २ ॥ प्रघटी सुधापानकी
 महिमा, मन नहि लागै बौनसौ । छिन न सुहायैं और रस
 फीके, रुचि साहिवके लौनसौ, हम बैठे० ॥ ३ ॥ रहे अघाय
 पाय सुखसंपति को निकसै निज मौनमौ । सहज भाव सद्गु-
 रुफी संगति, मुरझै आवागौनसौ, हम बैठे० ॥ ४ ॥

(१५)

राग सारंग शृंदावनी ।

जगतमें सो देवनको देव । जासु चरन परसैं इन्द्रादिक
 होय मुक्ति स्वयमेव, जगतमें० ॥ १ ॥ जो न छुपित न दृषित
 न मयाकुल, इन्द्रीविषय न वेद । जनम न होय जरा नहि
 ध्यापै, मिटी मरनफी टेव, जगतमें० ॥ २ ॥ जाके नहि वि-
 पाद नहि विस्मय । नहि आठों अहमेव । राग विरोध मोह
 नहि जाके, नहि निद्रा परसेवैं, जगतमें० ॥ ३ ॥ नहि तन
 रोग न श्म नहि चिंता, दोष अटारह भेव । भिटे सहज जाके
 ता प्रमुफी, करत 'बनारसि' सेव, जगतमें० ॥ ४ ॥

(१६)

गुनः राग सारंग शृंदावनी ।

विराजै रामायण घटमाहि । मरमी होय मरम सो जाने,

१ मानुभवशी रागरामयणे. १ वदन-छाई. १

८ एमेव-वर्णना.

मूरख मानै नाहि, विराजै रामायण० ॥१॥ आत्म राम ज्ञान
 गुन लछमन सीता गुमति समेत । गुमपयोग वानरदल
 मंडित, वर दिवैक रणखेत, विराजै० ॥ २ ॥ ध्यान धनुष
 टंकार शोर सुनि, गई विषयदिति' भाग । भई भस्म मिथ्या-
 मत लेफा उठी धारणा आग, विराजै० ॥ ३ ॥ जरे अज्ञान
 भाव राक्षसकुल, लरे निकॉछत मूर । जूझे रागद्वेष से-
 नापति संसै गढ़ चक्रचूर, विराजै० ॥४॥ विलखत कुंभकरण
 भवविभ्रम, पुलकित मन दरयाव । यकित उदार वीर महि-
 रावण, सेतुबंध समभाष, विराजै० ॥ ५ ॥ मूछित पंदो-
 दरी दुराशा, सजग चरन हनुमान । पटी चतुर्गति पर-
 णति सेना, छुटे छपकगुण वान, विराजै० ॥
 निरलि सफति गुन चक्रमुर्दर्शन उदय विभीष-
 किं कबंध मही रावणकी, प्राणभाव शिरहीन, विराजै०
 ॥ ७ ॥ विधि सकल साधुपटअंतर, होय सहज
 ग्राम, यह विवहारदृष्टि रामायण, केवल निधय रा-
 विराजै० ॥ ८ ॥

(१७)

आलाप, दोहा ।

जो दातार दयाल है, देय दीनको भीस । सय सृष्टे ।
 त्यों गुरु कीमल भावसों, कहे भूदको सीस अष्टे, भौद ।

१ पूर्वजन्म राक्षसी. २ सम्यग्चारित्र. ३ श्री, परसहाय नहि

लेखै । जे समाधिसौं लखै अखंडित, दकै न पलक निमैसै,
मौदू भाई० ॥६॥ जिन आंखिनकी ज्योति प्रगटकै, इन आं-
खिनमें भासै । तब इनहूकी मिटै विषमता, समता रस पर
गासै, मौदू भाई० ॥ ७ ॥ जे आंखें पूरनस्वरूप धरि, लोका-
लोक लखावै । ए बे यह वह सब विकल्प तजि, निरविकल्प
पदपावै, मौदू भाई० ॥ ८ ॥

(२०)

राग काफ़ी ।

तू अम भूल ना रे प्रानी, तू० टेक । धर्म विसारि विषयसुख
सेवत, बे मति हीन अज्ञानी, तू अम० ॥ १ ॥ तन धन सुत
जन जीवन जोघन, हाम अमी ज्यों पानी, तू अम० ॥ २ ॥
देख दगा परतच्छ 'वनारसि' ना कर होइ विरानी, तू
अम० ॥ ३ ॥

(२१)

पुनः राग काफ़ी ।

चिन्तामन स्वामी सांचा सहिव मेरा, शोक हरै तिहुं लो-
कको, उठ लीजतु नाम सबेरा, चिन्तामन० ॥ १ ॥ सूरसमान
उदोत है, जग तेज प्रताप धनेरा । देखत मूरत भावसौं, मिट जात
मिथ्यात अंधेरा, चिन्तामन स्वामी० ॥ २ ॥ दोनदयाल नि-
वारिये, दुख संकट जोनि बसेरा । मोहि अमयपद दीजिये, फिर
होय नही भवफेरा, चिन्तामन० ॥ ३ ॥ बिच बिराजत आगेरे,

धिर धान धयो शुभवेरा । ध्यान धै विनती करै, बनारसि
बंदा लेग, बिनतामन० ॥ ४ ॥

इति अभ्यासमपदर्शकः ।

अथ परमारथहिंडोलना लिख्यते ।

सहज दिहना हरस दिहोलना, सुन्दर चेतनराव ।
जहाँ धर्म कर्म भोजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव ॥ टेक ॥
जहाँ सुमनरूप अनूप मंदिर, सुरभि भूमि सुरंग ।
सहाँ ज्ञान दर्शन संभ अविचल, चरन आड अभंग ॥
मरुवा सुगुन परजाय विचरन, भौर विमल विवेक ।
व्यवहार निधाय नय मुदंड़ी, मुमति पटली एक । सहज० ॥ १ ॥
पट कील जहाँ पडद्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल ।
उपम उदय मिलि देहि झोटा, शुभ अशुभ कलोल ॥
संवेग संवर निकट सेवक, विरत भीरे देत ।
आनंदकंद सुछंद सादिस, सुख समाधि समेत, सहजहिं ॥ २ ॥
जहाँ लिपक उपशम चमर दारद, धर्म ध्यान बखीर ।
आगम अध्यात्म अंगरक्षक, शान्तरस बरवीर ॥
गुनयान विधि ददा चार विधा, शक्तिनिधिविस्तार ।
संतोष मित्र स्वदास धीरज, सुजम लिजमतगार, सहज ॥ ३ ॥
धारना समिता क्षमा करुणा, चारसति चहुँ ओर ।
निर्जरा दोऊ चतुरदासी, करहिं लिजमत जोर ॥

जहँ विनय मिलि सातों मुहागनि, करत घुनि क्षनकार ।
 गुरुवचनराग सिद्धान्तधुरपद, ताल अरथ विचार, सहज० ॥४॥
 अद्हन सांची मेघमाला, दाम गर्वत घोर ।
 उपदेश बर्षा अति मनोहर, भविक चातक मोर ॥
 अनुभूति दामनि दमक दीसै, शील शीत समीर ।
 तप भेद तपत उछेद परगट, भावरंगत चीर, सहज० ॥५॥
 कबहँ असंख मदेश पूरन, करत बन्धु समाल ।
 कबहँ विचारै कर्म प्रकृती, एकसौ अड़ताल ॥
 कबहँ अबंध अदीन अदारन, लसत आपदि आप ।
 कबहँ निरंजन नाथ मानत, करत मुमरन जाप, सहज० ॥६॥
 कबहँ गुनी गुन एक जानत, नियन नय निरधार ।
 कबहँ गुरुगता कर्म किरिया, कहन विधि व्यवहार ॥
 कबहँ अनादि अनन चितित, कबहु कगदि उपाधि ।
 कबहँ गु आत्म गुणसंभारत, कबहु मिद्व समाधि, सहज० ॥७॥
 इदिमानि मद्दत्र दिटोल झुलत, करन आवम कात्र ।
 मवनग्ननाग्न दुग्निनाग्न, मकल मुनिगिरनात्र ॥
 जो नर विनच्छन सदयच्छन, करन ज्ञानुविदाम ।
 कात्रो भगनि विनेय विविगो, नमन काशीदाम ॥ ८ ॥

इति वसुधावलि शेषः ।

अथ मलार तथा सोरठ राग ।

देखो भाई । महाविकल संसारी, दुखित अनादि मोहके
कारन, राग द्वेष भय भारी, देखो भाई महाविकल संसारी ॥ १ ॥
हिसारंभ करत मुग्य समुह, मृषा बोलि चतुराई । परधन हरत
समर्थ कहायें, परिग्रह बढ़त बडाई, देखो भाई० ॥ २ ॥ वचन
राख पाया दृढ राखे, मिटै न मनचपलाई । याति होत औरकी
आँरें, शुभ करनी दुस्संदाई, देखो भाई० ॥ ३ ॥ जोगासन
करि कर्म निरोधै, आत्म दृष्टि न जागे । कथनी कथत महंत
कटावे, ममता मूल न त्यागे, देखो भाई० ॥ ४ ॥ आगम वेद
सिद्धान्त पाठ मुनि, दिखे आत्मद जानै । जाति लाभ कुल
बल तप विद्या, प्रभुता रूप बखानै, देखो भाई० ॥ ५ ॥ अड-
सौं राखि परमपद सार्ध, आत्मशक्ति न राखै । विना विवेक
विचार दरमके, गुण परजाय न बूझै, देखो० ॥ ६ ॥
जसवाले अस मुनि संतोषै, तप बाले सन सोषैं । गुनवाले
परगुनको दोषैं, मतवाले मत पोषैं, देखो० ॥ ७ ॥ गुरु
उपदेश सहज उदयागति, मोहविकलता छूटै । कहत बना-
रसि हे कहनारसि, अलस असय निधि छूटै, देखो० ॥ ८ ॥

इत्यष्टमरी मलार सम्पूर्ण ।

तीननये पद जो हमने संग्रह किये हैं.

नयापद १ ला

मूलन बेटा जायोरे साधो, मूलन० जाने खोजकुटुंब
सायोरे साधो० मूलन० ॥ टेक ॥ जन्मत माता मनवा
खाई, मोहलोम दोह माई । कामक्रोध दोह काका साये
खाई तृपनादाई, साधो० ॥ १ ॥ पापीपापपरोसी सायो
अशुमकरम दोह मामा । मान नगरको राजा सायो, फैल परो
सवगामा, साधो० ॥ २ ॥ दुरमति दादी दादो
मुखदेखत ही मूओ । मंगलाचार बधाये बाजे, जब यो बा
क हओ, साधो० ॥ ३ ॥ नाम धरयो बालकको सुओ, स
वरन कछु नाहीं । नामधरंते पांडे साये, कहत बनारसि
भाई, साधो० ॥ ४ ॥

नयापद २ रा

राग जंगला.

बो दिनको कर सोचजिय! मनमें । वा दि० टेक ।

वनज किया व्यापारी तूने, टांडा लादा भारीरे । ओछी पूंजी
जूआ खेला, आखिर बाजी हारीरे ॥ आखिर बाजी हारी, करले
चलनेकी तय्यारी । इकदिन डेरा होयगा वनमें, वादिन० ॥ १ ॥
झूठे नैना उलफत बांधी, किसका सोना किसकी चांदी । इकदिन
पवन चलेगी आंधी, किसकी बीबी किसकी चांदी, नाहक चिच
लगावे धनमें, वादिन० ॥ २ ॥ मिट्टीसेती मिट्टी मिलियाँ,

१ इस रागके पदग्रन्थोच्चो हम समझ नहीं सके ।

नीसे पानी । मूरम्भसेती मूरग मिलियो,, शानीसे शानी ।
 निह्नी है सेरे तनमें, यादिन० ॥ ३ ॥ कहत धनारसि
 ने भवि प्राणी, यह पद है निरवानारे । जीवन मरन किया
 नाही, सिरपर काला निशाना रे । सूख पड़ेगी मुढापेपनमें,
 दिन० ॥ ४ ॥

नयापद ३ रा

कित गये पंच किसान हमारे । कित० ॥ टेक ॥
 यो बीज रेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे । कपटी
 मोसे सांझाकर,हुए आप बिचारे ॥ १ ॥ आप दिवाना
 गद बैठो लिखलिख कागद डारे । बाकी निकली पकरे
 ह्म, पांचो होगये न्यारे ॥ २ ॥ रुकगयो कंठ शब्द नहिं
 प्रगत, हा हा कर्मसो हारे । धनारसि या नगर न पसि-
 चलगये सीचनहारे ॥ ३ ॥

धनारसीविलासके संग्रहकर्त्ता.

नगर आगरेमें अगरवाल आगरो जो,
 गग गोत आगरेमे नागर नवलसा ।
 संपदी प्रसिद्ध अभैराज राजमान नीके,
 पंच बाला नलनिमें भयो है कवलसा ॥
 ताके परसिद्ध लघु मोहनदे संपहन
 जाके जिनमारग बिराजत धवलसा ।

